(१६०) प्रश्न—'तस्माद्वा एतस्मादात्मनः' इत्यादि [तैत्ति० ब्रह्म० वल्ली० अनु० १] में वर्णन है कि उस परमात्मा से ही आकाश आदि क्रमशः पैदा हुए। —पृ० २२४, पं० १६

उत्तर—आपने अपनी प्रतिज्ञा-विरुद्ध फिर वेद का प्रमाण न देते हुए उपनिषद् का प्रमाण लिख दिया। उपनिषद् वेद नहीं है तथापि इस प्रमाण से भी यही सिद्ध होता है कि निमित्तकारण ईश्वर ने उपादानकारण प्रकृति से क्रमशः आकाशादि उत्पन्न किये (विशेष देखो नं० १७)। वेद ईश्वर, जीव तथा प्रकृति को नित्य तथा भिन्न मानते हैं। जैसेकि—

यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे।
तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद॥

—ऋ० १।१६४।२२

भाषार्थ—जिस वृक्ष पर मीठा फल खानेवाले पक्षी रहते हैं और सब सन्तान उत्पन्न करते हैं उसी का ही मीठा फल है, ऐसा कहते हैं। जो आरम्भ में उस अपने पिता को नहीं जानता वह उस आनन्द को प्राप्त नहीं कर सकता॥ २२॥

प्रकृति के जगद्रूपी वृक्ष पर जो मीठे फल लगते हैं उनको जीवात्मागण खाते हैं और उसी वृक्ष पर रहकर सन्तान उत्पन्न करते हैं। इनका पिता परमात्मा है, जो उसको जानते हैं वे बन्धन से छूट जाते हैं, परन्तु जो उसको जानने की परवाह नहीं करते, वे सुख से दूर हो जाते हैं।

इसी बात को व्यासजी कहते हैं कि—

प्रोक्तं तद् व्यक्तमित्येव जायते वर्धते च यत्। जीर्यते म्रियते चैव चक्षुभिर्लक्षणैर्गतम्॥ ३०॥
विपरीतमतो यत्तु तदव्यक्तमुदाहृतम्। द्वावात्मानौ च वेदेषु सिद्धान्तेष्वप्युदाहृतौ॥ ३१॥

—महा० शान्ति० अ० २३६

भाषार्थ—जो पूर्व कही प्रकृति प्रकट है वही पैदा होती, बढ़ती, क्षीण होती और मरती है और आँखों से नज़र आती है॥ ३०॥ इसके विपरीत जो अव्यक्त कहा गया है वह कारण द्रव्य है। वेदों में सिद्धान्तरूप से वर्णन किया गया है कि आत्मा दो हैं, अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा॥ ३१॥

आशा है कि अब आपका 'अभिन्ननिमित्तोपादानकारण' का भ्रम दूर हो जावेगा।

(१६१) प्रश्न—'सर्वे निमेषा जज्ञिरे' इत्यादि [यजुः० ३२।२] इस मन्त्र में कालविभाग और बिजली की उत्पत्ति ब्रह्म से बतलाई है। —पृ० २२४, पं० २४

उत्तर—बिल्कुल ठीक है कि उस निमित्तकारण परमात्मा से काल-विभागादि उत्पन्न हुए। इसमें उपादानकारण प्रकृति का कहाँ निषेध है। इस मन्त्र में ईश्वर की व्यापकता तथा निराकारता का वर्णन है, प्रकृति का निषेध नहीं है (देखो नं० १०६ व ११६)।

वेद प्रकृति को नित्य वर्णन करता है। जैसे—

अविर्वै नाम देवता ऋतेनास्ते परीवृता। तस्य रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः।

—अथर्व० १०।८।३१

भाषार्थ—निश्चय से अवि=प्रकृति नामक एक देवता=दिव्य गुणयुक्त पदार्थ है जो सदा सत्य नियम से ढकी रहती है, अर्थात् जिसमें सब परिणाम नियमानुसार होते हैं। अथवा सर्वव्यापक परमात्मा से सब ओर से—अन्दर-बाहर से आच्छादित रहती है। अथवा जीव-समुदाय से अपने-अपने अभिलषित भोग की प्राप्ति के लिए घिरी रहती है, गृहीत की जाती है। उसी के रूप से ये हरी मालाओंवाले वृक्ष हरे-भरे रहते हैं।

इसके अनुकूल ही व्यासजी फ़रमाते हैं—

मशकोदम्बरौ वापि सम्प्रयुक्तौ यथा सदा। अन्योऽन्यमेतौ स्यातां च सम्प्रयोगस्तथा तयोः ॥ ३९ ॥
पृथग्भूतौ प्रकृत्या तौ सम्प्रयुक्तौ च सर्वदा। यथा मत्स्यो जलं चैव सम्प्रयुक्तौ तथैव तौ ॥ ४० ॥

—महा० शान्ति० अ० १९४

भाषार्थ—जैसे गूलर के फल में मच्छर हमेशा ही मिले हुए रहते हैं, इसी प्रकार से ही उन दोनों जीव तथा परमात्मा का एक-दूसरे से मेल रहता है ॥ ३९ ॥ वे दोनों प्रकृति से भिन्न हैं, और सदा मिले रहते हैं। जैसे मछली और जल मिले हुए रहते हैं वैसे ही जीव और परमात्मा मिले रहते हैं ॥ ४० ॥

आशा है अब आप ब्रह्म को संसार का 'अभिन्ननिमित्तोपादानकारण' मानने की ग़लती न करेंगे।

(१६२) प्रश्न—'तदेवाग्निः' इत्यादि [यजुः० ३२।१] इस मन्त्र में अग्नि, आदित्य आदि सबको ही ब्रह्म बतलाया है। —पृ० २२५, पं० ७

उत्तर—इस मन्त्र में एक ब्रह्म के गुण-कर्म-स्वभाव से अनेक नामों का वर्णन है। यहाँ अग्नि और आदित्य, ये ब्रह्म के नाम हैं, यह बतलाया है। यह नहीं कहा कि अग्नि आदि परमात्मा हैं (देखो नं० १९)। इस मन्त्र में प्रकृति तथा जीव का निषेध क़तई नहीं किया गया। वेद ईश्वर, जीव तथा प्रकृति को भिन्न-भिन्न और तीनों को अनादि मानता है। जैसे—

ये अर्वाङ् मध्य उत वा पुराणं वेदं विद्वांसमभितो वदन्ति।
आदित्यमेव ते परि वदन्ति सर्वे अग्निं द्वितीयं त्रिवृतं च हंसम्॥

—अथर्व० १०।८।१७

भाषार्थ—जो विद्वान् इस समय, बीच में अथवा पूर्वकाल में पुरातन वेद के जाननेवाले का सब ओर वर्णन करते हैं, वे सब मानो अखण्डनीय, एकरस प्रभु की तथा दूसरे ज्ञानस्वरूप जीव की और त्रिगुणात्मक प्रकृति की पूर्णतया स्तुति करते हैं।

इसी सिद्धान्त का व्यासजी भी प्रतिपादन करते हैं—

परिद्रष्टा गुणानां च परिस्त्रष्टा यथातथम्। सत्त्वक्षेत्रज्ञयोरेतदन्तरं विद्धि सूक्ष्मयोः ॥ २२ ॥
सृजतेऽत्र गुणानेक एको न सृजते गुणान्। पृथग्भूतौ प्रकृत्या तौ सम्प्रयुक्तौ च सर्वदा ॥ २३ ॥
यथा मत्स्योऽद्भिरन्यः स्यात् सम्प्रयुक्तौ तथैव तौ। मशकोदम्बरौ वापि सम्प्रयुक्तौ यथा सह ॥ २४ ॥
इषीका वा यथा मुञ्जे पृथक् च सह चैव च। तथैव सहितावेतावन्योऽन्यस्मिन् प्रतिष्ठितौ ॥ २५ ॥

—महा० शान्ति० अ० २४८

भाषर्थ—गुणों के देखनेवाले तथा गुणों का यथायोग्य विभाग करनेवाले जीव और ईश्वर दोनों सूक्ष्मों में यह भेद जानना चाहिए ॥ २२ ॥ यहाँ एक तो गुणों अर्थात् कर्मों को करता है तथा एक कर्मों को नहीं करता। ये दोनों प्रकृति से भिन्न हैं और दोनों सदा मिले रहते हैं ॥ २३ ॥ जैसे मछली पानी से भिन्न है, किन्तु पानी तथा मछली मिले रहते हैं। जैसे मच्छर तथा गूलर आपस में साथ मिले रहते हैं ॥ २४ ॥ सरकण्डे की तीली अपने छिलके मुञ्ज में जैसे पृथक् भी है और इकट्ठी भी है, वैसे ही ये दोनों जीव तथा ईश्वर इकट्ठे एक-दूसरे में प्रतिष्ठित हैं ॥ २५ ॥

कहिए महाराज! अब तो आप ईश्वर को संसार का 'अभिन्ननिमित्तोपादानकारण' न मानेंगे।

(१६३) प्रश्न—'पुरुष एवेदम्' इत्यादि [यजुः० ३१।२] इस मन्त्र में भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान सब जगत् को ही ब्रह्म बतलाया है। —पृ० २२५, पं० १२

उत्तर—इम मन्त्र में भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान सबको ब्रह्म नहीं कहा गया, अपितु यह बतलाया गया है कि भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान सब जगत् का बनानेवाला परमात्मा है। महीधर ने भी

यही अर्थ किया है कि ईश्वर सबका स्वामी है। इस मन्त्र में प्रकृति तथा जीव की हस्ती का निषेध नहीं, अपितु उनका स्वामी ईश्वर है यह प्रतिपादन किया गया है, जिससे तीनों अनादि सिद्ध होते हैं (मन्त्र का विशेष अर्थ देखें नं० २२)। वेद सब स्थानों में ईश्वर, जीव तथा प्रकृति तीनों को परस्पर भिन्न तथा अनादि मानता है। जैसेकि **'द्वा सुपर्णा सयुजा'** इत्यादि में स्पष्टरूप से वर्णन किया गया है (देखो नं० १०)। आपका ब्रह्म को संसार का 'अभिन्ननिमित्तोपादानकारण' मानने का सिद्धान्त वेदविरुद्ध होने से सर्वथा मिथ्या ही है। वेद के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए व्यासजी कहते हैं—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च। क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥ १६॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः। यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥ १७॥

—महा० भीष्म० अ० ३९

इस संसार में दो पुरुष हैं—एक क्षर दूसरा अक्षर। क्षर ये सारे भूत अर्थात् पाँच स्थूल तत्त्व हैं और अक्षर वह है जो प्रकृति में वास करता है॥ १६॥ एक और दूसरा उत्तम पुरुष है जिसको परमात्मा कहते हैं, जो तीनों लोकों में प्रवेश करके उनको धारण करता है और स्वयं कभी नाश को प्राप्त नहीं होता॥ १७॥

यहाँ पुरुष से जीव, पुरुषोत्तम से परमात्मा तथा तीन लोक और सब भूतों से स्थूल तथा सूक्ष्म प्रकृति अभीष्ट है। ये तीनों स्वरूप से भिन्न तथा अनादि हैं।

(१६४) प्रश्न—'एकः सुपर्णः' इत्यादि [ऋ० १०।११४।४] इस मन्त्र में समस्त जगत् की प्रलयकाल में ही लीनता बतलाई है। —पृ० २२५, पं० २०

उत्तर—आपका अर्थ क़तई कल्पित है। यह मन्त्र ब्रह्म का प्रतिपादन नहीं करता, अपितु जीव का ही प्रतिपादन करता है। इस मन्त्र का देवता, अर्थात् प्रतिपाद्य विषय **'विश्वेदेवाः'** अर्थात् समस्त देवता हैं। ईश्वर केवल एक है, उसे **'विश्वेदेवाः'** नहीं कहा जा सकता; जीव अनन्त हैं अतः उन्हीं का **'विश्वेदेवाः'** से वर्णन किया गया है। फिर मन्त्र का अन्तिम भाग जिसका अर्थ है—'उसे माता चूम रही है और वह माता को चाट रहा है' ईश्वर में घटता ही नहीं, क्योंकि ईश्वर तथा प्रकृति का माता-पुत्र का सम्बन्ध नहीं, अपितु स्व-स्वामी-सम्बन्ध है। हाँ, जीव के साथ प्रकृति का माता-पुत्र का सम्बन्ध कहा जा सकता है। यहाँ निश्चित रूप से ईश्वर का वर्णन नहीं अपितु जीवात्मा तथा प्रकृति का वर्णन है—

एकः सुपर्णः स समुद्रमा विवेश स इदं विश्वं भुवनं वि चष्टे।
तं पाकेन मनसापश्यमन्तितस्तं माता रेळिह स उ रेळिह मातरम्॥

—ऋ० १०।११४।४

भाषार्थ—एक सुपर्ण पक्षी है। वह इस संसार-अन्तरिक्ष के समुद्र में आया है। वह इस सम्पूर्ण संसार को विविध प्रकार से देखता है, इसका मज़ा लेता है। मैंने उसे परिपक्व ज्ञानवाले मन से समीपता से देखा है। मैं देखता हूँ कि उसे माता चूम रही है और वह माता को चाट रहा है॥ ४॥

इस मन्त्र में पक्षी शब्द से जीवात्मा का तथा माता शब्द से प्रकृति का नित्य तथा अनादि होना वर्णन किया है, अतः यह मन्त्र आपके मत का मण्डन नहीं, अपितु खण्डन करता है और वेदान्तशास्त्र भी प्रकृति तथा जीव की हस्ती को स्वीकार करता है। जैसे—

प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्। —वेदान्त० १।४।२३
गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात्। —वेदान्त० १।२।११

भाषार्थ—प्रतिज्ञा और दृष्टान्त में रुकावट न पाये जाने से प्रकृति भी जगत् का कारण है। ब्रह्म से भिन्न जगत् का कोई उपादानकारण मानने पर ही प्रतिज्ञा तथा दृष्टान्त ठीक रह सकते हैं। इसलिए प्रकृति भी जगत् का कारण है यह अभिप्राय है॥ २३॥ अन्तःकरणरूप गुहा में दो आत्मा हैं, क्योंकि श्रुति से ऐसा ही पाया जाता है। अन्तःकरणरूपी गुहा में जीव और ईश्वर दोनों को विराजमान करके भिन्न वर्णन किया है, यह अभिप्राय है॥ ११॥

अतः सिद्ध हुआ कि ब्रह्म संसार का अभिन्ननिमित्तोपादानकारण नहीं है, अपितु प्रकृति उपादानकारण और परमात्मा संसार का निमित्तकारण है।

(१६५) प्रश्न—'स वै नैव रेमे' इत्यादि [शत० १४।४।२।४] में लिखा है कि आदि में केवल ब्रह्म ही अकेला था। —पृ० २२६, पं० ३

उत्तर—आपनेअपनी प्रतिज्ञानुसार यहाँ भी वेद का प्रमाण न देकर शतपथ का प्रमाण दिया है जोकि वेदानुकूल होने से ही प्रमाणित हो सकता है अन्यथा नहीं। शतपथ का भी आपने पूरा पाठ नहीं दिया, आधा चुरा लिया है। शतपथ का पूरा पाठ भी हमारे सिद्धान्त की पुष्टि करता है। यहाँ पर हम पूरा पाठ और वेदानुकूल यथार्थ अर्थ देते हैं—

स वै नैव रेमे। तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत्
स हैतावानास यथा स्त्रीपुमाꣳसौ सम्परिष्वक्तौ॥ ४॥

—शत० १४।४।२।४

भाषार्थ—उसने सृष्टि-रचनारूप क्रीड़ा नहीं की, क्योंकि अकेला सृष्टि-रचनारूप क्रीड़ा नहीं कर सकता। उसने दूसरे (प्रकृतिरूप उपादान) की इच्छा की। वह सृष्टि के आरम्भ में (प्रकृतिसहित) इस प्रकार का था जैसे स्त्री-पुरुष आपस में मिले हुए होते हैं॥ ४॥

कैसा साफ़ लेख है कि जैसे स्त्री-पुरुष की अर्द्धाङ्गी कहाती है और दोनों का मिला हुआ एक शरीर माना जाता है वैसे ही पुरुष की भाँति परमात्मा भी अकेला रचना नहीं कर सकता, रचना के लिए उसे भी प्रकृति की इच्छा रहती है, अतः परमात्मा भी प्रकृतिसहित ऐसा ही एक शरीर माना जाता है, जैसे स्त्री-पुरुष मिले हुए।

कहिए महाराज! इससे यह कैसे सिद्ध हो गया कि अकेला ब्रह्म ही सृष्टि का 'अभिन्ननिमित्तोपादानकारण' है, जबकि स्पष्ट लिखा है कि वह प्रकृति के बिना अकेला रचना कर ही नहीं सकता। देखिए, वेद क्या कहता है—

यमोदनं प्रथमजा ऋतस्य प्रजापतिस्तपसा ब्रह्मणेऽ पचत्।
यो लोकानां विधृतिर्नाभिरेषात् तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम्॥

—अथर्व० ४।३५।१

भाषार्थ—सत्य के प्रथम प्रवर्तक प्रजापति ने अपने ज्ञान से जिस प्रकृतिरूप ओदन को जीव के लिए कार्य में परिणत किया, जो लोगों का विशेष धारणकर्त्ता और जो सबका केन्द्र है, उसकी उस प्रकृति के ज्ञान से मैं भी मृत्यु के पार हो जाऊँ॥ १॥

इस मन्त्र में स्पष्ट रूप से प्रकृति को संसार का उपादानकारण माना है। वेदान्तसूत्र भी ब्रह्म को संसार का उपादानकारण नहीं मानता, जैसे—

कृत्स्नप्रसक्तिर्निरवयवत्वशब्दकोपो वा॥ २६॥ —वे० २।१।२६

भाषार्थ—जगत् को ब्रह्म का परिणाम मानने पर उसके सारे देश में परिणाम की आपत्ति और निरवयव प्रतिपादक शास्त्र का विरोध होगा॥ २६॥

स्वपक्षदोषाच्च॥ २९॥—वेदान्त० २।१।२९

भाषार्थ—और मायावादियों के पक्ष में दोष पाये जाने से ब्रह्मकारणवाद ठीक नहीं। मायावादियों के मत में यह दोष आता है कि निराकार ब्रह्म जगत् का 'अभिन्ननिमित्तोपादानकारण' कैसे बन गया, क्योंकि उक्त कारण में कोई दृष्टान्त उपलब्ध नहीं होता, इसलिए मायावादियों का उक्त कथन आदरणीय नहीं है॥ २९॥

(१६६) प्रश्न—'यस्मिन् सर्वाणि' इत्यादि [यजुः० ४०।७]। इसमें वर्णन है कि यह समस्त प्रपञ्च आत्मा ही है। —पृ० २२६, पं० ७

उत्तर—इस मन्त्र में प्रपञ्च अर्थ का कहनेवाला कोई शब्द नहीं है तथा इस मन्त्र से पूर्व के तथा पीछे के सारे मन्त्र ईश्वर, जीव, प्रकृति को भिन्न-भिन्न तथा नित्य वर्णन कर रहे हैं। आपने इस मन्त्र का मनमाना, प्रकरणविरुद्ध अर्थ किया है। देखिए, प्रकरणानुसार ठीक अर्थ इस प्रकार है—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि चिकित्सति॥ ६॥
यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥ ७॥
स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ ८॥

—यजुः० ४०।६-८।

भाषार्थ—जो सब प्राणियों को आत्मा में और आत्मा को सब प्राणियों में देखता है, तब वह संशय में नहीं पड़ता॥ ६॥ जिस ज्ञानी की दृष्टि में सब प्राणी अपने समान हैं, उस एक-सा देखनेवाले में शोक और मोह क्या?॥७॥ वह परमात्मा व्यापक, शीघ्रकारी, शरीररहित, व्रणशून्य, नस-नाड़ी-बन्धन से रहित, शुद्ध, पापशून्य, सर्वज्ञ, मन का ज्ञाता, श्रेष्ठ तथा नित्य है। उस परमात्मा ने अपनी नित्य प्रजा—जीवों के लिए अनेक प्रकार के पदार्थों को रचा है॥ ८॥

कहिए, प्रकरण में ईश्वर, जीव, प्रकृति तीनों का वर्णन मौजूद है या नहीं? फिर केवल एक मन्त्र का प्रकरण के विरुद्ध मनमाना अर्थ करके स्वार्थसिद्धि करना ईमानदारी नहीं है। देखिए, वेदान्तशास्त्र भी इस जगत् को आत्मा का प्रपञ्च नहीं कहता। जैसे—

आत्मकृतेः परिणामात्। —वेदान्त० १।४।२६

भाषार्थ—परमात्मा के यत्न तथा जगद्रूप परिणाम के पाये जाने से भी उक्त अर्थ की सिद्धि होती है। परमात्मा के यत्न और प्रकृति के परिणाम से यह जगत् उत्पन्न होता है। इस प्रकार प्रकृति को परिणामी, उपादानकारण और ब्रह्म को कूटस्थ, नित्य होने से केवल निमित्तकारण वर्णन किया गया है॥ २६॥

इससे सिद्ध है कि संसार का उपादानकारण प्रकृति तथा निमित्तकारण परमात्मा है। यही मत वेदशास्त्रसम्मत है।

(१६७) प्रश्न—ब्रह्म ही समस्त प्रपञ्च का उपादानकारण है, इसको वेदों की सैकड़ों श्रुतियाँ कह रही हैं। यह इतना अकाट्य विषय है कि किसी का हिलाया नहीं हिलता।

—पृ० २२६, पं० १२

उत्तर—यह संसार प्रपञ्च नहीं है अपितु वास्तविक है। इसका उपादानकारण प्रकृति तथा निमित्तकारण ब्रह्म है। इस बात को समस्त वेद अनेक मन्त्रों द्वारा वर्णन करते हैं। चारों वेदों में एक भी मन्त्र ऐसा नहीं है जो ब्रह्म को इस जगत् का उपादानकारण वर्णन करता हो। प्रपञ्चरूपी विषय इतना वेदविरुद्ध और युक्तिशून्य है कि इसको एक साधारण बुद्धि का मनुष्य भी युक्ति और दलीलों से चीर-चीर कर सकता है। वास्तव में यह गुप्त नास्तिक मत है और संसार को पाप-

सागर में डुबोने के लिए कल्पित किया गया है। मनुष्य अपने-आपको निर्लेप ब्रह्म मानकर इन्द्रियों के विषय-विकारों को झूठा बतलाकर खूब मद्यपान, मांसाहार, पर-स्त्रीगमन आदि कुकर्म इस मायावाद की ओट में करते हैं। यह बात हम ही नहीं कहते अपितु महादेवजी स्वयं पार्वती के सामने इस प्रकार से वर्णन करते हैं कि—

अतएव पद्मपुराणे ब्रह्मयोगदर्शनातिरिक्तानां दर्शनानां निन्दाप्युपपद्यते। यथा तत्र पार्वतीं प्रतीश्वरवाक्यम्—

मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धामेव च। मयैव कथितं देवि! कलौ ब्राह्मणरूपिणा॥ १॥
अपार्थं श्रुतिवाक्यानां दर्शयंल्लोकगर्हितम्। कर्म स्वरूपत्याज्यत्वमत्र च प्रतिपाद्यते॥ २॥
सर्वकर्म परिभ्रंशान्नैष्कर्म्यं तत्र चोच्यते। परात्मजीवयोरैक्यं मयात्र प्रतिपाद्यते॥ ३॥
ब्रह्मणोऽस्य परं रूपं निर्गुणं दर्शितं मया। सर्वस्य जगतोऽप्यस्य नाशनार्थं कलौ युगे॥ ४॥
वेदार्थवन्महाशास्त्रं मायावादमवैदिकम्। मयैव कथितं देवि! जगतां नाशकारणात्॥ ५॥

[सांख्यदर्शनम्। विज्ञानभिक्षुविरचितभाष्यसहितम्। पण्डितकुलपतिना बी०ए० उपाधिधारिणा श्रीजीवानन्दविद्यासागरभट्टाचार्येण संस्कृतं च प्रकाशितं द्वितीयसंस्करणं कलिकातानगरे सरस्वती यन्त्रे मुद्रितम्। ई० १८९३]—भूमिकायां पृ० ५-६ [कुछ पाठभेद से पद्मपुराण उ० खण्ड २३६।७-११—सं०]

भाषार्थ—इसलिए पद्मपुराण में ब्रह्मयोगदर्शन को छोड़कर अन्य दर्शनों की निन्दा भी गई है, जैसे वहाँ पार्वती के प्रति शिव का वाक्य है—

मायावाद झूठा शास्त्र है और वह गुप्त बौद्धमत है। हे देवि! वह ब्राह्मण का रूपधारण करके मैंने ही कथन किया है॥ १॥ उसमें संसार से निन्दित श्रुतिवाक्यों का झूठा अर्थ और कर्मस्वरूप का त्यागभाव प्रतिपादन किया है॥ २॥ सब कर्मों से भ्रष्ट होकर निकम्मेपन का उसमें उपदेश किया गया है। परमात्मा तथा जीवात्मा का एक होना मैंने इसमें प्रतिपादन किया है॥ ३॥ मैंने उसमें ब्रह्म का परमरूप निर्गुणता दिखाया है। यह काम मैंने कलियुग में सारे जगत् को नाश करने के लिए किया है॥ ४॥ वेदों के अर्थ-जैसा मायावाद का महाशास्त्र वास्तव में वेदविरुद्ध है। हे देवि! जगत् को नष्ट करने के लिए यह उपदेश मैंने ही किया है॥ ५॥

कहिए महाराज! अब तो हमारे कथन में सन्देह की गुंजाइश नहीं है? आपके घर से ही आपके 'अभिन्ननिमित्तोपादानकारण' का ज़बरदस्त खण्डन निकल आया। अब माथे पर हाथ रखकर इन पुराणों की जान को रोवो तथा यह शे'र भी पढ़ते जावो कि—

'इस घर को आग लग गई घर के चिराग़ से'

(१६८) प्रश्न—यहाँ पर **'नासदासीत्'** प्रभृति सैकड़ों मन्त्र जो अद्वैत का प्रतिपादन करते थे, वे तो छिपा लिये गये और **'द्वा सुपर्णा'** इस एकमन्त्र को लेकर द्वैत का प्रतिपादन कर दिया।

—पृ० २३१, पं० १९

उत्तर—आपने सत्यार्थप्रकाश का वह प्रकरण अपनी पुस्तक में उद्धृत तो किया किन्तु विवेचन करते समय तारे नज़र आने लगे। ज़रा स्वामीजी के प्रमाण और युक्तियों की विवेचना तो की होती! किन्तु स्वामीजी के लेख का उत्तर देना कोई 'खालाजी का घर' थोड़ा ही है। हमने यह सिद्ध कर दिया कि **'नासदासीत्'** इत्यादि सूक्त के सात मन्त्र समष्टिरूप से ईश्वर, जीव तथा प्रकृति तीनों सत्ताओं को भिन्न-भिन्न तथा अनादि मानते हैं। और **'द्वा सुपर्णा'** पर तो आपकी लेखनी ही टूट गई। इसपर कुछ लिखने का तो आप साहस ही न कर सके। आप ये भूल करते हैं कि वेद में दोनों प्रकार के मन्त्र हैं। यदि वेद द्वैत तथा अद्वैत दोनों का ही प्रतिपादन करें तो

न्याय के—

तदप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः। —न्याय० २।१।५८

अर्थ—जिस ग्रन्थ में झूठ, परस्पर-विरोध तथा पुनरुक्ति हो वह ग्रन्थ प्रमाण के योग्य नहीं होता।

इस सूत्रानुसार वेद प्रमाण के योग्य ही न रहेंगे, अतः हम इस बात की डंके की चोट घोषणा करते हैं कि वेदों में एक मन्त्र भी ऐसा नहीं है जो ब्रह्म को जगत् का 'अभिन्ननिमित्तोपादानकारण' वर्णन करता हो, और '**द्वा सुपर्णा**' इत्यादि अनेक मन्त्र विद्यमान हैं जो प्रकृति को जगत् का उपादानकारण, ब्रह्म को निमित्तकारण तथा जीव को साधारणकारण वर्णन करते हुए तीनों को भिन्न तथा अनादिकाल से अनन्तकाल तक रहनेवाला मानते हैं, अतः आपकी कल्पना सर्वथा वेदविरुद्ध और मिथ्या है।

(१६९) प्रश्न—वेदान्तदर्शन को तो छिपा लिया और सांख्य दिखला दिया।

—पृ० २३१, पं० २१

उत्तर—हम यह दिखला चुके हैं कि वेदान्त भी प्रकृति को जगत् का उपादानकारण तथा ब्रह्म को निमित्तकारण मानता है, अतः वेदान्त और सांख्य में विरोध नहीं है अपितु दोनों ही वैदिक सिद्धान्तों का निरूपण करते हैं। हाँ, यदि आपके विचार से दोनों में विरोध है तो आप स्पष्टरूप से घोषणा क्यों नहीं करते कि सांख्य का मत वेदविरुद्ध है? यदि सांख्य भी वेदानुकूल है तो आपकी यह शिकायत व्यर्थ है कि स्वामीजी ने वेदान्त को छिपाकर सांख्य दिखला दिया। हर हालत में स्वामीजी ने आपके विचार-अनुसार भी सांख्य को दिखाते हुए वैदिक सिद्धान्त का ही प्रतिपादन किया है।

(१७०) प्रश्न—'न्यायशास्त्र परमाणुओं को नित्य मानता है और सांख्य प्रकृति-पुरुष इन दो को'—इस झगड़े का भी स्वामी दयानन्दजी फैसला न कर सके। —पृ० २३२, पं० ७

उत्तर—जहाँ न्याय परमाणुओं को नित्य मानता है वहाँ जीव तथा ब्रह्म दोनों का ही आत्मा शब्द से प्रतिपादन करता है। परमाणु तथा प्रकृति दो वस्तु नहीं है। जहाँ पर न्यायशास्त्र, अग्नि, वायु, जल, पृथिवी के परमाणु तथा आकाश को विभू कहकर पाँच तत्त्वों का वर्णन करता है वहाँ सांख्य इन्हीं पाँच तत्त्वों को पञ्चतन्मात्रा कहकर इनकी समष्टि को प्रकृति कह देता है और सांख्य 'पुरुष' शब्द से जीवात्मा तथा परमात्मा का वर्णन करता है, जैसे—

पुरुषबहुत्वं व्यवस्थातः। —सांख्य० ६।४५

भाषार्थ—यह निश्चय है कि जीव बहुत हैं।

इससे जीवों का तथा—

समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता। —सांख्य० ५।११६

अर्थ—जीव को समाधि, सुषुप्ति तथा मोक्ष में ब्रह्म के स्वरूप का अनुभव होता है।

इससे परमात्मा का प्रतिपादन करता है। सारांश यह कि न्याय और सांख्य दोनों ही ईश्वर, जीव, प्रकृति तीनों को अनादि तथा जगत् का कारण मानते हैं, अतः दोनों में विरोध नहीं है अपितु दोनों वैदिक सिद्धान्तों का निरूपण करते हैं और यही स्वामी दयानन्दजी का फ़ैसला है।

(१७१) प्रश्न—सांख्य प्रकृति, पुरुष दो को और वेदान्त केवल ब्रह्म को मानता है। सनातन धर्म के सम्प्रदाय में भी दो भेद हैं। शंकर अद्वैत और भगवान् माधव द्वैत मानते हैं। इसी प्रकार वेद '**एकः सुपर्णः**' इस मन्त्र से अद्वैत और '**द्वा सुपर्णा**' इस मन्त्र में द्वैत कह रहा है। तो क्या अब हम वेदान्तदर्शन, जगद्गुरु शंकराचार्य का सिद्धान्त और अद्वैत बतलानेवाले वेदमन्त्र इन सबको

मिथ्या कहकर जान बचाते हुए धर्मनिर्णय पर धूल डाल दें? —पृ० २३२, पं० ११

उत्तर—सांख्य प्रकृति को मानता हुआ पुरुष शब्द से ईश्वर तथा जीव को भी अनादि मानता है तथा वेदान्त **'प्रकृतिश्च'** तथा **'गुहां प्रविष्टावात्मानौ'** इन दोनों सूत्रों में ईश्वर, जीव, प्रकृति को अनादि मानता है (देखो नं० १६४)। और मोक्ष में भी जीव को—

भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च। —वेदान्त० ४।४।२१

अर्थात् मोक्ष में जीव केवल आनन्द भोगने में ईश्वर के सदृश होता है, सत्ता उसकी भिन्न ही रहती है।

इस सूत्र से वेदान्त जीव का ब्रह्म में लय होना नहीं मानता, अतः सांख्य और वेदान्त में विरोध नहीं है, अपितु दोनों ही वैदिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं। और **'एकः सुपर्णः।'** यह वेदमन्त्र ब्रह्म का वर्णन नहीं करता अपितु जीव का प्रतिपादन करता है (देखो नं० १६४)।

रही सनातनधर्म की बात, यह तो चूँ-चूँ का मुरब्बा है। इसमें सब बादी, बलग़म समा जाती है। जब मांसाहारी भी सनातनधर्मी और अनामिषभोजी भी सनातनधर्म्मी, शराबी भी सनातनी, मद्यत्यागी भी सनातनी, ब्रह्मचारी भी सनातनी, रण्डीबाज़ भी सनातनी, राम और कृष्ण भी सनातनी, रावण और कंस भी सनातनी, अद्वैतवादी शंकर भी सनातनी, तथा द्वैतवादी माधव भी सनातनी, तो ऐसी सूरत में इस सनातनधर्म की आप कब तक खैर मनावेंगे? दो किश्तियों में सवार होनेवाले की भाँति सनातनधर्म यदि आज नहीं तो कल भी नहीं। इसकी जान बचाने के खयाल को बालाये-ताक़ रखकर आप इसकी कफ़न-काठी का प्रबन्ध करें। यह तपेदिक इसके प्राण लेकर ही छोड़ेगा। रही वेदशास्त्र की बात, सो न तो वेद का कोई मन्त्र ब्रह्म को जगत् का 'अभिन्ननिमित्तोपादानकारण' वर्णन करता है और न ही वेदान्तदर्शन ऐसा मानता है। ऐसी सूरत में विरोधभण्डार सनातनधर्म के धर्मनिर्णय पर तो धूल पड़ ही चुकी, अब यह धूल वेदशास्त्रों पर डालने की कृपा न करें।

(१७२) प्रश्न—विश्व का उपादानकारण ब्रह्म है। जिस प्रकार घट मिट्टी से उत्पन्न होकर मिट्टी में ही लय होता है, इसी प्रकार यह समस्त विश्व प्रलय के पश्चात् ब्रह्म से उद्‌भूत होकर फिर प्रलय होने के अवसर पर ब्रह्म में मिल जाता है। यह बात सत्य है और इसी का नाम पारमार्थिक सत्ता है। —पृ० २३२, पं० २३

उत्तर—विश्व का उपादानकारण ब्रह्म नहीं अपितु प्रकृति है। जैसे घट मिट्टी से उत्पन्न होकर मिट्टी में ही लय होता है, वैसे ही यह समस्त विश्व प्रकृति से पैदा होकर प्रकृति में ही लय हो जाता है। ब्रह्म निमित्तकारण है, क्योंकि जैसे घट में मिट्टी के जड़त्व आदि गुण मौजूद होते हैं, वैसे समस्त विश्व में चैतन्यता, सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता, आनन्दस्वरूपता आदि गुण विद्यमान नहीं हैं, अतः प्रकृति के उपादानकारण होने की बात सत्य तथा ब्रह्म के उपादानकारण होने की बात मिथ्या है। इस कारण इसका नाम पारमार्थिकता नहीं अपितु मिथ्यार्थिकता है।

(१७३) प्रश्न—संसार का व्यवहार चलाने के लिए हमको मिट्टी से भिन्न घट, हाँडी, नाँद, श्राव मानने होंगे, ऐसा न मानें तो पारमार्थिक सत्ता सत्य रहने पर भी व्यवहार नहीं चलता तथा उपास्य-उपासकभाव नहीं बनता। सत्ता का व्यवहार चलाने और जीव को अपवर्ग-पद पर पहुँचाने के लिए व्यावहारिक सत्ता का मानना आवश्यकीय है। —पृ० २३३, पं० ७

उत्तर—संसार का व्यवहार भी सचाई से ही चलता है, मिथ्या कल्पनाओं से नहीं। जब हम यथार्थरूप से यह मान लेंगे कि घट, हाँडी, नाँद, श्राव आदि मिट्टी उपादानकारण के कार्यरूप हैं तो हमें इनको मिट्टी से भिन्न मानने की आवश्यकता ही न रहेगी, और यदि भिन्न मानेंगे तो वह मिथ्या ज्ञान होगा जो हमारे व्यवहार में मिथ्यात्व पैदा कर देगा तथा हम घट आदि को मिट्टी से भिन्न स्वर्ण आदि मानकर व्यवहार में धोखा खावेंगे। वास्तविक बात के मानने से उपास्य-

उपासकभाव भी नहीं बिगड़ेगा, क्योंकि जीव जानता है कि मैं अनादि होने पर भी अल्पज्ञ-अल्पबल होने से सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् प्रभु का उपासक हूँ। स्वयं ब्रह्म होने का मिथ्या ज्ञान होने पर न वह ब्रह्म को उपास्य मानेगा और न उसे अपवर्ग-पद पर पहुँचने की आवश्यकता अनुभव होगी, क्योंकि वह जानता है कि जब मैं स्वयं ब्रह्म हूँ, स्वयं मोक्षस्वरूप हूँ तो उपासना की क्या आवश्यकता है, अतः संसार का व्यवहार चलाने के लिए भी यथार्थ ज्ञान ही उपयोगी हो सकता है, मिथ्या ज्ञान नहीं।

(१७४) प्रश्न—वेद ने **'नासदासीत्'** प्रभृति मन्त्रों में पारमार्थिक सत्ता और **'द्वा सुपर्णा'** मन्त्र में व्यावहारिक सत्ता दिखलाई है। —पृ० २३३, पं० २३

उत्तर—आपके लेख से सिद्ध है कि ईश्वर मिथ्याज्ञान का उपदेश भी करता है। क्या ऐसा करनेवाला ईश्वर कहलाने का अधिकारी हो सकता है? चक्कर में न पड़िएगा। वेद का अटल सिद्धान्त है कि संसार का उपादानकारण प्रकृति, निमित्तकारण ईश्वर तथा साधारणकारण जीव है। तीनों स्वरूप से भिन्न, व्याप्य-व्यापकभाव से एक हैं और अनादिकाल से अनन्तकाल तक विद्यमान रहेंगे। यही पारमार्थिक सत्ता है और इसी का **'नासदासीत्'** तथा **'द्वा सुपर्णा'** इत्यादि मन्त्रों ने वर्णन किया है। यही व्यावहारिक सत्ता भी है। ब्रह्म का अभिन्ननिमित्तोपादानकारण होना न कभी पारमार्थिक सत्ता हुई, न है, न होगी और न ही इसका किसी भी वेदमन्त्र ने वर्णन किया है, न ही इसके व्यवहार में आने से मनुष्य का कल्याण हो सकता है। हाँ, इस सिद्धान्त के माननेवालों को गरुडपुराण ने मूर्ख बताया है, जैसाकि—

एक एव हरिः पूर्वं ह्यविद्यावशतः स्वयम्।
अनेको भवति ह्यारादादर्शप्रतिबिम्बवत्॥ १८॥
एवं वदन्ति ये मूढास्तेऽपि यान्त्यधरं तमः॥ १९॥ —गरुड० उत्तर० ब्रह्म० अ० २

भाषार्थ—पहले एक ही ब्रह्म था फिर वह स्वयं अविद्या के कारण अनेक हो गया जैसेकि अनेक दर्पणों में एक सूर्य के अनेक प्रतिबिम्ब हो जाते हैं॥ १८॥ जो मूढ लोग ऐसा कहते हैं वे भी अत्यन्त नीच गति को प्राप्त होते हैं॥ १९॥

कहिए महाराज! अब वैदिक सिद्धान्त को मानकर उच्च गति को प्राप्त करने की इच्छा है या इसी नीच गति में ही पड़कर सड़ने का इरादा है?

सृष्टि

(१७५) प्रश्न—वेद ने यजुर्वेद के ३१वें अध्याय में सृष्टि कही है, किन्तु क्रमशः न कही। —पं० २३३, पं० २६

उत्तर—ठीक है महाराज! ईश्वर ने तो क्रमशः नहीं कही, अब आप कहेंगे। आप ईश्वर के दादागुरु जो हुए! यदि आप ही ईश्वर की ग़लतियाँ न निकालें तो और कौन निकालेगा? अच्छा तो अब आप ही क्रमशः वर्णन कीजिए।

(१७६) प्रश्न—'स वै नैव रेमे तस्माद्' इत्यादि [शत० १४।४।२।४ से १०] में क्रमशः सृष्टि की पैदाइश लिखी है कि ईश्वर बहुत स्थूल पैदा हुआ, फिर अपने दो हिस्से करके पति-पत्नी बन गया। उससे मनुष्य पैदा हुए। स्त्री लज्जा की मारी गौ, घोड़ी, गधी, बकरी, भेड़, चींटी आदि बनती गई तथा पुरुष भी क्रमशः बैल, घोड़ा, गधा, बकरा, भेड़, च्यूँटी आदि बनकर सन्तान पैदा करता गया। इस प्रकार सारी सृष्टि पैदा हुई। —पृ० २३४, पं० २

उत्तर—धन्य हो महाराज! अब आप सृष्टि का क्रमशः वर्णन करने लगे हैं। प्रथम तो वेद का नाम लिखकर शतपथ का पाठ नकल कर दिया। धर्म से बतलाइए क्या शतपथ वेद है? यदि

नहीं तो वेद के नाम से शतपथ का पाठ लिखना कहाँ की ईमानदारी है और फिर शतपथ का भी पाठ पूरा नहीं लिखा, बीच में से वाक्य-के-वाक्य चुरा गये! फिर अर्थ करने में तो ईमानदारी का दिवाला ही निकाल दिया! 'वह बहुत स्थूल हुआ', 'उसने अपने स्थूल शरीर के', 'वह लज्जा की मारी' इत्यादि, इस पाठ में से किन वाक्यों का अर्थ है? यह भी पता नहीं लगा कि इस पाठ के देने से आपका प्रयोजन क्या है, क्योंकि यह सारा ही पाठ आपके सिद्धान्त का खण्डन तथा स्वामीजी के सिद्धान्त का मण्डन करता है। लीजिए, हम पूरा पाठ तथा उसका वेदानुकूल अर्थ नीचे देते हैं—

स वै नैव रेमे। तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत्स हैतावानास यथा स्त्रीपुमाꣳसौ सम्परिष्वक्तौ॥ ४॥ स इममेवात्मानं द्वेधापातयत्। ततः पतिश्च पत्नी चाभवतां तस्मादिदमर्धवृगलमिव स्व इति ह स्माह याज्ञवल्क्यस्तस्मादयमाकाशः स्त्रिया पूर्यत एव ताꣳसमभवत्ततो मनुष्या अजायन्त॥ ५॥ सो हेयमीक्षां चक्रे कथं नु मात्मन एव जनयित्वा सम्भवति हन्त तिरोऽसानीति॥ ६॥ सा गौरभवत्। वृषभ इतरस्ताꣳसमेवाभवत्ततो गावो अजायन्त॥ ७॥ वडवेतराभवत्। अश्ववृष इतरो गर्दभीतरा गर्दभ इतरस्ताꣳसमेवाभवत्तत एकशफमजायत॥ ८॥ अजेतराभवत्। वस्त इतरोऽविरितरो मेष इतरस्ताꣳसमेवाभवत्ततोऽजावयोऽजायन्तैवमेव यदिदं किं च मिथुनमा पिपीलिकाभ्यस्तत्सर्वमसृजत॥ ९॥ सोऽवेत्। अहं वाव सृष्टिरस्म्यहꣳहीदꣳसर्वमसृक्षीति ततः सृष्टिरभवत्सृष्ट्याꣳहास्यैतस्यां भवति य एवं वेद॥ १०॥

भाषार्थ—वह निश्चय रचनारूप क्रीडा न कर सका, इस कारण से कि अकेला रचना न कर सकता था। उसने दूसरे को चाहा, वह ऐसा था जैसे स्त्री-पुरुष मिले हुए इकट्ठे॥ ४॥ उसने जीवात्माओं को दो हिस्सों में विभाजित किया, उससे पति-पत्नियाँ हुईं। 'यह पुरुष [विवाह से पूर्व] आधी सीप के समान था' ऐसा याज्ञवल्क्य का कथन है। इसलिए यह आकाश स्त्री से पूर्ण किया जाता है। उससे संगम किया, उससे मनुष्य पैदा हुए॥ ५॥ उसने यह इच्छा की कैसे मैं जीवात्माओं को पैदा करके सृष्टि उत्पन्न करूँ, मैं गुप्त ही रहूँ॥ ६॥ वे गौवें हुईं, वे बैल हुए, दोनों आपस में मिले, उनसे गाय-बैल पैदा हुए॥ ७॥ बडवा अलग हुई। घोड़े-बैल अलग पैदा हुए। गधी अलग हुई, गधा पृथक् हुआ। वे आपस में मिले इससे एक खुरवाले पैदा हुए॥ ८॥ बकरियाँ अलग पैदा हुईं। भेड़ें अलग हुईं, भेड़े अलग हुए, बकरे अलग। वे आपस में मिले। उससे बकरी, भेड़ पैदा हुए, ऐसे ही यह जो कुछ जोड़े कीड़ियों तक हैं वे सब पैदा किये॥ ९॥ उसने जाना मैं ही पैदा करनेवाला हूँ। यह सब-कुछ पैदा किया उससे सृष्टि हुई और निश्चय वह इस सृष्टि में ही है, जो इस प्रकार से जानता है॥ १०॥

ब्रतलाइए, इसमें आपकी वर्णन की हुई आँख-मिचौनी कहाँ है? आपने लिखा कि वेद ने सृष्टि क्रमशः नहीं कही। यहाँ चाँद, सूरज, सितारे, पृथिवी, जलवायु, अग्नि की पैदाइश का वर्णन ही नहीं है। क्या इनके बिना ही यह भेड़-बकरी आदि के जोड़े पैदा हो गये? इससे तो हज़ार दर्ज़ा बेहतर यजुर्वेद के ३१वें अध्याय में सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है। आप कृपया इस लेख में कोई ऐसी बात तो बतलावें जो यजुर्वेद में न हो और यह भी बतलाने की कृपा करें कि वह इसमें कौन-सी बात है जो आर्यसमाज के सिद्धान्त के विरुद्ध तथा आपके अनुकूल है? यदि नहीं तो वेद को छोड़कर शतपथ का प्रमाण देना निरर्थक है।

(१७७) प्रश्न—'मनुष्या ऋषयश्च ये' वेद में यह कोई मन्त्र ही नहीं। स्वामीजी ने ताज़ा बनाकर तैयार किया है। —पृ० २३५, पं० १२

उत्तर—सत्यार्थप्रकाश में स्वामीजी ने **'मनुष्या ऋषयश्च ये'**—यह पाठ लिखकर यजुर्वेद

के अध्याय तथा मन्त्र का ठिकाना नहीं लिखा अपितु 'यह यजुर्वेद में लिखा है' ऐसा पाठ है। प्रायः स्वामीजी के ग्रन्थों की शैली इस प्रकार की है कि जहाँ वे वेद का पाठ वेद के शब्दों में देते हैं वहाँ वह अध्याय, मण्डल, सूक्त तथा मन्त्र का नम्बर भी साथ में देते हैं और जहाँ वे वेद के अभिप्राय को अपने शब्दों में रखना चाहते हैं वहाँ वे 'यह वेद का वचन है' 'वेद कहता है' 'यह वेद में लिखा है' ऐसा कहकर वेद-अभिप्राय को अपने शब्दों में लिख देते हैं। ऐसा वे इसलिए करते हैं कि वेद का पूरा पाठ देने से पुस्तक बढ़ न जाए। यहाँ पर भी ऐसी ही बात है। यजुर्वेद के अध्याय ३१ में सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है। स्वामीजी ने सारा अध्याय न देकर उसका सारांश अपने शब्दों में रख दिया है। वैसे यजुर्वेद अध्याय ३१ मन्त्र ९ में यह पाठ मौजूद है कि '**साध्या ऋषयश्च ये**', अब स्वामीजी के तथा वेद के पाठ में यह अन्तर है कि जहाँ वेद में '**साध्याः**' पाठ है वहाँ स्वामीजी के लेख में '**मनुष्याः**' लिखा गया है। यहाँ केवल शब्दों का अन्तर है, अर्थ में कोई अन्तर नहीं है। दोनों का अर्थ एक ही है। महीधर ने '**ये साध्याः सृष्टिसाधनयोग्याः प्रजापतिप्रभृतयः**', 'जो सन्तान पैदा करने के योग्य प्रजापति आदि' ऐसा अर्थ किया है, अतः यहाँ पर स्वामीजी का और वेद का अभिप्राय एक ही है। यह शैली केवल स्वामीजी की ही नहीं है अपितु '**भावप्रधाना आचार्या भवन्ति**' सब आचार्य भावप्रधान होते हैं, अर्थात् सब आचार्यों की यह शैली है कि वे ग्रन्थों के भाव का अपने शब्दों में वर्णन करते हैं। उदाहरणार्थ आप वेदव्यासजी को लेवें, वे महाभारत आदिपर्व[१] अध्याय १०४, श्लोक ६ में नियोग की व्यवस्था करते हुए लिखते हैं कि '**पाणिग्राहस्य तनय इति वेदेषु निश्चितम्**' अर्थात् नियोग से पैदा हुआ पुत्र विवाहित पति का ही कहाता है—यह वेदों में निश्चित है। यहाँ व्यासजी ने वेद के अभिप्राय को अपने शब्दों में वर्णन किया है। वरना अथर्ववेद काण्ड १८, सूक्त ३, मन्त्र २ में '**हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदम्**' यह पाठ है। '**पाणिग्रहास्य**' यह पाठ बिल्कुल '**हस्तग्राभस्य**' का अनुवाद है। इससे व्यासजी की नीयत पर शक नहीं किया जा सकता। ऐसे ही स्वामीजी का पाठ '**मनुष्या ऋषश्च ये**' भी '**साध्या ऋषयश्च ये**' का अनुवाद ही है। इससे स्वामीजी की नीयत पर शक नहीं किया जा सकता। यदि आपको ताज़े बने हुए मन्त्रों के देखने का शौक हो तो निम्न मन्त्रों की पड़ताल करके बतलाएँ कि ये मन्त्र कौन-से वेद के हैं या व्यासजी ने ताज़ा बनाकर रखे हैं—

अनृताः स्त्रिय इत्येवं वेदेष्वपि हि पठ्यते॥ ७॥

—महा० अनुशा० अ० १९

पिता यदाह धर्मः स वेदेष्वपि सुनिश्चितः॥ १७॥

—महा० शान्ति० अ० २६६

दर्पो नाम श्रियः पुत्रो जज्ञेऽधर्मादिति श्रुतिः॥ २७॥

—महा० शान्ति० अ० ९०

वचनं सामवेदोक्तं सन्तो जानन्ति सर्वतः॥ १०४॥
सूर्य्याद्धि जायते तोयं तोयात्सस्यानि शाखिनः॥ १०६॥

—ब्रह्मवैवर्त० खण्ड ४ अ० २७

मन्त्रस्तु सामवेदोक्तोऽयातयामः सबीजकः।
ओम् श्री दुर्गायै सर्वविघ्नविनाशिन्यै नम इति॥ ८॥

—ब्रह्मवैवर्त० खण्ड ४ अ० २७

---

१. गीताप्रेस संस्करण में यह श्लोक नहीं है। पूना-संस्करण में ९८।५ पर उपलब्ध है। —सं०

'ओम् सर्वेश्वरेश्वराय सर्वविघ्नविनाशिने मधुसूदनाय स्वाहेति' अयं मन्त्रो महागूढ़ः सर्वेषां कल्पपादपः। सामवेदे च कथितः सिद्धान्नां सर्वसिद्धिदः॥ ३७॥

—ब्रह्मवैवर्त०ख० ४ अ० ७८

आशा है आचार्यों की यह शैली आपकी समझ में आ जावेगी।

(१७८) प्रश्न—'ततो मनुष्या अजायन्त' यह शतपथ की श्रुति का टुकड़ा है। इसको यजुर्वेद के नाम से लिखा है। —पृ० २३५, पं० १३

उत्तर—प्रथम तो सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि 'यह यजुर्वेद के ब्राह्मण में लिखा है' और शतपथ ही यजुर्वेद का ब्राह्मण है।

दूसरे, यदि यजुर्वेद का ही लिखा हो तो क्या हानि है, क्योंकि स्वामीजी ने यजुर्वेद के इकतीसवें अध्याय का अभिप्राय अपने शब्दों में वर्णन कर दिया है और यह आचार्यों की शैली है (नं० १७७)। तीसरे, आप तो शतपथ को यजुर्वेद ही मानते हैं, आपको एतराज़ करने का क्या अधिकार है कि यह वेद का पाठ नहीं है?

(१७९) प्रश्न—जवान-जवान मनुष्य, स्त्रियाँ, घोड़े, घोड़ियाँ, भैंस और भैंसे प्रभृति सब सृष्टि जवान-जवान पैदा हुई। नहीं मालूम ये निराकार के जवान-जवान जोड़े किसी के घर से भागे या आसमान से टपके। इनकी पैदाइश कैसे हुई? —पृ० २३५, पं० १८

उत्तर—अमैथुनीसृष्टि में सब प्राणी-माँ-बाप के बिना पैदा होते हैं यह सिद्धान्त निर्विवाद है। अब सवाल यह है कि वे प्राणी किस अवस्था में पैदा होते हैं। इसपर स्वामीजी लिखते हैं कि 'आदिसृष्टि में मनुष्य आदि की सृष्टि युवावस्था में हुई, क्योंकि जो बालक उत्पन्न करता तो उनके पालन के लिए दूसरे मनुष्य आवश्यक होते और जो वृद्धावस्था में बनाता तो मैथुनी सृष्टि न होती। इसलिए युवावस्था में सृष्टि की है।' इसमें स्वामीजी ने जो सृष्टि के युवावस्था में उत्पन्न होने में युक्ति दी है, आप उसपर एक अक्षर भी नहीं लिख सके। स्वामीजी का यह लेख निराधार नहीं है, अपितु वेद के आधार पर है। देखिए, वेद क्या कहता है—

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः॥

—ऋ० ५।६०।५

भाषार्थ—सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न मनुष्य ज्येष्ठता-कनिष्ठतारहित होते हैं। ये भाई कल्याण के लिए एक-से बढ़ते हैं। सदा जवान, सदा श्रेष्ठकर्मा, पापियों को रुलानेवाला शक्तिशाली प्रभु इनका पिता है और उद्यमी मनुष्यों के लिए सुकाल उपस्थित करनेवाली प्रकृति अथवा पृथिवी सब मनोरथों को पूर्ण करनेवाली होती है॥५॥

वेद ने कैसे स्पष्ट शब्दों में सृष्टि के आरम्भ में प्राणियों की युवावस्था वर्णन की है!

अपने भी जो **'स नैव रेमे'** के अर्थ में पति-पत्नी, गौ-बैल, घोड़ा-घोड़ी, भेड़ा-भेड़ी, बकरा-बकरी आदि के जोड़े पैदा हुए लिखकर उनके मैथुन से फिर मनुष्य, गौवें, भेड़, बकरी आदि का पैदा होना लिखा है, उन जोड़ों की उस समय क्या आयु थी? यदि वे जोड़े बालक वा बूढ़े थे तो उन्होंने मैथुन करके सन्तान कैसे पैदा की। निराकार परमेश्वर के तो जवान जोड़े प्रकृति के घर से निकल पड़े, किन्तु आपके निर्गुण ब्रह्म के ये मनुष्य से कीड़ी तक मैथुन करके सन्तान पैदा करनेवाले नौजवान जोड़े कहाँ से टपक पड़े? 'छाज तो बोले छलनी क्या बोले जिसमें सत्तर छेद'! पौराणिक भी जवान पैदा होने में शक कर सकते हैं, जिनके सरस्वती नौजवान पैदा हुई

जिसको देखकर ब्रह्माजी विवश हो गये! पार्वती ने गणेश को जवान पैदा किया जिसने ब्रह्म की दाढ़ी उखेड़ी, विष्णु को डण्डे से पीटा तथा महादेव से युद्ध किया! वसिष्ठ की गौ के शरीर से नौजवानों की फ़ौज पैदा हुई, जिसने विश्वामित्र से लड़ाई की! दक्ष के यज्ञ को नाश करने के लिए महादेव ने जटों से नौजवान वीरभद्र को पैदा किया, नारदजी एक तालाब में स्नान करने से स्त्री बन गये, राजा तालध्वज ने विवाह कर गर्भाधान किया, तब—

ततस्त्रयोदशे वर्षे तस्या गर्भोऽभवन्महान्॥ ७५॥
पञ्चाशत संख्यया जाता उपसर्गादिवर्जिताः।
आरूढयौवनाः सर्वे सुताः संग्रामकोविदाः॥ ७६॥

—भविष्य० उत्तर० अ० ३

भाषार्थ—इसके पीछे तेरहवें वर्ष में उसके बड़ा भारी गर्भ हुआ, जिसमें से पचास नौजवान युद्धविशारद लड़के पैदा हुए॥ ७५। ७६॥

कहिए, कुछ और पौराणिक लीलाएँ सुनाएँ या तसल्ली हो गई?

(१८०) प्रश्न—शतपथ की समस्त श्रुति को छिपाकर **'ततो मनुष्या अजायन्त'** केवल इस टुकड़े को लिखना और मनमानी युवासृष्टि का पैदा होना स्वामीजी ने क्यों लिखा?

—पृ० ३२५, पं० २३

उत्तर—स्वामीजी ने प्रकरण के लिए आवश्यक वेदानुकूल पाठ को लिख दिया, किन्तु शेष पाठ भी स्वामीजी के सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं है। आपने प्रकृति को नित्य सिद्ध करनेवाला पाठ पाँचवें मन्त्र में से आधा मन्त्र जिसमें 'आकाशः स्त्रिया पूर्यत' आकाश उस प्रकृतिरूपी स्त्री से पूर्ण था, छिपा लिया। नौजवान स्त्री, पुरुष भेड़, बकरी आदि के जोड़े जिन्होंने मैथुन करके सन्तान पैदा की इस पाठ में आपने भी स्वीकार किये हैं, अतः शतपथ का यह पाठ ईश्वर, जीव, प्रकृति को नित्य तथा सृष्टि के तीन कारण वर्णन करने से वेदानुकूल है और आपकी कल्पनाएँ वेदविरुद्ध होने से सर्वथा मिथ्या हैं।

देवजाति

(१८१) प्रश्न—'त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिꣳशाः—[यजुः० २०। ११] इस मन्त्र में तीन तथा ग्यारह और तेतीस देवताओं का वर्णन है। —पृ० २३६, पं० ४

उत्तर—यहाँ पर वेदों में कपोलकल्पित पौराणिक देवताओं का वर्णन नहीं है और न ही बृहस्पति से अभिप्राय यहाँ कल्पित देवताओं के गुरु से है। यहाँ देवता से अभिप्राय दिव्य गुणोंवाले संसार की उत्पत्ति में कारण पृथिवी आदि तेतीस देवताओं से है। तीन और ग्यारह देवता भी इन्हीं तेतीस में आ जाते हैं। मन्त्र के यथार्थ अर्थ इस प्रकार हैं—

त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिꣳशाः सुराधसः।
बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सवे। देवा देवैरवन्तु मा॥ —यजुः० २०। ११

भाषार्थ—जो तीन प्रकार के दिव्य गुणवाले, जिनमें कि बड़ों का पालन करनेहारा सूर्य प्रथम धारण किया हुआ है। जिनसे अच्छे प्रकार कार्यों की सिद्धि होती वे ग्यारह और तेतीस दिव्य गुणवाले पदार्थ सब जगत् की उत्पत्ति करनेहारे, प्रकाशमान ईश्वर के परमैश्वर्ययुक्त उत्पन्न किये हुए जगत् में हैं। उन पृथिव्यादि तेंतीस पदार्थोंसहित विद्वान् लोग मेरी रक्षा और मुझे बढ़ाया करें॥ ११॥

भावार्थ—जो पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, नक्षत्र ये आठ और प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय तथा ग्यारहवाँ जीवात्मा, बाहर महीने,

बिजली और यज्ञ इन तेंतीस दिव्य गुणवाले पृथिव्यादि पदार्थों के गुण-कर्म-स्वभाव के उपदेश से सब मनुष्यों की उन्नति करते हैं, वे सर्वोपकारक होते हैं॥ ११॥

समस्त शास्त्रों में तेतीस देवताओं से अभिप्राय उपर्युक्त सब व्यवहारसिद्धि के लिए हैं। सब मनुष्यों को उपासना के योग्य तो एक देव ब्रह्म ही है। उपर्युक्त समस्त लेख में प्रमाण निम्न प्रकार है—

अथ हैनं विदग्धः शाकल्यः पप्रच्छ। कति देवा याज्ञवल्क्येति स हैतयैव निविदा प्रतिपेदे यावन्तो वैश्वदेवस्य निविद्युच्यन्ते त्रयश्च त्री च शता त्रयश्च त्री च शता त्रयश्च त्री च सहस्त्रेत्योमिति होवाच॥ १॥ कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति। त्रयस्त्रिꣳशदित्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति षडित्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति त्रय इत्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति द्वावित्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति अध्यर्ध इत्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येत्येक इत्योमिति होवाच कतमे ते त्रयश्च त्री च शता त्रयश्च त्री च सहस्त्रेति॥ २॥ स होवाच। महिमान एवैषामेते त्रयस्त्रिꣳशत्त्वेव देवा इति कतमेते त्रयस्त्रिꣳशदित्यष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्यास्त एकत्रिꣳशदिन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिꣳशाविति॥ ३॥ कतमे वसव इति। अग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्च चन्द्रमाश्च नक्षत्राणि चैते वसव एतेषु हीदꣳसर्वं वसु हितमेते हीदं सर्वं वासयन्ते तद्यदिदꣳसर्वं वासयन्ते तस्माद्वसव इति॥ ४॥ कतमे रुद्रा इति। दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशस्ते यदास्मान्मर्त्याच्छरीरादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति॥ ५॥ कतम आदित्या इति। द्वादशमासाः संवत्सरस्यैत आदित्या एते हीदꣳ सर्वमाददाना यन्ति तद्यदिदꣳसर्वमाददाना यन्ति तस्मादादित्या इति॥ ६॥ कतम इन्द्रः कतमः प्रजापतिरिति। स्तनयित्लुरेवेन्द्रो यज्ञः प्रजापतिरिति कतम स्तनयित्नुरित्यशिनरिति कतमो यज्ञ इति पशव इति॥ ७॥ कतमे षडिति। अग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्चैते षडित्येते ह्येवेदꣳसर्वं षडिति॥ ८॥ कतमे ते त्रयो देवा इति इम एव त्रयो लोका एषु हीमे सर्वे देवा इति कतमौ तौ द्वौ देवावित्यन्नं चैव प्राणश्चेति कतमोऽध्यर्ध इति योऽयं पवत इति॥ ९॥ तदाहुः। यदयमेक एव पवतेऽथ कथमध्यर्ध इति यदस्मिन्निदꣳसर्वमध्यार्ध्नोत्तेनाध्यर्ध इति कतम एको देव इति स ब्रह्मेत्यदित्याचक्षते॥ १०॥ —शत० १४।६।९१-१०

भाषार्थ—उसके पीछे उसको चतुर शाकल्य ने पूछा—हे याज्ञवल्क्य! देवता कितने हैं? उसने उसी बुद्धि से प्रतिपादन किया जिससे सारे विद्वान् प्रतिपादन करते हैं—तीन और तीन सौ और तीन, और तीन हज़ार ऐसा-ऐसा कहा॥ १॥ कितने देव हैं हे याज्ञवल्क्य! ऐसा पूछा। तेतीस हैं, ऐसा उत्तर दिया। फिर पूछा हे याज्ञवल्क्य! कितने देव हैं? छह हैं, ऐसा उत्तर दिया। फिर पूछा हे याज्ञवल्क्य! कितने देव हैं? तीन हैं, ऐसा उत्तर दिया। फिर पूछा कितने देव हैं याज्ञवल्क्य! दो हैं, ऐसा उत्तर दिया। फिर पूछा कितने देव हैं याज्ञवल्क्य! डेढ़ है, ऐसा उत्तर दिया। फिर पूछा कितने देव हैं याज्ञवल्क्य! एक है, तब ऐसा उत्तर दिया। फिर पूछा वे कौन-से तीन और तीन सौ तीन और तीन हज़ार देव हैं?॥ २॥ वह बोला—ये सब इनकी ही महिमाएँ हैं, वैसे देवता तो तेतीस ही हैं। वे कौन-से तेतीस देवता हैं? आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य ये इकतीस, इन्द्र और प्रजापति कुल तेतीस हुए॥ ३॥ कौन-से वसु हैं? अग्नि, पृथिवी, वायु, आकाश, आदित्य, जल, चन्द्रमा, नक्षत्र—ये आठ वसु हैं। इनका वसु नाम इस कारण से है कि सब पदार्थ इन्हीं में बसते हैं और यही सबके निवास करने के स्थान हैं॥ ४॥ कौन-से रुद्र हैं? ग्यारह रुद्र ये कहाते हैं जो शरीर में दश प्राण हैं अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और ग्यारहवाँ जीवात्मा है, क्योंकि जब ये इस शरीर से निकल जाते हैं तब मरण होने से उसके सम्बन्धी लोग रोते हैं। वे निकलते हुए उनको रुलाते हैं, इससे इनका नाम

रुद्र है॥५॥ इसी प्रकार आदित्य बारह महीनों को कहते हैं, क्योंकि सब जगत् के पदार्थों का आदान, अर्थात् सबकी आयु को ग्रहण करते चले जाते हैं। इसी से इनका नाम आदित्य है॥६॥

ऐसे ही इन्द्र नाम बिजली का है, क्योंकि यह उत्तम ऐश्वर्य की विद्या का मुख्य हेतु है और यज्ञ को प्रजापति इसलिए कहते हैं कि उससे वायु और वृष्टि जल की शुद्धि द्वारा प्रजा का पालन होता है तथा पशुओं की यज्ञसंज्ञा होने का यह कारण है कि उनसे भी प्रजा का जीवन होता है॥७॥ कौन-से छह देवता हैं? अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य और जल ये छह देवता हैं॥८॥ कौन-से तीन देवता है? यही तीन लोक अर्थात् स्थान, नाम और जन्म, क्योंकि इनमें ही सब देवता हैं। कौन-से दो देवता हैं? अन्न और प्राण दो देवता हैं? कौन-सा अध्यर्ध देव है?॥९॥ वायु का नाम अध्यर्ध देव इसलिए है कि वह सबका धारण और वृद्धिकर्त्ता है। कौन एक देव है? ब्रह्म एक देव है, ऐसा कहा जाता है॥१०॥

ये हैं वेदमन्त्रों में प्रतिपादित तेतीस देवता और चौंतीसवाँ इन सबका स्वामी महादेव ब्रह्म, बस, दुनिया के समस्त पदार्थ इन्हीं चौंतीस के अन्तर्गत आ जाते हैं। रह गये आपके कल्पित पौराणिक देवता, उनका न वेदों में वर्णन है और न वे इस योग्य ही हैं कि उनका किसी भली पुस्तक में वर्णन हो सके। उदाहरणार्थ हम यहाँ पर समस्त देवताओं के गुरु बृहस्पति के जीवन की एक पौराणिक गाथा का वर्णन पर्याप्त समझते हैं। महाभारत में वर्णन है कि—

अथोतथ्य इति ख्यात आसीद्धीमानृषिः पुरा। ममता नाम तस्यासीद्भार्या परमसम्मता॥८॥
उतथ्यस्य यवीयाँस्तु पुरोधास्त्रिदिवौकसाम्। बृहस्पतिर्बृहत्तेजा ममतामन्वपद्यत॥९॥
उवाच ममता तं तु देवरं वदतां वरम्। अन्तर्वर्त्नी त्वहं भ्रात्रा ज्येष्ठेनारम्यतामिति॥१०॥
अयं च मे महाभाग कुक्षावेव बृहस्पते। औतथ्यो वेदमत्रापि षडङ्गं प्रत्यधीयत॥११॥
अमोघरेतास्त्वं चापि द्वयोर्नास्त्यत्र सम्भवः। तस्मादेवं च न त्वद्य उपारमितुमर्हसि॥१२॥
एवमुक्तस्तदा सम्यग्बृहस्पतिरधीरधीः। कामात्मानं तदात्मानं न सशाक नियच्छितुम्॥१३॥
स बभूव ततः कामी तया सार्द्धमकामया। उत्सृजन्तन्तु तं रेतः स गर्भस्थोऽभ्यभाषत॥१४॥
भोस्तात मा गमः कामं द्वयोर्नास्तीह सम्भवः। अल्पावकाशो भगवन् पूर्वं चाहमिहागतः॥१५॥
अमोघरेताश्च भवान्न पीडां कर्त्तुमर्हसि। अश्रुत्वैव तु तद्वाक्यं गर्भस्थस्य बृहस्पतिः॥१६॥
जगाम मैथुनायैव ममतां चारुलोचनाम्।
शुक्रोत्सर्गं ततो बुद्ध्वा तस्या गर्भगतो मुनिः। पद्भ्यामारोधयन् मार्गं शुक्रस्य च बृहस्पतेः॥१७॥
स्थानमप्राप्तमथ तद्रेतः प्रतिहतं तदा। पपात सहसा भूमौ ततः क्रुद्धो बृहस्पतिः॥१८॥
तं दृष्ट्वा पतितं शुक्रं शशाप स रुषान्वितः। उतथ्यपुत्रं गर्भस्थं निर्भर्त्स्य भगवानृषिः॥१९॥
यन्मां त्वमीदृशे काले सर्वभूतेप्सिते सति। एवमात्थ वचस्तस्मात्तमो दीर्घं प्रवेक्ष्यति॥२०॥
स वै दीर्घतमा नाम शापादृषिरजायत। बृहस्पतेर्बृहत्कीर्तेर्बृहस्पतिरिवौजसा॥२१॥
जात्यन्धो वेदवित् प्राज्ञः पत्नीं लेभे स विद्यया॥२२॥ —महा० आदि० अ० १०४[१]

भाषार्थ—पूर्वकाल में उतथ्य नाम का बुद्धिमान् प्रसिद्ध ऋषि था। उसकी अति सुन्दरी ममता नामक पत्नी थी॥८॥ उतथ्य का छोटा भाई देवताओं का गुरु महान् तेजस्वी बृहस्पति ममता के पास समागम की इच्छा से गया॥९॥ ममता उस वागीश देवर को कहने लगी मैं तुम्हारे बड़े भाई

१. गीताप्रेस संस्करण में ये श्लोक नहीं है, परन्तु महाभारत प्रकाशक मण्डल, चाँदनी चौक, दिल्ली द्वारा १९९२ विक्रमी में प्रकाशित श्री पण्डित गङ्गाप्रसादजी शास्त्री द्वारा अनूदित संस्करण में ये श्लोक अध्याय १०३ में ९ से २४ तक उपलब्ध हैं। पूना, संस्करण में अध्याय ९८ में भी ये श्लोक हैं। —सं०

से गर्भवती हूँ, इसलिए, सब्र कर॥ १०॥ हे बृहस्पते! यह मेरी कोख में ही महाभाग उतथ्य का पुत्र यहाँ भी षडङ्गवेद पढ़ रहा है॥ ११॥ और तू भी अनिष्फल वीर्यवाला है और दो की यहाँ गुँजाइश नहीं। इसलिए आज ऐसा होना उचित नहीं, सब्र करना चाहिए॥ १२॥ इस प्रकार कहने पर अधीरबुद्धि बृहस्पति काम में लिप्त हुई अपनी आत्मा को रोक न सका॥ १३॥ वह कामी उस अकामा के साथ प्रवृत्त हो गया। उसे वीर्य छोड़ते हुए देखकर गर्भ में बैठा मुनि बोला॥ १४॥ हे चाचा! काम को मत प्राप्त हो, यहाँ दो का रहना सम्भव नहीं। हे भगवन्! यहाँ स्थान बहुत कम है और मैं पहले आ चुका हूँ॥ १५॥ आपका वीर्य भी व्यर्थ जानेवाला नहीं, मुझे कष्ट न दें। उस गर्भवाले की बात को सुने बिना ही बृहस्पति॥ १६॥ उस सुन्दर नेत्रोंवाली ममता के साथ मैथुन में प्रवृत्त हो गये। वीर्य के गर्भ में गिरने के समय को जानकर गर्भ में बैठे मुनि ने बृहस्पति के वीर्य जाने का रास्ता पाँवों से रोक लिया॥ १७॥ रोकने से स्थान को न प्राप्त हुआ वीर्य अचानक पृथिवी पर गिर पड़ा, तब बृहस्पति क्रोध में आ गये॥ १८॥ अपने वीर्य को गिरा हुआ देखकर बृहस्पति ने क्रोध से शाप दिया। गर्भ में बैठे हुए उतथ्य के पुत्र को धमकाते हुए ऋषि ने कहा॥ १९॥ जो तूने मुझे ऐसे समय में जोकि सब प्राणियों को प्रिय है इस प्रकार की बात कही, इसलिए तेरे में तीव्र अन्धकार प्रविष्ट होगा॥ २०॥ इस शाप से दीर्घतमा नाम का ऋषि पैदा हुआ, जोकि बृहस्पति के समान तेजवाला था॥ २१॥ जन्म से अन्धा, वेद का जाननेवाला, बुद्धिमान् दीर्घतमा विद्या के बल से धर्मपत्नी को प्राप्त हुआ॥ २२॥

क्या वह यही बृहस्पति हैं, जिनको देवताओं का पुरोहित वर्णन कर रहे हैं और जिनका ज़िक्र वेदों में बतला रहे हैं? और क्या 'स्थालीपुलाक' न्याय से सारे ही देवता इसी प्रकार के हैं? यदि इनका नाम देवता है तो फिर न मालूम राक्षस किनका नाम है? इसलिए कृपया इन पौराणिक देवताओं की करतूतों को ढके ही रक्खें और वेदों में इनका वर्णन बतलाकर वेदों को कलंकित करने की कुचेष्टा से बाज़ रहें।

(१८२) प्रश्न—'अग्निर्देवता वातो देवता' इत्यादि [यजुः० १४। २०] इस मन्त्र में वसु ८, रुद्र ११, आदित्य १२, मरुत ७, विश्वे देवा १३—ऐसे सब मिलाकर ५८ देवता हैं।

—पृ० २३६, पं० ९

उत्तर—आपने बतलाया नहीं कि वे सात मरुत देवता और तेरह विश्वेदेवा कौन-कौन-से हैं तथा ५८ किस प्रकार से हो जाते हैं। अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा तो आठ वसुओं में शामिल हैं ही और मरुत नाम वायु का तथा वरुण नाम जल का है। ये दोनों भी वसुओं में आ गये। रहा बृहस्पति, यह नक्षत्रों में होने के कारण वसु संज्ञा में आ गया। विश्वेदेवा सम्पूर्ण देवताओं का नाम है। इस हिसाब से ये सब तेतीस में ही शामिल हो गये। इन्द्र नाम भी बिजली का है वह भी तेतीस में शामिल है अब बतावें ५८ कैसे बन गये? और फिर जब अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, मरुत, विश्वे-देवा, बृहस्पति तथा वरुण ये सब वसु, रुद्र तथा आदित्यों में ही शामिल हैं तो इनको भिन्न क्यों गिनवाया गया, अतः पता लगा कि इस मन्त्र में पूर्वोक्त ३३ देवताओं के अतिरिक्त दिव्य गुणों के कारण परमेश्वर तथा विद्वानों का नाम भी देवता वर्णन किया गया है, अतः इस मन्त्र का निर्दोष, ठीक-ठीक अर्थ इस प्रकार होगा—

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवताऽऽदित्या देवता मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता॥ —यजुः० १४। २०

भाषार्थ—प्रकाशस्वरूप होने से परमात्मा अग्नि देवता है। बलस्वरूप होने से परमात्मा वायु देवता है। चराचर में व्यापक होने से परमात्मा ही सूर्य देवता है। आनन्दकारक होने से परमात्मा ही चन्द्रमा देवता है। आठ वसु देवता हैं। ११ रुद्र देवता हैं। १२ आदित्य देवता हैं। मनन करनेवाले

ऋत्विगादि विद्वान् लोग मरुत देवता हैं। सब अच्छे गुणोंवाले विद्वान् मनुष्य विश्वेदेवा देवता हैं। बड़े वचन वा ब्राह्माण्ड का रक्षक परमात्मा बृहस्पति देवता है। ऐश्वर्य से युक्त होने से राजा इन्द्र देवता है। श्रेष्ठ गुणों से युक्त होने के कारण परमात्मा बृहस्पति देवता है। ऐश्वर्य से युक्त होने से राजा इन्द्र देवता है। श्रेष्ठ गुणों से युक्त होने के कारण परमात्मा वरुण देवता है॥ २०॥

इस मन्त्र में तेतीस देवताओं के अतिरिक्त परमात्मा तथा विद्वानों का भी देवता शब्द से प्रतिपादन किया गया है। विद्वानों के देवता होने में निम्न प्रमाण हैं—

(अ) देवाः पितरः पितरो देवाः॥ —अथर्व० ६।१२३।३

(आ) वसून् वदन्ति तु पितॄन् रुद्राँश्चैव पितामहान्।
प्रपितामहाँस्तथादित्यान् श्रुतिरेषा सनातनी॥ —मनु० ३।२८४

(इ) अन्नदाता भयत्राता पत्नीतातस्तथैव च।
विद्यादाता जन्मदाता पञ्चैते पितरो नृणाम्॥ १५३॥ —ब्रह्मवैवर्त० ब्रह्म० अ० १०

(ई) द्वयं वा इदं न तृतीयमस्ति। सत्यं चैवानृतं च सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्या 'इदमहमनृतात्सत्यमुपैमी' ति तन्मनुष्येभ्यो देवानुपैति॥ —शत० १।१।१।४

(उ) उशिजो वह्नितमानिति। विद्वाᳫँसो हि देवास्तस्मादाहोशिजो वह्नितमानिति॥ —शत० ३।७।३।१०

(ऊ) देवा योगिनः कपिलादयश्च॥ —उव्वट, यजुः० ३१।९

(ऋ) एवं योगिनोऽपि दीपनाद्देवाः॥ —उव्वट, यजुः० ३१।१६

(ॠ) देवि देवश्च देवी च समागम्य मदन्तरे।
मन्त्रयेते ध्रुवं किंचिदभिषेचनसंहितम्॥ १५॥ —वाल्मी० अयो० स० १६

(ॡ) धर्मनित्या यथाकालमग्न्यागारपरा भव।
देवि देवस्य पादौ च देववत् परिपालय॥ १८॥ —वाल्मी० अयो० स० ५८

भाषार्थ—देवों का नाम पितर तथा पितरों का नाम देव है (अ)। २५ वर्ष के ब्रह्मचारी को पिता, ४४ वर्षवाले को पितामह तथा ४८ वर्षवाले को प्रपितामह कहते हैं, अतः पितर होने से देव हुए (आ)। अन्नदाता, भयत्राता, पत्नीतात, विद्यादाता और जन्मदाता ये पाँच पितर होने से देवता हुए (इ)। ये दो हैं तीसरा नहीं है—सत्य और झूठ। सत्य ही देवता हैं, झूठ मनुष्य हैं, यह मैं झूठ से सत्य को प्राप्त होता हूँ, सो मनुष्यों से देवताओं को प्राप्त होता हूँ (ई)। विद्वानों का नाम देवता है (उ)। कपिल आदि योगी देवता हैं (ऊ)। इस प्रकार से योगी भी दीप्तिमान् होने से देव हैं (ऋ)। जब दशरथ ने राम को कैकेयी के महल में बुलाया तो राम सीता से बोले—हे देवि सीते! देव दशरथ तथा देवी कैकेयी इकट्ठे होकर मेरे पीछे से अभिषेक के विषय में कुछ परामर्श कर रहे हैं। (ॠ)। राम ने सूत के द्वारा कौसल्या को सन्देश दिया—सदा अग्निहोत्र करती हुई धर्म पर दृढ़ रहना। हे देवि कौसल्ये! देव दशरथ के पाँवों को देव परमात्मा की भाँति पूजना (ॡ)।

इन प्रमाणों में सर्वत्र विद्वानों के लिए देव शब्द आया है।

श्रीमान्‌जी! इस मन्त्र में पौराणिक देवताओं का वर्णन नहीं है। न मालूम आप इन कल्पित पौराणिक देवताओं की क्यों वकालत कर रहे हैं? महाराज! जाने दीजिए, पौराणिक देवता इस योग्य हैं ही नहीं कि वे धर्म-ग्रन्थों में स्थान प्राप्त कर सकें। ज़रा उनका स्वरूप देखिए—

अग्नि— **पावकोऽपि जगच्छ्रेष्ठो मोहितः शिवमायया।**
कामाधीनः कृतो गर्वात्ततस्तेनैव चोद्धृतः॥ १९॥

वायु— **जगत् प्राणोऽपि गर्वेण मोहितः शिवमायया।**
कामेन निर्जितो व्यासश्चक्रेऽन्यस्त्रीरतिं पुरा॥ २०॥
सूर्य— **चण्डरश्मिस्तु मार्तण्डो मोहितः शिवमायया।**
कामाकुलो बभूवाशु दृष्ट्वाश्वीं हयरूपधृक्॥२१॥
चन्द्र— **चन्द्रश्च मोहितः शम्भोर्मायया कामसंकुलः।**
गुरुपत्नीं जहाराथ युतस्तेनैव चोद्धृतः॥ २२॥
वरुण— **पूर्वं तु मित्रावरुणौ घोरे तपसि संस्थितौ।**
मोहितौ तावपि मुनी शिवमायाविमोहितौ॥ २३॥
उर्वशीं तरुणीं दृष्ट्वा कामुकौ संबभूवतुः।
मित्रः कुम्भे जहौ रेतो वरुणोऽपि तथा जले॥ २४॥
ततः कुम्भात्समुत्पन्नो वसिष्ठो मित्रसम्भवः।
अगस्त्यो वरुणाज्जातो बडवाग्निसमद्युतिः॥ २५॥
बृहस्पति— **बृहस्पतिर्मुनिवरो मोहितः शिवमायया।**
भ्रातृपत्न्या वशी रेमे भरद्वाजस्ततोऽभवत्॥ ३८॥
इन्द्र— **इन्द्रस्त्रिदशयो भूत्वा गौतमस्त्रीविमोहितः।**
पापं चकार दुष्टात्मा शापं प्राप मुनेस्तदा॥ १८॥
विश्वेदेवा— **कामेन स्वसहायेन प्रबलेन मनोभुवा।**
सर्वः प्रधर्षितो वीरो विष्णवादिः प्रबलोऽपि हि॥ १६॥

—शिव० उमा० अ० ४

भाषार्थ—अग्नि कामाधीन हुआ, वायु ने परस्त्री-गमन किया, सूर्य ने घोड़ी से मैथुन किया, चन्द्रमा ने गुरुपत्नी से मैथुन किया, वरुण का वीर्य उर्वशी को देख स्खलित हो गया, बृहस्पति ने भाई की स्त्री से भोग किया, इन्द्र ने गौतम की स्त्री से भोग किया, सबको कामाधीन होना पड़ा।

ये हैं आपके पौराणिक देवताओं की करतूतें, जिनकी वकालत में ईमानदारी को भी आप धता बतला रहे हैं। प्रार्थना यही है कि इस आचारहीन देवतासमूह को सनातनधर्म मन्दिर में ही निमन्त्रित कीजिए, इन श्लोकों को वेदमन्त्रों पर मढ़ने की कृपा न करें।

(१८३) प्रश्न—'देवानां पत्नीः' इत्यादि [अथर्व० ७।४९।१] इस मन्त्र में देवताओं की पत्नियों का वर्णन है। —पृ० २३६, पं० १७

उत्तर—यहाँ पर आपके पौराणिक देवताओं की पत्नियों का नाममात्र भी नहीं है, अपितु विद्वानों की धर्मपत्नियों का वर्णन है। देखिए, इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है—

देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छन्तु॥

—अथर्व० ७।४९।१

भाषार्थ—जो उपकार की इच्छा करती हुई विद्वानों वा राजाओं की पत्नियाँ हमें तृप्त करें और बल वा स्थान के लिए और अन्न देनेवाले संग्राम जीतने के लिए हमारी अच्छी प्रकार रक्षा करें, और भी जो पृथिवी की नारियाँ जलों के समान उपकार करनेवाली हों, वे, सब सुन्दर बुलाने योग्य देवियाँ हमें घर वा सुख देवें॥ १॥

आपको पौराणिक कल्पित देवता तथा उनकी पत्नियों के सिद्ध करने का व्यर्थ ख़ब्त समाया हुआ है। इन देवताओं की पत्नियों के वर्णन से भला संसार का क्या उपकार होगा? यदि आपको इनके वर्णन देखने का शौक़ है तो देखिए—

या तु ज्ञानमयी नारी वृणेद्यं पुरुषं शुभम्। कोऽपि पुत्रः पिता भ्राता स च तस्याः पतिर्भवेत्॥ २६॥
स्वकीयां च सुतां ब्रह्मा विष्णुदेवः स्वमातरम्। भगिनीं भगवाञ्छम्भुर्गृहीत्वा श्रेष्ठतामगात्॥ २७॥
इति श्रुत्वा वेदमयं वाक्यं चादितिसम्भवः। विवस्वान् भ्रातृजां संज्ञां गृहीत्वा श्रेष्ठवानभूत्॥ २८॥

—भविष्य० प्रतिसर्ग० खं० ४ अ० १८

भावार्थ—जो ज्ञानवाली स्त्री हो वह चाहे किसी शुभ पुरुष को वर ले। वह चाहे उसका पुत्र लगता हो, चाहे पिता वा भाई लगता हो, वही उसका पति बन जाता है॥ २६॥ ब्रह्मा ने अपनी पुत्री को, विष्णु ने अपनी माँ को तथा महादेव ने अपनी बहिन को पत्नी ग्रहण करके श्रेष्ठता को प्राप्त किया॥ २७॥ इस वेदानुकूल वाणी को सुनकर सूर्य ने भी भतीजी से विवाह करके श्रेष्ठता को प्राप्त किया॥ २८॥

यह है पौराणिक देवता तथा उनकी पत्नियों की वास्तविकता! कृपया इस पौराणिक शिक्षा तथा तदनुकूल आचरण को सनातनधर्म की चारदीवारी तक ही सीमित रक्खें तो उत्तम है!

(१८४) प्रश्न—'इन्द्राणीमासु' इत्यादि [अथर्व० २०।१२६।११] इस मन्त्र में इन्द्र देवता की पत्नी इन्द्राणी के सौभाग्य का वर्णन है। —पृ० २३७, पं० ४

उत्तर—इस मन्त्र में न तो इन्द्र की पत्नी का वर्णन है और न उसके सौभाग्य की चर्चा है, अपितु ऐश्वर्यवान् पुरुष की शक्ति का वर्णन है। देखिए, मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है—

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम्।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥

—अथर्व० २०।१२६।११

भाषार्थ—इन चलाई गई प्रजाओं के बीच बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष की विभूति वा शक्ति को बड़ी भगवती ऐश्वर्यवाली मैंने सुना है। इस विभूति का पालन करनेवाला यह मनुष्य दूसरे प्राणियों के समान वयोहानि से नहीं मरता है। बड़े ऐश्वर्यवाला मनुष्य सब प्राणिमात्र से उत्तम है॥ ११॥

इन्द्र तथा इन्द्र-पत्नी के वर्णन से आप क्या लाभ समझते हैं? क्या इन्द्र देवता कहलाने के योग्य था। हम आपको पौराणिक इन्द्र की एक और करतूत सुनाते हैं—

सुचन्द्रस्य गृहे रम्भा ललाभ जन्म भारते॥ ४४॥
नानाकौतुकसंयुक्तां ददौ जन्मेजयाय च॥ ४६॥
एकदा नृपतिश्रेष्ठश्चाश्वमेधेन दीक्षितः॥ ४७॥
अश्वसंगोपनं कृत्वा तस्थौ शक्रश्च मन्दिरे। यज्ञाश्वं रुचिरं मत्वा कौतुकेन च सुन्दरी॥ ४८॥
द्रष्टुं जगाम सा साध्वी चाश्वमेकाकिनी मुदा। शक्रोऽश्वनिकटे भूत्वा धर्षयामास तां सतीम्॥ ४९॥
तया निवार्यमाणश्च रेमे तत्र तया सह। मूर्छामवाप शक्रश्च बुबुधे न दिवानिशम्॥ ५०॥
सा च संभोगमात्रेण देहं तत्याज योगतः। नृपस्य लज्जया भीत्या शक्रः स्वर्गे जगाम ह॥ ५१॥

—ब्रह्मवैवर्त० श्रीकृष्ण जन्म० खं० ४ अ० १४

भाषार्थ—राजा चन्द्र के घर में, भारत में, रम्भा ने जन्म लिया॥ ४४॥ उसने नाना प्रकार की सजधज से अपनी कन्या जन्मेजय को ब्याह दी॥ ४६॥ एक बार राजा ने अश्वमेध यज्ञ किया॥ ४७॥ इन्द्र मकान में घोड़े के पीछे छिपकर बैठ गया। यज्ञ के घोड़े को खूबसूरत जानकर आनन्दपूर्वक वह सुन्दरी देखने गई॥ ४८॥ वह साध्वी प्रसन्नता से अकेली गई। इन्द्र ने घोड़े के समीप जाकर

उस सती को क़ाबू कर लिया॥ ४९॥ उसके मना करने पर भी इन्द्र ने उससे भोग किया। इन्द्र मूर्च्छा को प्राप्त हो गया, दिन-रात न जागा॥ ५०॥ उस स्त्री ने सम्भोगमात्र से योग द्वारा शरीर छोड़ दिया और राजा के भय तथा लज्जा से इन्द्र स्वर्ग को चला गया॥ ५१॥

कहिए महाराज! क्या पौराणिक देवताओं की इन्हीं कारनामों के लिए कल्पना की गई है या कोई और प्रोयजन भी है? परमात्मा इन देवताओं से भारत को बचावे।

(१८५) प्रश्न—'उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीः' इत्यादि [अथर्व० ७।४९।२] इस मन्त्र में इन्द्र की पत्नी इन्द्राणी, अग्नि की पत्नी अग्नायी, रुद्र की पत्नी रोदसी तथा वरुण की पत्नी वरुणानी और अश्विनीकुमारों की पत्नी का वर्णन मौजूद है।—पृ० २३७, पं० ११

उत्तर—जब इन्द्र अर्थात् बिजली, अग्नि और वरुण अर्थात् जल जड़ पदार्थ हैं तो इनकी पत्नी होना असम्भव है। अश्विनीकुमारों का तेतीस देवों में कहीं नाम ही नहीं है, और रुद्र ११ हैं, उनकी पत्नी की कल्पना निरर्थक है। हाँ, इन गुणों से युक्त पुरुषों की स्त्रियों का वर्णन ठीक है। देखिए, इस मन्त्र का ठीक अर्थ इस प्रकार है—

उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्यग्नाय्यश्विनी राट्।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम्॥

—अथर्व० ७।४९।२

भाषार्थ—और भी विद्वानों वा राजाओं की पत्नियाँ ऐश्वर्यवाली, बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष की पत्नी, अग्नि-सदृश तेजस्वी पुरुष की स्त्री, शीघ्रगामी पुरुष की स्त्री, प्रजा की वाणियों को प्राप्त हों और ज्ञानवान् पुरुष की स्त्री अथवा श्रेष्ठजन की पत्नी वाणियों को सुनें और जो स्त्रियों के न्याय का काल है, ये सब देवियाँ उसकी चाहना करें॥ २॥

भाषार्थ—स्त्रियाँ स्त्रियों को अपनी न्यायसभा के अधिकारी बनाकर घर और बाहर के झगड़ों का उचित समय पर निर्णय करें और बालकों को भी वैसी शिक्षा दें॥ २॥

(१८६) प्रश्न—'ब्रह्मचारिणं पितरो' इत्यादि [अथर्व० ११।५।२] इस मन्त्र में पितर, गन्धर्व तथा छह हज़ार तीन सौ तीस देवताओं का वर्णन है। —पृ० २३७, पं० २०

उत्तर—वे छह हज़ार तीन सौ तीस देवता कौन-कौन-से हैं ज़रा उनकी गिनती तो गिना दी होती! वैसे देवता तेतीस ही हैं। जहाँ अधिक गिनाये गये हैं वहाँ उनकी ही महिमामात्र है (देखो नं० १८१)। इस मन्त्र में तो देवता आदि विद्वानों का ही नाम है, क्योंकि यज्ञ में उनका ही सम्मिलित होना सम्भव है। संख्या अधिक उपस्थिति की सूचक है। मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है—

ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः पृथग् देवा अनुसंयन्ति सर्वे।
गन्धर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः षट्सहस्राः सर्वान्त्स देवांस्तपसा पिपर्ति।

—अथर्व० ११।५।२

भाषार्थ—सब व्यवहारकुशल, पालन करनेवाले, विजय चाहनेवाले पुरुष नाना प्रकार से ब्रह्मचारी के पीछे-पीछे चलते हैं। तेतीस, तीन और छह सहस्र [६३३३ अर्थात् बहुत-से] पृथिवी के धारण करनेवाले (पुरुषार्थी पुरुष) इस ब्रह्मचारी के साथ-साथ चलते हैं। वे सब विजय चाहनेवालों को अपने तप से भरपूर करता है॥ २॥

भावार्थ—सब विद्वान् पुरुषार्थीजन पूर्वकाल से जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी के अनुशासन में आनन्द पाते आये हैं और पाते हैं। इस प्रकरण में इस मन्त्र से पूर्व और पश्चात् भी वेदारम्भ-संस्कार का वर्णन है, अतः पूर्वोक्त हमारा अर्थ ही ठीक है, आपका नहीं।

(१८७) प्रश्न—'त्रीणि शता त्री सहस्राणि' इत्यादि [यजुः० ३३।७] इस मन्त्र में किसी

के मत में तो ३३३० में ९ को मिलाकर ३३३९ तथा किसी के मत में ३००० को ३०० से गुणा करके ३० तथा ९ का योग देकर ९०००३९ तथा किसी के मत में ३३३० को इन ही के स्वरूप में ९ अंक करके ३३३३३३३३० देवताओं का वर्णन पाया जाता है। —पृ० २३८, पं० ४

उत्तर—देवता तेतीस ही हैं। आप चाहे करोड़ की गिनती गिनें, चाहे तेतीस अर्ब की , वे सब तेतीस की ही महिमा हैं (देखो नं० १८१)। परन्तु यहाँ पर तो शिल्पविद्या के जाननेवाले विद्वानों का वर्णन है। मन्त्र का ठीक अर्थ इस प्रकार है—

त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्।
औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त॥

—यजुः० ३३।७

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जैसे पृथिवी आदि तीस और नव प्रकार के—ये सब और विद्वान् लोग तीन सौ तीन हज़ार कोस मार्ग में अग्नि का सेवन करें, घी वा जलों से सींचें, अन्तरिक्ष को आच्छादित करें, इस अग्नि के अर्थ हवन करनेवाले को सब ओर से ही निरन्तर स्थापित करें, वैसे तुम लोग भी करो॥७॥

भावार्थ—जो शिल्पी-विद्वान् लोग अग्नि, जलादि पदार्थों को यानों में संयुक्त कर उत्तम, मध्यम, निकृष्ट वेगों से अनेक सैकड़ों, हज़ारों कोस मार्ग को जा सकें वे आकाश में भी जा-आ सकते हैं॥७॥

इसका नाम है अर्थ जो प्रकरण तथा सृष्टिनियम के सर्वथा अनुकूल है।

(१८८) प्रश्न—'इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे' इत्यादि [निरुक्त दैवतकाण्ड ७।२।१] तथा **'आ द्वाभ्यां हरिभ्यामित्यादि'** [निरुक्त दैवत० ७।६।२] में देवताओं को चैतन्य वर्णन किया है। —पृ० २३८, पं० २४

उत्तर—भला! इन दोनों प्रमाणों से आपकी क्या प्रयोजन-सिद्धि हुई? आपने इन प्रमाणों से यह सिद्ध किया है कि देवता चेतन वर्णन किये हैं। हम पहले से ही विद्वानों का नाम भी देवता मानते हैं और वे चेतन होते ही हैं। आपके दिये हुए मन्त्र में इन्द्र शब्द के कितने अर्थ हैं देखिए—

इन्द्रः—**(अग्निर्विद्युत् सूर्यो वा)** अग्नि, बिजली, सूर्य **(अध्यापको राजा वा)** अध्यापक, राजा **(सभाऽध्यक्षः)** सभापति **(दुःखविदारकः)** दुःख का नाशक **(परमैश्वर्यवान् सभा-शाला-सेना-न्यायाधीशः)** सम्पत्तिवाला, सभापति, शालापति, सेनापति, न्यायपति, **(इन्द्रियवान् जीवः)** जीव इत्यादि-इत्यादि इन्द्र शब्द के सैकड़ों अर्थ हैं (देखो वेदार्थकोष पृ० १८२ से १८७ तक)। प्रकरण-अनुसार जहाँ जैसा अर्थ उचित हो वैसा ले-लेना चाहिए। जहाँ जडत्वादि गुणों से इन्द्र का वर्णन होगा वहाँ इन्द्र शब्द से बिजली, सूर्य आदि अर्थ लिये जावेंगे, और जहाँ चेतनता आदि गुणों से इन्द्र का वर्णन होगा वहाँ इन्द्र शब्द से राजा, सेनापति, जीवात्मा आदि अर्थ लिया जावेगा, अतः आपका लेख निष्प्रयोजन ही है।

(१८९) प्रश्न—स्वामी दयानन्दजी शतपथ के आधार पर तेतीस देवता मानते हैं, और उन देवताओं को चैतन्य नहीं मानते, वरन जड़ मानते हैं। —पृ० २४०, पं० १

उत्तर—आप बिल्कुल झूठ कह रहे हैं। प्रथम तो तेतीस देवताओं में से भी ग्यारह रुद्रों में दश प्राण तथा ग्यारहवाँ जीवात्मा है। जीवात्मा चेतन है। तथा स्वामीजी विद्वानों का नाम देवता मानते हैं। स्वामीजी देवता शब्द से चेतन तथा अचेतन दोनों प्रकार के पदार्थों का ग्रहण मानते हैं।

(१९०) प्रश्न—'अथाकारचिन्तनं देवतानाम्' इत्यादि [निरुक्त दैवत० ७।६।१] इसमें यास्क ने जड़ और चेतन दोनों को वेद से दिखलाया है। यह नियम अटल है कि जहाँ पर श्रुति

में विरोध होगा वहाँ दोनों श्रुतियों का कथन सत्य स्वीकार किया जावेगा। यहाँ पर भी सूर्य आदि ग्रहमण्डल जड़ और इनके अधिष्ठातृदेव चेतन हैं। —पृ० २४२, पं० ६

उत्तर—आप यों ही, बिना प्रयोजन निरुक्त आदि के लम्बे-लम्बे पाठ दर्ज कर देते हैं। हम स्वयं मानते हैं कि देवता दो प्रकार के होते हैं। बत्तीस देवता जड़ तथा जीवात्मा, परमात्मा, विद्वान् चेतन देवता हैं। वेदों में परस्पर-विरोध नहीं है। यह नियम अटल है कि जिस पुस्तक में व्याघातदोष अर्थात् परस्पर-विरोध हो वह पुस्तक प्रमाण के योग्य नहीं होती। विकल्प अर्थात् दोनों पक्ष तभी सत्य माने जाते हैं यदि उनका अधिकरण एक न हो। यहाँ चेतन तथा अचेतन देवताओं का अधिकरण एक नहीं है, अतः विरोध ही नहीं है। 'इनके अधिष्ठातृदेव चेतन हैं' यह निरुक्त के किस पाठ का अर्थ है? आपको झूठ बोलते ज़रा भी शर्म नहीं आती। यदि अधिष्ठातृदेव से कोई पौराणिक कल्पित देवता इष्ट है तो उसके लिए प्रमाण चाहिए, अन्यथा आपका लिखना मिथ्या ही है। हाँ, सूर्य, पृथिवी आदि बत्तीस देवता जड़ तथा जीवात्मा, परमात्मा, विद्वान् चेतन—इस प्रकार से जड़ और चेतन देवता दो प्रकार के हैं। यही वेद का सिद्धान्त है, इसी का उपर्युक्त निरुक्त ने प्रतिपादन किया है।

(१९१) प्रश्न—'ब्रह्मचारिणं' में ६३३३ और **'त्रीणि शता'** इस मन्त्र में ३३३३३३३३० देवता वेद ने बतलाये, स्वामी दयानन्दजी इन दोनों मन्त्रों को गपोड़ा मानते हुए देवताओं की संख्या केवल तेतीस लिखते हैं। —प० २४२, पं० १२

उत्तर—स्वामीजी वेद के अक्षर-अक्षर को सत्य मानते हैं। आप किसी ऐसी वस्तु का नाम तो लें जो तेतीस देवता तथा एक उनका स्वामी महादेव ब्रह्म—इन चौंतीस से बाहर हो। इसीलिए शतपथ ने लिखा कि **'महिमान एवैषामेते त्रयस्त्रिꣳशत्त्वेव देवा इति'**—देवता तो तेतीस ही हैं बाकी सब इनकी ही महिमा है। इससे साफ़ है कि चाहे देवताओं की गिनती करोड़ नहीं अरब भी हो, वे सब तेतीस में ही आ जाते हैं, अतः स्वामीजी का मानना वेदानुकूल एवं सत्य है।

(१९२) प्रश्न—स्वामीजी मनुष्यों से भिन्न देवजाति नहीं मानते; मनुष्यों में जो लिख-पढ़ गये हैं, उन्हीं को आप देवता मानते हैं। —पृ० २४२, पं० १७

उत्तर—बेशक तेतीस देवताओं को मानते हुए स्वामीजी मनुष्यों में से विद्वान्, योगी, माता-पिता आदि को देवता मानते हैं और इसमें अनेक प्रमाण हैं (देखो नं० १८२), किन्तु आपके कपोलकल्पित, आचारहीन पौराणिक देवों की हस्ती में कोई प्रमाण ही नहीं है।

(१९३) प्रश्न—'द्विधा देवा' इत्यादि दो प्रकार के देवता हैं—एक देवयोनि के देवता, दूसरे मनुष्यों में देव। देवयोनि के सभी देवता जन्म से विद्वान् होते हैं—यह शतपथ का कथन है। इसमें से **'विद्वाꣳसो हि देवाः'** श्रुति के इस छोटे-से टुकड़े को चुराकर विद्वानों को देवता लिखते हैं। —पृ० २४२, पं० २०

उत्तर—प्रथम तो आपने इस प्रमाण का पता नहीं लिखा कि यह पाठ कहाँ का है। दूसरे, आपने इसके अर्थ भी मनमाने किये हैं। भला! आप बतलावें आपने **'योनि'** और **'जन्म से'** यह अर्थ किन शब्दों का किया है और यह कहाँ लिखा है कि देवयोनिवाले ही विद्वान् होते हैं? लीजिए, हम इसका ठीक-ठीक अर्थ करते हैं—

द्विविधा देवा देवदेवा मनुष्यदेवाश्च विद्वाꣳसो हि देवाः।

भाषार्थ—देव दो प्रकार के होते हैं—देवदेव तथा मनुष्य देव। विद्वान् ही देव होते हैं।

फरमाइए, इस सारे पाठ के अर्थ में कौन-सी बात स्वामीजी के सिद्धान्त के विरुद्ध है? स्वामीजी ने विस्तार-भय से प्रकरणानुसार जितनी आवश्यकता थी उतना पाठ दे दिया। चोरी तो आपने की है कि प्रमाण का ठिकाना ही नहीं दिया। विशेष प्रमाण देखिए (नं० १८२)

(१९४) प्रश्न—इसी प्रकार दैत्य, गन्धर्व और अप्सरा प्रभृति देवयोनियों के वेद ने जातिभेद माने हैं। स्वामी दयानन्दजी की दृष्टि में ये सब मनुष्य ही हैं। —पृ० २४२, पं० २७

उत्तर—बेशक दैत्य, राक्षस, गन्धर्व, अप्सरा, देव ये सब देश, गुण, नाम के कारण मनुष्यजाति के ही भेद हैं। इनकी पशु-पक्षीवत् भिन्न जाति नहीं है। वेद में एक शब्द भी ऐसा नहीं मिलता जो इनकी भिन्नजाति वर्णन करता हो। आपके पुराणों से भी इन सबका एक जाति होना सिद्ध होता है। इन्द्र, धर्म, वायु ने कुन्ती से, अश्विनीकुमारों ने माद्री से युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन तथा नकुल-सहदेव पैदा किये तथा विश्वामित्र आदि ने मेनका आदि में शकुन्तला आदि को पैदा किया। देवों की स्त्रियों से मनुष्यों का तथा मनुष्यों की स्त्रियों से देवों का भोगविलास-सन्तानोत्पत्ति आदि व्यवहार होना लिखा है, अतः देव तथा मनुष्यजाति एक है, केवल कर्मभेद ही है। रावण राक्षस सीता को रानी बनाना चाहता था तथा शूर्पणखा राम मनुष्य को पति बनाना चाहती थी; भीम मनुष्य ने हिडम्बा राक्षसी में घटोत्कच पैदा कर लिया, अतः मनुष्य और दैत्य जाति एक ही हुई। गन्धर्वों के साथ दुर्योधन की लड़ाई हुई। गन्धर्वों ने दुर्योधन को स्त्रियों-समेत क़ैद कर लिया, पाण्डवों ने छुड़ाया, अतः गन्धर्व तथा मनुष्यजाति एक हुई। इसके अतिरिक्त देव, गन्धर्व, दैत्य, मनुष्य, अप्सराओं का विवाहों, स्वयंवरों, युद्धों, बरातों, जंगलों में एक स्थान में निवास, खान-पान, नृत्य-गीत, युद्ध-यात्रा आदि अनेक सम्मिलित व्यवहार पुराणों में पाये जाते हैं। इससे सिद्ध है कि ये सब मनुष्यजाति के ही गुण, देश, नाम के कारण भेद हैं, इनकी जाति भिन्न नहीं है।

स्वामी दयानन्द और देवजाति

(१९५) प्रश्न—स्वामीजी सत्यार्थप्रकाश पृ० १०० में इन्द्र, यम, वरुण, सोम, मरुत्, जल, वनस्पति, श्री, भद्रकाली, वास्तुपति देवताओं को एक-एक ग्रास का भोग लगाना लिखते हैं। इससे सिद्ध होता है कि स्वामीजी देवजाति को मनुष्यजाति से भिन्न मानते हैं। —पृ० २५, पं० ४

उत्तर—स्वामीजी ने न तो इनको देवता लिखा है और न इनको भोग लगाना लिखा है, अपितु इन मन्त्रों से पत्तल पर भोजन के भाग रखकर अतिथि को खिलाना तथा अग्नि में होम करना लिखा है। और ये उपर्युक्त नामवाले पदार्थ तेतीस देवता तथा चौंतीसवाँ इनका स्वामी ब्रह्म इनसे बाहर भी नहीं है। इससे सिद्ध है कि स्वामीजी इन चौंतीस और मनुष्ययोनि से भिन्न कोई देवयोनि नहीं मानते। इस विषय में विशेष देखें (नं० १५१)

(१९६) प्रश्न— नामकरण-संस्कार में स्वामीजी ने सोलह तिथियों के सोलह देवता और सत्ताईस नक्षत्रों के सत्ताईस देवता लिखे हैं। इससे सिद्ध है कि स्वामीजी देवताजाति को मनुष्यजाति से भिन्न मानते थे। —पृ० २५, पं० २१

उत्तर—ये जो तिथि और नक्षत्रों के देवता लिखे हैं, ये तिथि और नक्षत्रों के दूसरे नाम हैं, जोकि इनके द्योतक (प्रकाशक) होने के कारण इनके देवता कहाते हैं। ये इन तिथि और नक्षत्रों को प्रकट करने के लिए सांकेतिक नाम हैं। इस प्रकार के सांकेतिक नामों का व्यवहार प्रत्येक भाषा और प्रत्येक जाति में पाया जाता है। उदाहरणार्थ इस समय भी वायसराय की तरफ़ से जो विलायत को तार भेजे जाते हैं वे साधारण तारों की भाँति नहीं होते, अपितु उनमें वाक्यों के लिए अङ्क नियत हैं, जिनको या वायसराय जानते हैं या भारत के मन्त्री जानते हैं, और लोग नहीं जानते। इनका व्यवहार प्रायः प्रबन्ध-कार्यों में या सेना में युद्ध के समय होता है। इनको अँग्रेज़ी में 'कोडवर्ड' कहते हैं। ऐसे ही चनों को बादाम, प्याज़ को रूपाप्रसाद, मिर्चों को लड़ाकियाँ, बासी रोटी को मिट्ठा परशादा, दूध को समुद्र, घी को पंजवाँ, इत्यादि अनेक सांकेतिक नाम हैं जो उन वस्तुओं के द्योतक होने से देवता कहे जा सकते हैं। जैसे संस्कृतसाहित्य में चाँद-सूर्य से एक का, चक्षु से दो का, राम से तीन का, वेद से चार का, इन्द्रिय से पाँच का, अङ्ग से छह का,

मुनि से सात का, वसु से आठ का, अङ्क से नौ का बोध होता है, ये नाम भी अङ्कों के द्योतक होने से उनके देवता कहा सकते हैं, ऐसे ही तिथि और नक्षत्रों के लिए भी कर्मकाण्ड में उनके दूसरे सांकेतिक नाम नियत हैं, जिनको तिथि तथा नक्षत्रों का द्योतक होने से उनके देवता कहते हैं, जैसाकि गोभिलीय गृह्यसूत्र में प्रपाठक २ काण्डिका ८ के सूत्र नं० १२ की टीका में श्रीचन्द्रकान्त तर्कालंकार लिखते हैं—

अथ जुहोति प्रजापतये तिथये नक्षत्राय देवताया इति॥ १२॥

—(गोभिलीयगृ प्र० २ का० ८,) पृ० ३८४, पं० १२

तत्र तिथयः प्रतिपदाद्याः। तासां देवताश्चामावस्यापर्यन्तानां ब्रह्म, त्वष्ट्र, विष्णु, यम, सोम, कुमार, मुनि, वसु, पिशाच, धर्म, रुद्र, वायु, मन्मथ, यक्ष, पितरः। पौर्णमास्यास्तु विश्वेदेवाः।

—पृ० ३८५, पं० ३

नक्षत्रदेवताश्च यथाक्रमम्—अश्विव, यम, अग्नि, प्रजापति, सोम, रुद्र, अदिति, बृहस्पति, सर्प, पितृ, भग, अर्यमन्, सवितृ, त्वष्ट्र, वायु, इन्द्राग्नी, मित्र, इन्द्र, निर्ऋति, अप, विश्वेदेवा, विष्णु, वसु, वरुण, अजपात्, अहिर्बुध्न्य, पूषण्। —पृ० ३८६, पं० ७

—गोभिलगृह्यसूत्रम्। श्रीचन्द्रकान्ततर्कालंकारकृतभाष्यसहितम् कलिकाता राजधान्यां वात्तिस्तभिषणयन्त्रे मुद्रितम्। शकाः १८०२

तैत्तिरीय-संहिता में भी नक्षत्रों तथा उनके देवताओं का वर्णन इस प्रकार से आता है—

कृत्तिका नक्षत्रमग्निर्देवता...रोहिणी नक्षत्रं प्रजापतिर्देवता मृगशीर्षं नक्षत्रं सोमो देवतार्द्रा नक्षत्रं रुद्रो देवता पुनर्वसु नक्षत्रमदितिर्देवता तिष्यो नक्षत्रं बृहस्पतिर्देवता श्लेषा नक्षत्रं सर्पो देवता मघा नक्षत्रं पितरो देवता फाल्गुनी नक्षत्रम्॥ १॥ अर्यमा देवता फाल्गुनी नक्षत्रं भगो देवता हस्तो नक्षत्रं सविता देवता चित्रा नक्षत्रमिन्द्रो देवता स्वाती नक्षत्रं वायुर्देवता विशाखे नक्षत्रमिन्द्राग्नी देवतानुराधा नक्षत्रं मित्रो देवता रोहिणी नक्षत्रमिन्द्रो देवता विचृतौ नक्षत्रं पितरो देवता अषाढा नक्षत्रमापो देवताऽषाढा नक्षत्रं विश्वेदेवा देवता श्रोणा नक्षत्रं विष्णुर्देवता श्रविष्ठा नक्षत्रं वसवः॥ २॥ देवता शतभिषङ् नक्षत्रमिन्द्रो देवता प्रोष्ठपदा नक्षत्रमज एकपाद्देवता प्रोष्ठपदा नक्षत्रमहिर्बुध्न्यो देवता रेवतीनक्षत्रं पूषा देवताश्वयुजौ नक्षत्रमश्विनौ देवता भरणीर्नक्षत्रं यमो देवता॥ ३॥ —तैत्तिरीय-संहिताभाष्ये वेदार्थप्रकाशे कां० ४ प्र० ४

अ० १० पृ० ४८१-४८२। कलकत्ता १८८१

इसी को स्वामीजी ने अपनी संस्कार-विधि में लिखा है, अतः यह सिद्ध है कि ये तिथि तथा नक्षत्रों के द्योतक दूसरे नाम होने से देवता कहाते हैं, और कोई विशेष बात नहीं है। इससे सिद्ध है कि स्वामीजी उन तेतीस देव, चौंतीसवाँ उनका स्वामी ब्रह्म तथा विद्वानों के सिवाय देवजाति को कोई भिन्नजाति नहीं मानते थे।

वेदोत्पत्ति

(१९७) प्रश्न—वेदों की उत्पत्ति वैदिक साहित्य में ब्रह्म से मानी है। इस विषय में वेद का सिद्धान्त यह है कि उस निराकार ब्रह्म ने ब्रह्मा-शरीर धारण किया, ब्रह्मा ने अपने मुख से ऋषियों को वेदों का उपदेश दिया। —पृ० २४३, पं० १

उत्तर—वेद ने परमात्मा को **'अकाय'** वर्णन किया है। वेद में एक भी मन्त्र ऐसा नहीं है जो परमेश्वर को शरीरधारी वर्णन करता हो। परमात्मा सर्वव्यापक होने से सबके हृदयों में विराजमान है, अतः परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों—अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा के हृदय में चारों वेदों का प्रकाश कर दिया। उन्होंने आगे ब्रह्मादि ऋषियों को वेदों का ज्ञान दिया।

यही वैदिक सिद्धान्त है।

(१९८) प्रश्न—'स यथाद्रैधनाग्नेः' इत्यादि [शतपथ १४।५।४।१०] इससे सिद्ध है कि वेदों का प्रादुर्भाव ब्रह्मा से ही हुआ है। —पृ० २४३, पं० ४

उत्तर—आपने वेद-प्रमाण देने की प्रतिज्ञा करके शतपथ का प्रमाण लिख दिया, क्या शतपथ वेद है? और क्या इस प्रकार का धोखा ईमानदारी में शामिल है? यह ठीक है कि सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा से वेदों का प्रादुर्भाव हुआ, किन्तु इस प्रमाण में यह कहाँ लिखा है कि परमेश्वर ने ब्रह्मा-शरीर धारण करके वेदों को पढ़ाया। यदि श्लोक, सूत्र आदि सारे ही ब्रह्म से हुए तो फिर वेदों में दूसरे ग्रन्थों की अपेक्षा क्या विशेषता है? आपने इस प्रमाण का अर्थ भी ठीक नहीं किया। इसका ठीक-ठीक अर्थ इस प्रकार से है—

स यथाद्रैधनाग्नेरभ्याहितस्य पृथग्धूमाविनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निःश्वसितानि॥ —शत० १४।५।४।१०

भाषार्थ—जैसे अग्नि में गीली लकड़ी लगाने से धुआँ उठता है और वह धुआँ चारों तरफ फैलता है वैसे ही उस महान् सत्यस्वरूप परमात्मा से निःश्वास की भाँति सहज से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद के ज्ञान द्वारा पुराण, इतिहास, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान, अनुव्याख्यान आदि सब विद्याएँ इनसे ही प्रकट हुईं।

इससे सिद्ध हुआ कि संसार की सारी विद्याओं का आदिस्रोत वेद ही है।

(१९९) प्रश्न—'तस्माद्यज्ञात्' इत्यादि [यजुः० ३१।७] जिस यज्ञ भगवान् का सबसे प्रथम उत्पन्न होना **'तं यज्ञं'** इस मन्त्र में लिखा है, उसी ईश्वर से ऋग्वेद, सामवेद, गायत्री आदि छन्द और यजुर्वेद उत्पन्न हुए। —पृ० २४३, पं० १३

उत्तर—परमात्मा का पैदा होना वेदों का एक भी मन्त्र प्रतिपादन नहीं करता, क्योंकि परमात्मा अजन्मा, अजर, अमर है। **'तं यज्ञम्'** [यजुः० ३१।९] में परमात्मा का पैदा होना नहीं लिखा अपितु ऋषियों से परमात्मा का पूजा जाना वर्णन किया है। यज्ञ शब्द का अर्थ भी पूजनीय है। जब वेदों में गायत्री आदि छन्द हैं तो फिर गायत्री आदि छन्दों का पैदा होना पृथक् लिखना व्यर्थ होने से छन्द शब्द से अथर्ववेद का ग्रहण है। मन्त्र का ठीक अर्थ इस प्रकार है—

तस्मद्यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥ —यजुः० ३१।७

भाषार्थ—हे मनुष्यो! तुमको चाहिए कि उस पूर्ण, अत्यन्त पूजनीय, जिसके अर्थ सब लोग समस्त पदार्थों को देते वा समर्पण करते, उस परमात्मा से ऋग्वेद, सामवेद उत्पन्न होते, उस परमात्मा से ही अथर्ववेद उत्पन्न होता और उससे ही यजुर्वेद उत्पन्न होता है, उसको जानो॥७॥

इससे सिद्ध हुआ कि चारों वेदों को उस निराकार, अजन्मा परमात्मा ने संसार के उपकारार्थ प्रकट किया।

(२००) प्रश्न—'ऋचः सामानि' इत्यादि [अथर्व० ११।७।२४] प्रलयकाल में शेष रहनेवाले परमात्मा से ऋक्, साम, अथर्व और पुराण यजुर्वेद के साथ उत्पन्न हुए।

—पृ० २४३, पं० २०

उत्तर—आपने आधे मन्त्र का अर्थ ही छोड़ दिया, क्योंकि उससे परमात्मा की व्यापकता सिद्ध होकर परमात्मा निराकार सिद्ध होता है। देखिए, मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है—

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः॥ —अथर्व० ११।७।२४

भाषार्थ—ऋग्वेद, सामवेद, और यजुर्वेदसहित अथर्ववेद और पुरातनवृत्तान्त—यह सब और आकाश में वर्त्तमान सूर्य के आकर्षण में ठहरे हुए सब गतिमान लोक शेष रहनेवाले परमात्मा से उत्पन्न हुए॥ २४॥

ये सब उपर्युक्त पदार्थ उस व्यापक, निराकार परमात्मा से उत्पन्न हुए।

(२०१) प्रश्न—'ब्रह्मज्येष्ठा' इत्यादि [अथर्व० १९।२३।३०] इस मन्त्र में 'प्रथम ब्रह्म ने ब्रह्मा-अवतार धारण किया' यह वर्णन है। —पृ० २४४, पं० ५

उत्तर—इस मन्त्र में परमात्मा के ब्रह्मावतार का धारण नाममात्र भी नहीं है, अपितु इसमें परमात्मा की उत्कृष्टता दिखलाई गई है। पूरा मन्त्र और अर्थ देखो (नं० ३१)

(२०२) प्रश्न—'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्' [श्वेताश्वतर ६।१८] यहाँ पर परमात्मा के दो रूप माने हैं—एक ब्रह्म निराकार और एक ब्रह्मावतार। इस कारण यह कहा गया कि उस निराकार और ब्रह्म ही की कृपा से ब्रह्मा के अन्तःकरण में वेद आये। —पृ० २४४, पं० १४

उत्तर—प्रथम तो यह प्रमाण वेद का नहीं है, अपितु उपनिषत् का है। वेद-प्रमाण की प्रतिज्ञा करके उपनिषत् का प्रमाण देना प्रतिज्ञाहानि-निग्रहस्थान में आकार पराजय प्राप्त करना है। दूसरे, इस पाठ में कहीं भी ब्रह्म के दो रूप नहीं लिखे और न कहीं ब्रह्मावतार का वर्णन है। मन्त्र का यथार्थ अर्थ इस प्रकार है—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदाँश्च प्रहिणोति तस्मै।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥ —श्वेताश्व० ६।१८

भाषार्थ—जो परमात्मा सृष्टि-आरम्भ में ब्रह्मा को पैदा करता है और जो उस ब्रह्मा के लिए वेदों को भेजता है। मैं मोक्ष की इच्छा करनेवाला आत्मा में बुद्धि का प्रकाश करनेवाले उस देव की शरण में जाता हूँ।

यहाँ पर ब्रह्मावतार का लेशमात्र भी नहीं है, अपितु 'परमात्मा ने ब्रह्म के लिए अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा द्वारा वेद भेजे' ऐसा सिद्ध होता है। परमात्मा ने आदि में चार ऋषियों पर वेद प्रकाशित किये, एक पर नहीं, जैसाकि **'स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्'** योग० समाधि० सू० २६। वह ईश्वर प्रथम उत्पन्न होनेवालों का भी गुरु है, क्योंकि वह नाशरहित है। यहाँ **'पूर्वेषाम्'** पद से सिद्ध है कि वेद का प्रकाश चार पर हुआ; यदि एक पर होता तो यहाँ 'पूर्वस्य' पद होता।

(२०३) प्रश्न—'ब्रह्मा देवानां प्रथमः' इत्यादि [मुण्डकोपनिषत्] यहाँ पर ब्रह्मा द्वारा ही सृष्टि के आरम्भ में वेदों का प्रकाश हुआ, ऐसा लिखा है। —पृ० २४५, पं० १

उत्तर—आपने आरम्भ में प्रतिज्ञा की थी कि वेद का प्रमाण देंगे। अब मुण्डक का प्रमाण दे दिया। यद्यपि मुण्डकोपनिषत् वेद नहीं है, तथापि इस पाठ में न तो सृष्टि के आरम्भ का वर्णन है और न ही ब्रह्मा द्वारा चारों वेदों के प्रकट होने का ज़िक्र है। यहाँ तो 'एक ब्रह्मा नामक ऋषि ने अपने पुत्र को पढ़ाया' इत्यादि वर्णन है। हम पूरा पाठ और अर्थ नीचे देते हैं—

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह॥ १॥
अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्मा अथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्या।
स भारद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम्॥ २॥

—मुण्डकोपनिषत् प्रथममुण्डके प्रथमखण्डे

भाषार्थ—ब्रह्मवेत्ता विद्वानों में प्रसिद्ध ब्रह्मविद्या के उपदेश द्वारा सबका उत्पादक, संसार का रक्षक ब्रह्मा नामक ऋषि उत्पन्न हुआ। उसने अथर्वा नामक अपने बड़े पुत्र को सब विद्याओं में श्रेष्ठ ब्रह्मविद्या का उपदेश किया॥ १॥ पहले अथर्वा को जिस विद्या का ब्रह्मा ने उपदेश किया, अथर्वा ने अङ्गिरा ऋषि के लिए उस ब्रह्मविद्या को कहा, उसने भारद्वाज गोत्रवाले सत्यवाह को और सत्यवहा ने अङ्गिरा ऋषि को पर और अपर विद्या का उपदेश किया॥ २॥

बतलाइए, इसमें चारों वेदों के प्रादुर्भाव का वर्णन कहाँ है?

(२०४) प्रश्न—ईश्वर का ज्ञान अग्नि, वायु, रवि—इन ऋषियों के अन्त:करण में आया। तब इन्हीं ने अपने मुँह से जो कहा वही वेद है। चोखी रही! सम्भव है ऋषियों ने अपने ही तरफ़ से कुछ कहा हो! उनके अन्त:करण में ईश्वरीय ज्ञान आया इसका क्या प्रमाण?

—पृ० २४७, पं० १

उत्तर—संसार में कोई मनुष्य बिना पढ़ानेवाले के अपने-आप ज्ञानी वा विद्वान् नहीं बन सकता। यदि अपने-आप विद्या आ जावे तो अफ़रीका के हब्शी भी एम०ए० हो जावें, किन्तु ऐसा नहीं होता। सृष्टि के आरम्भ में जो चार ऋषि हुए उन्हें अपना कोई ज्ञान न था, क्योंकि उस समय उनको ज्ञान देनेवाला सिवाय परमात्मा के और कोई न था, अत: उनके अन्त:करण में जिस ज्ञान का प्रकाश हुआ वह ईश्वर का ही ज्ञान था, ऋषियों का अपना ज्ञान न था। ऋषि तो ग्रामोफोन के रिकार्ड की भाँति निमित्तमात्र ही थे, अत: आपकी शंका सर्वथा निर्मूल है, और यही शंका आपके सिद्धान्त पर भी की जा सकती है, क्योंकि इसमें प्रमाण नहीं कि ब्रह्मा ईश्वर के अवतार थे। सम्भव है किसी चालाक आदमी ने अपना नाम ब्रह्मा रखकर और अपने को ईश्वर का अवतार बताकर मनमाना ज्ञान वेद के नाम से सनातनियों के गले मढ़ दिया हो! भला! एक बात तो बतलावें कि आप जो कहते हैं कि चारों वेद चार मुखवाले आठ हाथोंवाले ब्रह्मा पर प्रकट हुए, इसमें फ़र्क क्या हुआ? सिर्फ इतना ही न कि आपने चार आदमियों को जोड़कर एक बना दिया और हमने चार पृथक्-पृथक् रक्खे, जिसमें हमारा कहना सम्भव तथा सत्य है तथा आपकी कल्पना असम्भव और असत्य है।

(२०५) प्रश्न—मनुस्मृति और शतपथब्राह्मण दयानन्द की दृष्टि में बहुत पश्चात् बने, इस कारण यह नहीं माना जा सकता कि वेदों के प्रादुर्भूत काल में वह ज्ञान ईश्वरीय समझ लिया गया हो, क्योंकि उस समय कोई ग्रन्थ साक्षी देनेवाला नहीं था। —पृ० २४७, पं० ५

उत्तर—सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों की ओर से चारों वेदों के ज्ञान का प्रादुर्भूत होना उस ज्ञान के ईश्वरीय होने का स्वयं प्रमाण है, क्योंकि उस समय ईश्वर के बिना कोई ज्ञानदाता था ही नहीं और अपने-आप ज्ञान होता नहीं। सृष्टि के आरम्भ के लोग इस बारे में स्वयं साक्षी थे। उन्हीं की साक्षी से शतपथ और मनु ने लिखा जोकि वेदानुकूल और सम्भव होने से हमें प्रमाण हैं। और यही सवाल तो आपपर भी हो सकता है, क्योंकि उपनिषत् भी आरम्भ-सृष्टि में न थे और किसी ग्रन्थ की साक्षी के बिना ब्रह्मा के ज्ञान को भी ईश्वरीय न समझा गया हो यह भी सम्भव है, अत: यह युक्ति किसी स्वस्थ दिमाग़ से निकली प्रतीत नहीं होती।

(२०६) प्रश्न—'**ब्रह्मज्येष्ठा**' इस मन्त्र ने जो वेद में ब्रह्मा का अवतार बतलाया '**यो ब्रह्माणम्**' इस श्रुति में ब्रह्मा के अन्त:करण में वेदों का आगमन बतलाया, इसी प्रकार मुण्डकोपनिषत् ने ब्रह्मा का अवतार और ब्रह्मा के द्वारा संसार में जो वेदों का आगमन बतलाया—इन सब श्रुतियों को तो स्वामी दयानन्दजी चाट गये, केवल मनु और शतपथ से ऋषियों द्वारा वेद-आगमन मानते हैं।

—पृ० २४७, पं० ९

उत्तर—'**ब्रह्मज्येष्ठा**' में न तो ईश्वर के ब्रह्मा-अवतार का वर्णन है और न ब्रह्मा पर वेदों

के प्रकाश का ज़िक्र है, अपितु ईश्वर की उत्कृष्टता का वर्णन है। **'यो ब्रह्माणम्'** इसमें यह वर्णन है कि 'परमात्मा ने पहले ब्रह्मा को बनाया, फिर उसके लिए वेद भेजे'; वेद कैसे भेजे इसका कोई वर्णन नहीं। यदि आप कहें हृदय में प्रकाशित किये तो भेजना शब्द उसके लिए उचित नहीं। इसलिए हमारा ही पक्ष ठीक है कि अग्नि आदि चार ऋषियों के द्वारा ही ब्रह्मा को चारों वेद प्राप्त करवाये या भेजे। फिर जब ब्रह्मा स्वयं ही ईश्वर थे तो यह क्या बात बनी कि ईश्वर ने ब्रह्मा के लिए वेद भेजे? इससे तो ब्रह्मा ईश्वर के अवतार सिद्ध नहीं होते। अब रही बात मुण्डकोपनिषत् की, सो यहाँ पर जिन ब्रह्माजी का वर्णन है वह आपके सृष्टि के आरम्भवाले ब्रह्मा प्रतीत नहीं होते, क्योंकि सृष्टि के आरम्भवाले आपके अवतार ब्रह्मा के पुत्रों की गणना जहाँ पुराणों में है, वहाँ अत्रि, पुलस्त्य पुलह, मरीचि, भृगु, अंगिरा, क्रतु, वसिष्ठ, वोढ, कपिल, आसुरि, कवि, शंकु, शंख, पंचशिख, प्रचेता, (ब्रह्मवै० खं० ४ अ० ३०।३३-३४) आदि नाम तो ब्रह्मा के पुत्रों के आते हैं, किन्तु अथर्वा नाम ब्रह्मा के पुत्र का कहीं नहीं आता, इससे पता लगा कि यह सृष्टि के आदिवाले वेदों के निर्माता पौराणिक ब्रह्मा न थे, अपितु यह कोई और ब्रह्मा थे जिन्होंने अपने पुत्र अथर्वा को ब्रह्मविद्या पढ़ाई। आप कोई ऐसा प्रमाण पेश नहीं कर सके जिससे ब्रह्मा का सृष्टि के आदि में पैदा होना तथा उसका वेद कथन करना सिद्ध हो सके, हमारे पास प्रमाण हैं—

(क) अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्य्यात् समावेदः। —शत० ११।५।८।३॥

(ख) यदथर्वाङ्गिरसः स य एवं विद्वानथर्वाङ्गिरसो अहरहः स्वाध्यायमधीते।
—शत० ११।५।६।७

(ग) अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्मसनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम्॥ —मनु० १।२३

(घ) श्रुतीरथर्वाङ्गिरसीः कुर्यादित्यविचारयन्॥ —मनु० ११।३३

भाषार्थ—(क) अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद, सूर्य से सामवेद प्रकट हुए। (ख) जो अथर्ववेदवाला अंगिरा मुनि वह जो इस प्रकार से जानता है कि अथर्वाङ्गिरा हमेशा स्वाध्याय करता है। (ग) ब्रह्मा ने अग्नि-वायु-रवि से तीनों सनातन वेद ऋग्, यजु, साम लक्षणवाले यज्ञ की सिद्ध के लिए प्राप्त किये। (घ) बिना किसी सन्देह के अंगिरा ऋषि पर प्रकट हुई अथर्ववेद की श्रुतियों का पाठ करे।

अब आप स्वयं न्यायपूर्वक सोचें कि आपका पक्ष कितना निर्बल और स्वामीजी का पक्ष कितना प्रबल है!

(२०७) प्रश्न—स्वामीजी की दृष्टि में मनुस्मृति और शतपथब्राह्मण जिसको स्वामी दयानन्दजी ने पुराण माना है—ये दोनों ही ग्रन्थ स्वतःप्रमाण नहीं है, वेदानुकूल होने पर प्रमाण हैं, किन्तु **'अग्निवायुरविभ्यस्तु'** इत्यादि मनु के प्रमाण और **'अग्नेर्ऋग्वेदः'** इत्यादि शतपथ के प्रमाण की वेदानुकूलता पाई नहीं जाती, फिर स्वामी दयानन्दजी ने इन दो प्रमाणों को स्वतःप्रमाण कैसे माना?
—पृ० २४७, पं० १४

उत्तर—प्रथम आप ब्राह्मणग्रन्थों को वेद मानते हैं और श्लोकग्रन्थों को भी वेदवत् ब्रह्म से ही प्रकट हुआ मानते हैं। इससे शतपथ और मनस्मृति आपके लिए तो दोनों ही स्वतःप्रमाण हैं, आपको ननुनच करने का क्या हक़ है? दूसरे, आप इन दोनों प्रमाणों के साथ वेद का विरोध नहीं दिखा सके। यदि आप वेद से ब्रह्मावतार द्वारा वेदों का प्रकट होना सिद्ध कर देते तो ये दोनों प्रमाण वेदविरुद्ध होने से न मानने के योग्य हो जाते, किन्तु ऐसा करने में आप कृतकार्य नहीं हुए, अतः विरोधाभाव में विधान वेदानुकूल होने से प्रमाण है।

तीसरी, इस विषय में वेद स्वयं भी इसकी पुष्टि करते हैं। जैसे—

अग्नि से ऋग्वेद— **अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।**
होतारं रत्नधातमम्॥ —ऋ० १।१।१
अग्निर्ऋषिः पवमानः पांचजन्यः पुरोहितः। —ऋ० ९।६६।२०

वायु से यजुर्वेद— **इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे**—इत्यादि। —यजुः० १।१

आदित्य से सामवेद— **अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये**—इत्यादि। —साम० १।१।१।१
अग्निर्वार्कः। —शत० २।५।१।४

अङ्गिरा से अथर्ववेद— **ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।**
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे॥ —अथर्व० १।१।१
अथर्वाङ्गिरसो मुखम्। —अथर्व० १०।७।२०

भाषार्थ—मैं उस अग्नि की स्तुति करता हूँ जो पुरोहित तथा यज्ञ का ऋत्विज देव है तथा होता है और वेदरूपरत्न का धारण करनेवाला है।

जो पवित्र सब मनुष्यों का पुरोहित है, वह ऋषि अग्नि है।

श्रेष्ठ कर्मों के लिए हमारा ज्ञानदाता, वेदविज्ञान के बल के लिए वह वायुदेव उपस्थित है।

हे अग्ने! तू हमें वेदवाणी का दान करने के लिए आ। यहाँ अग्नि नाम सूर्य का है।

वाचस्पति वेदवाणी का धारण करनेवाला है। अङ्गिरा का अथर्ववेद मुख है।

अर्थात् जिस ऋषि पर ऋग्वेद प्रकाशित हो उसका नाम अग्नि, जिसपर यजुर्वेद प्रकाशित हो उसका नाम वायु, जिसपर सामवेद प्रकट हो उसका नाम आदित्य और जिसपर अथर्ववेद प्रकाशित हो उस ऋषि का नाम अङ्गिरा है।

शतपथ तथा मनु के प्रमाण उपर्युक्त वेदमन्त्रों के अनुकूल होने से प्रमाण करने के योग्य हैं।

(२०८) प्रश्न—'ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव' ब्रह्मा सब देवताओं से प्रथम प्रकट हुआ, मनु के प्रथम अध्यायानुकूल आदि में अयोनिज ऋषियों की उत्पत्ति ब्रह्मा से हुई है, फिर वे चार ऋषि आये कहाँ से? इन ऋषियों के द्वारा ब्रह्मा ने वेद पढ़ा—इसका लेख वेद, धर्मशास्त्र, पुराण, इतिहास किसी में भी नहीं है। —पृ० २४७, पं० २२

उत्तर—हम यह सिद्ध कर आये हैं कि **'ब्रह्मा देवानाम्'** इत्यादि मुण्डक में जिस ब्रह्मा का वर्णन है, वह पौराणिक चतुर्मुख, अष्टभुज अवतार ब्रह्मा न थे, अपितु वह अन्य ब्रह्मा थे, क्योंकि पौराणिक ब्रह्मा के पुत्रों में कहीं भी अथर्वा का नाम पुराणों में नहीं आता, अतः अथर्वा के पिता ब्रह्मा चतुर्मुख ब्रह्मा से भिन्न थे और वह सृष्टि के आदि में भी नहीं हुए। यहाँ पर आदि का अर्थ श्रेष्ठ तथा प्रसिद्ध है अर्थात् 'विद्वानों में प्रसिद्ध ब्रह्मा नामक ऋषि हुए'। रही मनु के प्रथम अध्याय की बात, वहाँ भी सृष्टि के पैदा करनेवाले, चतुर्मुख पौराणिक ब्रह्मा नहीं हैं, अपितु ब्रह्मा अर्थात् परमात्मा हैं। जैसाकि—

यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्। तद्विसृष्टिः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते॥
—मनु० १।११

भाषार्थ—जो वह सदसदात्मक, नित्य, अप्रकट, कारण, अर्थात् सूक्ष्म प्रकृति है उसके सहित उस व्यापक परमात्मा को ब्रह्मा कहते हैं॥११॥ उसी ने सारी सृष्टि को बनाकर आरम्भ में—

तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये। —यजुः० ३१।९

देवा योगिनः कपिलादयश्च साध्याश्चापरे ऋषयः। —उव्वट-भाष्य

भाषार्थ—योगी कपिलादि मनुष्य और ऋषियों को पैदा किया।

यही बात मनुस्मृति कह रही है कि—

कर्मात्मनां च देवानां सोऽसृजत् प्राणिनां प्रभुः।
साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञं चैव सनातनम्॥ —मनु० १।२२

भाषार्थ—उस परमात्मा ने कर्मशील देवों को और मनुष्यों की अल्प संख्या तथा सनातन यज्ञ को पैदा किया॥ २२॥

इन सृष्टि के आदि में पैदा होनेवालों में अग्नि आदि चार ऋषि और ब्रह्मा भी थे। तब परमात्मा ने ब्रह्मा को इन चार ऋषियों के द्वारा चार वेद प्राप्त करवाये और ब्रह्मा ने प्राप्त किये। यह तो वेद तथा धर्मशास्त्र का प्रमाण है। अब पुराण, इतिहास का प्रमाण भी सायणाचार्य की सम्मतिसहित उपस्थित है। ज़रा पढ़िए—

जीवविशेषैरग्निवाय्वादित्यैर्वेदानामुत्पादितत्वात्। ऋग्वेद एवाग्नेरजायत यजुर्वेदो वायोः सामवेद आदित्यात् (ऐतरे० ब्रा० ५।३२॥ इति। श्रुतेरीश्वरस्याग्न्यादिप्रेरकत्वेन निर्मातृत्वं द्रष्टव्यम्॥
—सायणभाष्यभूमिकासंग्रह पृ० ४

भाषार्थ—अग्नि, वायु, आदित्य विशेष जीवों से वेदों के पैदा होने से ऋग्वेद ही अग्नि से पैदा हुआ, यजुर्वेद वायु से, सामवेद आदित्य से, ऐसी श्रुति होने से, ईश्वर के अग्नि आदि के प्रेरक होने से, ईश्वर से वेदों का निर्माण जानना चाहिए। इन प्रमाणों से सिद्ध है कि चारों वेद चतुर्मुख ब्रह्मा द्वारा प्रकट नहीं हुए, अपितु अग्नि आदि चार ऋषियों द्वारा परमात्मा ने प्रकट किये और उनके द्वारा ही ब्रह्मा ऋषि को प्राप्त कराये।

(२०९) प्रश्न—मनु और शतपथ इन दोनों में अग्नि, वायु, रवि इन तीन का नाम आता है। यह चौथा अङ्गिरा कहाँ से कूद बैठा? —पृ० २४७, पं० ३०

उत्तर—चौथे वेद अथर्व के साथ प्रायः अङ्गिरा का स्वयं ही नाम आता है, अतः इन तीन के साथ उसका नाम नहीं दिया गया। वैसे शतपथ तथा मनु में नाम भी मौजूद है, (देखो नं० २०६)। और आपने अपने पुस्तक में पृ० ६७, पं० २७ में स्वयं भी लिखा है कि 'अङ्गिरा ऋषि अवश्य थे', फिर अब बतलावें चौथे में क्या सन्देह है?

(२१०) प्रश्न—(१) अग्नि, वायु, रवि, अङ्गिरा ये ऋषि किस ज़माने में हुए? (२) इनका होना वेद, धर्मशास्त्र, दर्शन, पुराण कहीं पर नहीं मिलता। (३) इन ऋषियों की उत्पत्ति कहाँ लिखी है? (४) यदि ये ऋषि थे तो इनकी माताओं का क्या नाम था? (५) और किन-किन मनुष्यों के ये पुत्र थे? (६) ये किस देश में हुए? (७) इनके कितने-कितने भाई एवं कितनी-कितनी बहिनें थीं? (८) फिर ये किस-किसके यहाँ विवाहे गये। (९) इनके श्वसुरों और इनकी स्त्रियों का क्या-क्या नाम था? (१०) तथा इन ऋषियों में से किस-किस ऋषि के कितने-कितने पुत्र हुए? (११) इन ऋषियों के गोत्र और प्रवर क्या थे? —पृ० २४८, पं० ४

उत्तर—(१) सृष्टि के आरम्भ में प्रथम दिवस प्रातःकाल हुए। (२) इनका होना वेद में (देखो नं० २०७), धर्मशास्त्र में (देखो नं० २०६), पुराणों में (देखो नं० २०८) लिखा हुआ है। (३) इनकी उत्पत्ति यजुः० ३१।९ में (देखो नं० २०८) लिखी है। (४) अमैथुनी सृष्टि में होने के कारण इनकी गर्भधारण करनेवाली माँ न थी। (५) तथा नस्ली पिता भी न थे। (६) ये त्रिविष्टिप् अर्थात् तिब्बत देश में हुए। (७) नस्लन् इनके कोई भाई-बहिन न थे, आत्मिक सम्बन्ध से सब पुरुष भाई तथा स्त्रियाँ बहिनें थीं। (८) ये आयुभर ब्रह्मचारी रहे, विवाह नहीं करवाया। (९) जब विवाह ही नहीं हुए तो श्वसुर और स्त्रियाँ कहाँ?

(१०) इनके नस्ली पुत्र न थे; आत्मिक पुत्र सब शिष्यवर्ग थे, जिनमें आपके ब्रह्मा भी शामिल हैं। (११) मनुष्यों के गोत्र और प्रवर इनके पीछे कल्पित किये गये हैं।

(२११) प्रश्न—'स ब्रह्मविद्याम्' मुण्डक की इस श्रुति में ब्रह्मा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को वेद पढ़ाये और अथर्वा ने अंगिरा को, अंगिरा ने सत्यवाह को वेदों का उपदेश किया—यह जो क्रम वेद ने बतलाया है क्या यह झूठा है? —पृ० २४८, पं० १५

उत्तर—यह क्रम वेद ने नहीं बतलाया, उपनिषत् ने बतलाया है। उपनिषत् वेद नहीं है। इस क्रम को हम झूठा नहीं कहते, किन्तु यह क्रम पौराणिक चतुर्मुख ब्रह्मा का नहीं है, क्योंकि पुराणों में कहीं ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा का वर्णन नहीं है और क्योंकि प्रत्येक चार वेदवक्ता का नाम ब्रह्मा है, अत: यह क्रम किसी और ब्रह्मा का है, जिसके पुत्र का नाम अथर्वा था। इससे ब्रह्मा पर वेदों का प्रकट होना सिद्ध नहीं होता।

(२१२) प्रश्न—यह सब रचना ब्रह्मा ने की है। वही ब्रह्मा **'अग्निवायुरविभ्यस्तु'** इस श्लोक में 'दुदोह' क्रिया का कर्त्ता है, अर्थात् इस श्लोक में **'ऋग्यजु: सामलक्षणम्'** यह कर्म है। ब्रह्मा कर्त्ता है दुदोह क्रिया है अर्थ हुआ कि अग्नि, वायु, रवि से ब्रह्मा ने वेदों को दुहा। —पृ० २४९, पं० ५

उत्तर—इस सारे संसार की रचना ब्रह्मा नामक परमात्मा ने की है, जिसमें अग्न आदि तथा ब्रह्मादि ऋषि भी शामिल हैं। **'अग्निवायुरविभ्यस्तु'** इस श्लोक में ब्रह्मा कर्त्ता है तथा ऋग्यजु: साम और अग्नि आदि ऋषि कर्म हैं और दुदोह क्रिया है। दुह धातु द्विकर्मक है तथा 'ण्यन्तगर्भा' है, अत: अर्थ यह हुआ कि 'परमात्मा ने अग्नि, वायु, रवि के द्वारा ब्रह्मा को चारों वेद प्राप्त कराये।' जब आपको संस्कृत का व्याकरण नहीं आता तो आप व्यर्थ में टाँग क्यों अड़ाते हैं?

(२१३) प्रश्न—जो पदार्थ किसी पदार्थ में व्यापक होता है वह उसमें से दुहा जाता है जैसे गौ के अङ्ग-अङ्ग में दूध है, वह स्तनों से दुह लिया जाता है। तो क्या इन तीन ऋषियों के हाड़, मांस, रुधिर, चमड़े में वेद व्यापक हो गया जो ईश्वर ने तीनों को पकड़कर दुह लिया? —पृ० २४९, पं० २२

उत्तर—क़ुरबान जाएँ आपकी दर्शनविद्या पर! यहाँ तो आपने फ़िलासफ़ी की टाँग ही तोड़ दी। क्योंजी! क्या दूध गाय के हाड़, मांस, रुधिर, चमड़ा, गोबर, पेशाब सबमें व्यापक है? यदि यही बात है तो आप उपर्युक्त वस्तुओं का दूध के स्थान में प्रयोग क्यों नहीं करते? और यदि दूध व्यापक है तो स्तनों द्वारा ही क्यों निकलता है मुख, नाक, कान, आँख, योनि, गुदा, द्वारा क्यों नहीं निकलता? जैसे खून गौ के शरीर में व्यापक है तो जहाँ ज़ख़्म होगा वहीं से खून निकल पड़ेगा, इसी प्रकार से प्रत्येक स्थान से दूध निकलना चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं होता, अत: पता लगा कि दूध गौ के शरीर में व्यापक नहीं है, अपितु कुछ नाड़ियाँ दूध बनाती हैं जिनका स्तनों से सम्बन्ध है जिनसे दूध निकलता है। फिर दूध का उदाहरण ग़लत है, क्योंकि वेदज्ञान शारीरिक वस्तु नहीं अपितु आत्मिक वस्तु है और वह ज्ञान परमात्मा ने ऋषियों की आत्मा में व्यापक होते हुए प्रकाशित किया और उनसे ब्रह्मा ने पढ़ा, इसी का नाम दोहना या प्राप्त करना है। कहिए, अब भी अक़ल ठिकाने आई या नहीं?

(२१४) प्रश्न—अग्नि, वायु, सूर्य इन पद-पदार्थों में जो सूक्ष्म होके वेद सर्वव्यापक बन गया था, उसको ब्रह्मा ने खैंचकर वेद के स्थूल रूप में कर दिया, यह असली अर्थ है। —पृ० २५०, पं० १

उत्तर—वेद ज्ञान है। वह आत्मा का गुण है, अत: वह या तो परमात्मा में रह सकता है या जीवात्मा में; किन्तु अग्नि, वायु, सूर्य, ये तीनों जड़ पदार्थ हैं। इनमें वेद का ज्ञान सूक्ष्म होकर कैसे व्यापक बन गया था और ब्रह्मा ने उनमें से कहाँ से खैंचकर स्थूलरूप में कर दिया? यह फ़िलासफ़ी किस दर्शन के अनुसार है, ज़रा बतलाने की कृपा करें वरना सोच-समझकर बात किया

करें। व्यर्थ गप्पबाज़ी से वैदिक सिद्धान्त का खण्डन नहीं हो सकता। अग्नि, वायु, सूर्य नामवाले ऋषि थे, जिनके द्वारा परमात्मा ने ब्रह्मा को वेद प्राप्त करवाये।

(२१५) प्रश्न—चतुर्थ अथर्ववेद को दयानन्दजी के मत में पता नहीं कि अब्दुल रहमान ने बनाया या डाक्टर स्मिथ ने। —पृ० २५०, पं० ६

उत्तर—यह सनातनधर्म में ही सम्भव हो सकता है कि ऐरे-ग़ैरे नत्थू खैरे की बनाई हुई किताब को भी वेद का दर्जा दिया जा सके। वैदिक सिद्धान्त अटल हैं। उनमें मनुष्यकृत, बनावटी वस्तु शामिल नहीं हो सकती। यह ठग्गी सनातनधर्म में ही चल सकती है कि 'आग़ाखाँ' और 'ग़ुलाम अहमद कादयानी' जैसे लोग अपने-आपको कृष्ण का अवतार और अपनी वाणी को वेद बताकर हज़ारों हिन्दुओं को मुसलमान बना रहे हैं। रही चौथे वेद अथर्व की बात, सो वह अंगिरा ऋषि द्वारा परमात्मा ने ब्रह्मा को प्राप्त करवाया जिसका वर्णन शतपथ तथा मनु में मौजूद है (देखो नं० २०६)। तथा अथर्ववेद में स्वयं **'अथर्वांगिरसो मुखम्'** इन शब्दों में वर्णन मौजूद है (देखो नं० २०७)।

(२१६) प्रश्न—जिस मनु के श्लोक को आगे रखकर तीन ऋषियों से वेदोत्पत्ति बतलाई उसके पहले श्लोक में मनुजी कहते हैं कि ब्रह्मा ने देवता और साध्यों को पैदा किया। दयानन्द के मत में मनुष्यों से भिन्न देवता और साध्य होते ही नहीं। दयानन्दजी तो पढ़े हुए मनुष्यों को देवता एवं साध्य मानते हैं। जब हम यह श्लोक आर्यसमाजियों के आगे रखते हैं कि देखो मनु ने मनुष्यों की उत्पत्ति तो पहले लिख दी और अब इस श्लोक में देवता तथा साध्यों की उत्पत्ति बतलाई गई है इस कारण देवता तथा साध्यसृष्टि मनुष्य-सृष्टि से भिन्न है, तब आर्यसमाजी कहते हैं कि **'कर्मात्मनाम्'** यह श्लोक वेदानुकूल नहीं है, अतएव हम इसको नहीं मानते। जैसे **'कर्मात्मनाम्'** वेदानुकूल नहीं है वैसे ही 'अग्निवायु' यह श्लोक भी वेदानुकूल नहीं है, फिर इसको दयानन्दजी ने क्यों माना? —पृ० २५०, पं० ९

उत्तर—बेशक वैदिक सिद्धान्तानुसार देव, साध्य, मनुष्य, राक्षस, गन्धर्व आदि सबकी एक ही मनुष्यजाति है (देखो नं० १९४)। केवल देश, कर्म, नाम का भेद है। **'कर्मात्मनाम्'** मनु० १।२२ से पूर्व मनुस्मृति में कहीं भी मनुष्यों की उत्पत्ति लिखी हुई नहीं है। आपने यह सुफ़ैद झूठ बोला है। यदि हिम्मत हो तो दिखलावें वरना इस झूठ के लिए प्रायश्चित्त करें। इस श्लोक का अर्थ यह है कि ब्रह्मा=परमात्मा ने कर्मात्मप्राणी देव तथा साध्य पैदा किये जिनमें ब्रह्मादि ऋषि भी थे। अगले श्लोक में बतलाया कि ब्रह्मा=परमात्मा ने अग्नि आदि चार ऋषियों द्वारा चार वेद ब्रह्मा ऋषि को प्राप्त करवाये, अतः ये दोनों श्लोक वेदानुकूल होने से प्रमाण हैं और आपकी सारी कल्पना निर्मूल तथा मिथ्या है।

(२१७) प्रश्न—प्रजापतिर्वा इदमग्र आसीदिति [शत० ११।५।८।१ से ४] इन श्रुतियों में स्पष्ट लिखा है कि तप के द्वारा प्रजापति ने तीन लोकों को बनाया और उन तीन लोकों को तपाकर अग्नि, वायु, सूर्य इन तीन ज्योतियों को बनाया, एवं इन तीन ज्योतियों को तपाकर उनसे तीन वेदों को बनाया। अब पाठक विचार करें कि अग्नि, वायु, सूर्य—ये तीनों ही ज्योतियाँ तत्त्व हैं या ऋषि और फिर इन ज्योतियों को तपाया है, क्या वे ऋषि तपाये गये थे?

—पृ० २५०, पं० २५

उत्तर—यदि ऋषि न तपाये गये थे तो क्या ज्ञानशून्य, जड़ तत्त्वों से वेद टपक पड़े थे? कभी तो बुद्धिपूर्वक विचार किया करें। यहाँ पर तप नाम तपाने का नहीं है अपितु ज्ञानविचार का नाम तप है, वरना वहाँ कोई लुहार की भट्टी थोड़ा ही थी जिसमें सबको तपाया जाता था। आपने पाठ का अर्थ भी पूरा नहीं किया। हम इसका ठीक-ठीक अर्थ नीचे कर देते हैं—

प्रजापतिर्वा इदमग्र आसीत्। एक एव सोऽकामयत स्यां प्रजायेयेति सोऽश्राम्यत्स तपोऽतप्यत तस्माच्छ्रान्तात्तेपानात् त्रयो लोका असृज्यन्त पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौः॥ १॥ स इमाँस्त्रींलोकानभितताप। तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि ज्योतिंᳬष्यजायन्ताग्निर्योऽयं पवते सूर्यः॥ २॥ स इमानि त्रीणी ज्योतींᳬष्यभितताप। तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः॥ ३॥ स इमाँस्त्रीन् वेदानभितताप। तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि शुक्राण्यजायन्त भूरित्यृग्वेदाद् भुव इति यजुर्वेदात् स्वरिति सामवेदात्तदृग्वेदेनैव होत्रमकुर्वत यजुर्वेदेनाध्वर्यवं सामवेदेनोद्गीथं यदेव त्रय्यै विद्यायै शुक्रं तेन ब्रह्मत्वमथोच्चक्राम॥ ४॥

—शत० ११।५।८।१-४

भाषार्थ—यह एक ही प्रजापति पहले था, उसने सोचा कि मैं प्रजा के सहित हो जाऊँ। उसने ज्ञानपूर्वक प्रयत्न किया। उस ज्ञान तथा यत्न से उसने तीन लोक बनाये—पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ॥ १॥ उसने इन तीन लोकों को रचा, इन तीन लोकों के रचने पर उसने संसार को ज्ञान से प्रकाशित करने के लिए तीन प्रकाशमान् ऋषि पैदा किये—अग्नि, वायु, सूर्य॥ २॥ उसने इन तीन ज्योतिष्मान् ऋषियों को ज्ञान दिया, उनके ज्ञानवान् होने पर तीन वेद प्रकाशित हुए। अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद, सूर्य से सामवेद॥ ३॥ उसने इन तीन वेदों को प्रकाशित किया—उनके प्रकाशित होने पर तीन शक्तियाँ पैदा हुईं। भूः ऋग्वेद से, भुवः यजुर्वेद से, स्वः सामवेद से। सो ऋग्वेद से ही होता हवन करता है, यजुर्वेद से अध्वर्यु घी का हवन करता है, सामवेद से मङ्गल गाया जाता है और इन तीनों विद्याओं से ज्ञानवान् होकर ब्रह्म को प्राप्त होता है॥ ४॥

अब बतलावें यहाँ तीन ज्योतियाँ तत्त्व हैं या ऋषि? क्या ज्ञान तत्त्वों को दिया जा सकता है और क्या तत्त्वों से वेदों का ज्ञान प्रकाशित होना सम्भव है?

(२१८) प्रश्न—अभी ब्रह्मलोक में बैठे हुए प्रजापति ब्रह्मा ब्रह्माण्ड की रचना कर रहे हैं, इस समय तो पृथिवी आदि लोकों में प्राणधारण करनेवाले प्राणियों की उत्पत्ति ही नहीं हुई, अभी तो पृथिवी पर एक मनुष्य भी पैदा नहीं हुआ, फिर ये अग्नि, वायु, रवि—तीन ऋषि आये कहाँ से? —पृ० २५१, पं० २१

उत्तर—आप भंग की तरंग में कहाँ की बातें कर रहे हैं? प्रजापति परमात्मा ने तीनों लोक पैदा करके मनुष्य-सृष्टि पैदा कर दी और मनुष्यों को ज्ञान देने के लिए तीन प्रकाशमान् ऋषि पैदा किये जिनके द्वारा वेद प्रकाशित किये। यदि आपको यह बात नज़र न आवे तो हमारा क्या क़ुसूर!

(२१९) प्रश्न—अब तीन लोकों को तपाया गया, उनका सारभूत तीन तत्त्व निकलेंगे या तीन लोकों में से तीन ऋषि कूद पड़ेंगे? —पृ० २५१, पं० २४

उत्तर—अब तीन लोकों में ज्ञान देने के लिए तीन ऋषियों की ज़रूरत है या तीन तत्त्वों की। तत्त्व तो पूर्व थे ही और तत्त्वों से ज्ञानप्रकाश असम्भव होने के कारण तीन ऋषि ही पैदा हुए, तत्त्व नहीं।

(२२०) प्रश्न—जब शतपथ स्वयं अग्नि, वायु, रवि को ज्योति लिख रहा है, फिर ये ऋषि कैसे होंगे? —पृ० २५१, पं० २६

उत्तर—जब शतपथ स्वयं वेदों का प्रकाश करनेवाली तीन ज्योतियाँ लिख रहा है तो फिर ये ज्ञान-शून्य जड़तत्त्व कैसे होंगे? ज्ञानज्योति से प्रकाशित ऋषि ही हो सकते हैं, तत्त्व नहीं।

(२२१) प्रश्न—दयानन्दजी ने शतपथ की श्रुति से ज़रा-से टुकड़े को चुराकर आर्यसमाजियों को जो धोखे में डाला है, यह दयानन्दजी की चोरी और सीनाज़ोरी है। —पृ० २५१, पं० २७

उत्तर—यहाँ तप के अर्थ तपाना और वेद के प्रकाश करनेवाली ज्योति का तत्त्व अर्थ करके

जो आपने सनातनधर्मियों की आँखों में धूल डालकर अपने-जैसा बनाना चाहा है, यह आपकी ईमानदारी नहीं है।

(२२२) प्रश्न—फिर यह श्रुति दयानन्द के अद्वैत सिद्धान्त पर चौका लगा देती है। इसमें स्पष्ट लिखा है कि अकेला प्रजापति कामना करता है कि 'मैं प्रजा बनूँ।' श्रुति 'अभिन्ननिमित्तोपादानकारण' कह रही है। इसलिए दयानन्दजी ने सब श्रुतियों को नहीं उठाया, जान गये कि अग्नि, वायु, रवि ऋषि न होकर तत्त्व बन जाएँगे और इससे भिन्न प्रकृति से जो हमने संसार की उत्पत्ति मानी है, वह भी मिट जाएगी। —पृ० २५२

उत्तर—आप गहरी भंग की तरंग में लिखने बैठे हैं तभी तो स्वामी दयानन्द का अद्वैत सिद्धान्त बतला रहे हैं। होश से बात करें। स्वामी दयानन्दजी न द्वैतवादी हैं न अद्वैतवादी। वह तो त्रित्त्ववादी हैं। वे ईश्वर, जीव, प्रकृति तीनों को अनादि मानते हैं और शतपथ का यह पाठ स्वामीजी के सिद्धान्त की पुष्टि कर रहा है। प्रजापति एक ही था यह ठीक, किन्तु उसकी प्रजा प्रकृति और जीव भी थे तभी तो प्रजापति नाम हुआ। यदि प्रजा का अभाव होता तो प्रजापति नाम कैसे होता? क्या कभी 'बेमुल्क नवाब' भी होता है? इसमें 'अभिन्ननिमित्तोपादानकारण' की गन्ध भी नहीं है। ऋषि दयानन्दजी ने उतना पाठ दे दिया जितने की आवश्यकता थी वरना यह पाठ शेष पाठ का विरोधी नहीं है। ऋषि जानते थे कि वेदज्ञान का प्रकाश होना चैतन्य ऋषियों द्वारा ही सम्भव है, जड़ तत्त्वों द्वारा नहीं, अत: उन्होंने सिद्धान्त निश्चित कर दिया कि परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों द्वारा ब्रह्मादि ऋषियों को वेद का ज्ञान दिया। स्वामीजी के इस सिद्धान्त की पुष्टि वेद, शतपथ, ऐतरेय, सायणाचार्य, मनुस्मृति तथा कुल्लूकभट्ट भी करते हैं, अत: यही सिद्धान्त वेदानुकूल सत्य है तथा चतुर्मुख ब्रह्मा द्वारा वेद का प्रकाश वेदविरुद्ध और मिथ्या पौराणिक कल्पना है।

परिणाम

इस सारे लेख का परिणाम यह है कि सृष्टि के आरम्भ में केवल एक ऋषि ही पैदा नहीं हुआ अपितु अनेक ऋषि पैदा हुए जैसे कि **'तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये।'** [यजुः० ३१।९] में साफ़ लिखा है कि परमात्मा से देवता, साध्य और ऋषि पैदा हुए। यहाँ बहुवचन से सिद्ध है कि अनेक देवता, साध्य तथा ऋषि पैदा हुए। यदि एक ब्रह्मा ही आदि में पैदा हुआ होता तो वेद उसी का वर्णन करता। फिर इसकी पुष्टि—

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्॥—योगसू० समाधिपादे सू० २६

अर्थात् वह परमेश्वर सृष्टि के आदि में अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा को वेदों का उपदेश करने के कारण गुरु नामवाला है।

अब यहाँ भी सिद्ध होता है कि परमात्मा ने आरम्भ में कई ऋषियों को वेदों का उपदेश किया तभी तो **'पूर्वेषाम्'** शब्द बहुत का वाची आया, वरना यदि एक ब्रह्मा ही आदि में होता तो सूत्र में **'पूर्वस्यापि गुरुः'**, 'पहले ब्रह्मा का गुरु' ऐसा पाठ होता। इससे सिद्ध है कि परमात्मा ने चारों ऋषियों पर चारों वेदों का प्रकाश किया। उनसे ब्रह्मा ने पढ़े, यही निश्चित सिद्धान्त है।

फलित ज्योतिष

(२२३) प्रश्न—'यानि नक्षत्राणि' इत्यादि [अथर्व० १९।८।१] इस मन्त्र में नक्षत्रों से कल्याण करने की प्रार्थना करना लिखा है। —पृ० २५२, पं० १४

उत्तर—इस मन्त्र में नक्षत्रों से कल्याण की प्रार्थना नहीं की गई, क्योंकि सभी नक्षत्र जड़ हैं। इनका हमारी तबीयत के अनुसार हमारे साथ गर्मी-सर्दी और प्रकाश का सम्बन्ध तो है, इनका

हमारे कर्मों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। जीव स्वतन्त्रता से कर्म करता है और परमात्मा की व्यवस्था से अपने पुण्य-पापकर्मों का फल सुख और दुःख के रूप में पाता है। यदि सुख-दुःख के देनेवाले नक्षत्र हों तो वेद का उपदेश कि—

''कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥ २॥ —यजुः० ४०।२

भाषार्थ—मनुष्य इस संसार में धर्मयुक्त कर्मों को करता हुआ ही सौ वर्ष जीवन की इच्छा करे। इस प्रकार धर्मयुक्त कर्मों में प्रवर्त्तमान तुझ नर में अधर्मयुक्त, अवैदिक कर्म का लेप नहीं होगा। इसके बिना कोई रास्ता नहीं है॥ २॥''

सर्वथा निरर्थक हो जावेगा। वेद का उपदेश स्पष्ट है कि कर्म करने से ही कल्याण है। किये कर्मों का फल अवश्य मिलता है। ग्रहों के कारण किये कर्म के फल से छुटकारा नहीं मिल सकता है। जैसे—

नाधर्मः कारणापेक्षी कर्त्तारमभिमुञ्चति।
कर्त्ता खलु यथाकालं ततः समभिपद्यते॥ ८॥ —महा० शान्ति० अ० २९८

भाषार्थ—अधर्म किसी कारण से कर्त्ता को छोड़ता नहीं। निश्चय रूप से करनेवाला यथासमय उसके फल को अवश्य पाता है॥ ८॥

और ग्रहों के कारण बिना किये का फल मिलता नहीं। जैसे—

भोजनाच्छादने चैव मात्रा पित्रा च संग्रहम्।
स्वकृतेनाधिगच्छन्ति लोके नास्त्यकृतं पुरा॥ १७॥ —म० शान्ति० अ० २८८

भाषार्थ—भोजन-आच्छादन तथा माता-पिता का संग्रह जीव अपने कर्मों से प्राप्त करते हैं। बिना कर्म किये फल नहीं मिलता॥ १७॥

जब ग्रह किये हुए पापों के फल को टाल नहीं सकते तो उनका उपयोग क्या है? आप यदि फलित-ज्योतिष को सिद्ध करना चाहते हैं तो ऐसा प्रमाण उपस्थित कीजिए जिससे यह सिद्ध हो कि ग्रह किये कर्मों के फल को टाल सकते हैं या बिना कर्म किये भी फल दे सकते हैं। यदि कोई प्रमाण नहीं तो जनता को ग्रहों का झूठा भय दिखला-दिखलाकर लूटना परले दरजे की बेईमानी है। ये सब नक्षत्र, ग्रह, पृथिवी की भाँति जड़ हैं, न प्रार्थना से प्रसन्न और न निन्दा से अप्रसन्न होते हैं। हमारे विचार में तो फलित-ज्योतिष के जानने, बताने, ठगनेवाले ज्योतिषी ही जनता पर ग्रहरूप हैं। यदि जनता इनके पाखण्ड से परिचित हो जाए तो जनता को शान्ति प्राप्त हो जाए। इस मन्त्र में ग्रहों से प्रार्थना नहीं अपितु आधिदैविक दुःखों की निवृत्ति के लिए परमात्मा से प्रार्थना है। मन्त्र का अर्थ नीचे दिया जाता है—

यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु॥ १॥ —अ० १९।८।१

भाषार्थ—हे परमेश्वर! जिन सितारों को आकाश के अन्दर, मध्यलोक में, जिनको जल के ऊपर और जिनको पहाड़ों के ऊपर सब दिशाओं में चन्द्रमा समर्थ करता हुआ चलता है, ये सब नक्षत्र मुझे सुख देनेहारे हों॥ १॥

भावर्थ—जो नक्षत्र अपने तारागणों के साथ चन्द्रमा के आकर्षण और गतिमार्ग में घूमकर वायु द्वारा जल, पृथिवी आदि पर प्रभाव डालकर अन्न, स्वास्थ्य आदि बढ़ाने का कारण हैं, विद्वान् लोग उन नक्षत्रों के ज्योतिषज्ञान से लाभ उठावें॥ १॥

इस मन्त्र में फलितज्योतिष का लेशमात्र भी नहीं है।

(२२४) प्रश्न—'शन्नो ग्रहाश्च' इत्यादि [अथर्व० १९।९।१०] इस मन्त्र में ग्रहों से कल्याण की प्रार्थना करनी लिखी है। —पृ० २५२, पं० २०

उत्तर—इस मन्त्र में भी परमात्मा से आधिदैविक दुःखों को दूर करने की प्रार्थना है। आपको फलित-ज्योतिष की सिद्धि के लिए कोई ऐसा मन्त्र पेश करना चाहिए जिससे यह सिद्ध हो जाए कि जन्म-नक्षत्र के ज्ञान से उसके भविष्य-सौभाग्य का ज्ञान हो जाता है, किन्तु आप इस बारे में कोई मन्त्र पेश नहीं कर सकते, किन्तु आये दिन बच्चों की जन्मपत्रियाँ बना-बनाकर जनता से हज़ारों रुपये ठगते हैं। जिस नक्षत्र वा मुहूर्त्त में एक राजा का लड़का पैदा होता है उसी नक्षत्र में हज़ारों मनुष्य, कुत्ते, बिल्ली आदि प्राणी पैदा होते हैं, किन्तु सबका सौभाग्य एक-सा नहीं होता। और भविष्य-कर्मफल या सौभाग्य का यदि पता लग जाए तो संसार बहुत-से कष्टों से बच जाए किन्तु ऐसा होता कदापि नहीं। सैकड़ों ज्योतिषियों की अपनी लड़कियाँ विधवा हो जाती हैं, किन्तु उनको पहले से उनके सौभाग्य का ज्ञान नहीं होता। ज्योतिषी सैकड़ों लोगों को यह बतलाकर कि तुमपर ग्रह चढ़ा हुआ है जप, पूजा, पाठ के बहाने से हज़ारों रुपया लोगों से ठगते हैं। लोगों को भविष्य में अनाज का भाव बतलाकर सैकड़ों के दिवाले कर देते हैं। यदि इनको इन अन्नों का भाव पता लग जावे तो ये स्वयं करोड़पति न बन जावें, दो-दो पैसे पर धक्के क्यों खाते फिरें? सिद्ध करने की तो ये उक्त बातें हैं जो सिद्ध नहीं हो सकतीं। मन्त्र का अर्थ नीचे दिया जाता है—

शन्नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा।
शन्नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः॥१०॥ —अथर्व० १९।९।१०

भाषार्थ—हे परमात्मन्! चन्द्रमा के ग्रह कृत्तिकादि हमें शान्तिदायक होवें और सूर्य राहु के साथ शान्तिदायक होवे। मृत्युरूप धूमकेतु=पुच्छल तारा हमें शान्तिदायक हो, तीक्ष्ण तेजवाले गतिमान बृहस्पति आदि ग्रह शान्तिदायक होवें॥१०॥

कहिए, इस मन्त्र से फलित-ज्योतिष कैसे सिद्ध होता है? यह तो ऐसी ही शान्ति के लिए प्रार्थना है जैसे हम नित्यप्रति प्रार्थना करते हैं—

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳशान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳशान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥
—यजुः० ३६।१७

भाषार्थ—हे परमात्मन्! हमारे लिए द्यौ, अन्तरिक्ष, पृथिवी, जल, ओषधियाँ, वनस्पतियाँ, समस्त देव, ब्रह्म, सब-कुछ तथा शान्ति भी शान्तिदायक हो।

बतलाइए, आपके दिये हुए मन्त्रों में से कौन-सी वस्तु शेष रह गई? ऐसी प्रार्थनाओं का यही प्रयोजन है कि इन पदार्थों का हमारे साथ जितना सम्बन्ध और उपयोग है उतने अंश में हमें उनसे सुख मिले। इससे ग्रहों का किसी पर चढ़कर पीड़ा देना, जन्मपत्र में भविष्य-भोगों का वर्णन करना, विवाह-शादी के शुभलगन, सफ़र में दिशाशूल तथा योगिनी, विवाह आदि में शुभाशुभ मुहूर्त, वैधव्ययोग आदि फलित-ज्योतिष की सिद्धि कैसे हो गई?

(२२५) प्रश्न—'ज्येष्ठघ्न्यां जातो, व्याघ्रेऽ ह्न्यजनिष्ट' इत्यादि [अथर्व० ६।११०।२-३] इन दोनों मन्त्रों में ज्येष्ठा तथा मूल नक्षत्र में पैदा हुए बालक की कुशलता के लिए मूलशान्ति करनी लिखी है। —पृ० २५३, पं० ३

उत्तर—आपने प्रतिज्ञा तो की है वेद से फलित-ज्योतिष सिद्ध करने की और समय टाल रहे हैं इधर-उधर की बातों में। भला, इन मन्त्रों में उपर्युक्त जन्मपत्रादि फलित-ज्योतिष का वर्णन कहाँ है? इन मन्त्रों में तो माता-पिता की सेवा तथा नियमपूर्वक जीवन व्यतीत करने का वर्णन

है। हम इन दोनों मन्त्रों का अर्थ देते हैं—

ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य मूलबर्हणात् परि पाह्येनम्।
अत्येनं नेषद् दुरितानि विश्वा दीर्घायुत्वाय शतशारदाय॥ —अथर्व० ६।११०।२

भाषार्थ—ज्येष्ठ अर्थात् अतिवृद्ध वा उत्तम ब्रह्म को प्राप्त करानेवाली, क्रिया में प्रसिद्ध, अन्धकार से छुड़ानेवाले सूर्य और चन्द्रमा के नियम के मूलछेदन से इस जीव को सब प्रकार बचा। सब विघ्नों को उलाँघकर सौ वर्षवाले दीर्घ जीवन के लिए इसको आप ले-चलें॥ २॥

भावार्थ—मनुष्य श्रेष्ठ जनों के अनुकरण से पुरुषार्थ के साथ विघ्नों को हटाकर सूर्य और चन्द्रमा के समान सदा नियम में चलकर यश प्राप्त करे॥ २॥

व्याघ्रेऽह्न्यजनिष्ट वीरो नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः।
स मा वधीत् पितरं वर्धमानो मा मातरं प्र मिनीज्जनित्रीम्॥

—अथर्व० ६।११०।३

भाषार्थ—यह वीर पुरुष नक्षत्र के समान गति, उपाय उत्पन्न करनेवाला, महावीर होता हुआ व्याघ्र के समान बलवान्, दिन में माता-पिता के बल के समय उत्पन्न हुआ है। वह बढ़ता हुआ पिता को न मारे और जन्म देनेवाली माता को कभी न सतावे॥ ३॥

भावार्थ—शूरवीर पुरुष सुरक्षित, बलवान् माता-पिता से जन्म पाकर उनको कष्ट से बचाकर सदा सुखी रखकर अपना सौभाग्य बढ़ावे॥ ३॥

न तो इन मन्त्रों में 'मूल नक्षत्र में पैदा हुए को विघ्न आता है' ऐसा वर्णन है, न उसकी शान्ति के उपाय का ज़िक्र है।

(२२६) प्रश्न—'मा ज्येष्ठं वधीत्' इत्यादि [अथर्व० ६।११२।१] इस मन्त्र में भी मूलनक्षत्र में पैदा हुए बालक के कल्याण की प्रार्थना है। —पृ० २५३, पं० १६

उत्तर—इस मन्त्र में न तो मूलनक्षत्र में पैदा हुए बालक के विघ्न का वर्णन है और न ही उसके कल्याण की प्रार्थना है, अपितु इस मन्त्र में ज्येष्ठ पुरुष की रोगों से रक्षा का वर्णन है। हम इस मन्त्र का ठीक-ठीक अर्थ नीचे देते हैं—

मा ज्येष्ठं वधीदयमग्न एषां मूलबर्हणात् परि पाह्येनम्।
स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन् तुभ्यं देवा अनु जानन्तु विश्वे॥

—अथर्व० ६।११२।१

भाषार्थ—हे विद्वान् पुरुष! यह रोग इनके बीच विद्या और वय में बहुत बड़े पुरुष को न मारे। इस पुरुष को मूलछेद से सर्वथा बचा। सो तू ज्ञानी होकर जकड़नेवाले गठिया आदि रोग के फन्दों को खोल दे। सब विद्वान् लोग तुझे अनुमति देवें॥ १॥

भावार्थ-मनुष्य विद्वानों की सम्मति से श्रेष्ठ पुरुष की रक्षा का सदा उपाय करें॥ १॥

बतलाइए! इससे फलित-ज्योतिष कैसे सिद्ध हो सकता है? वास्तव में किसी भी काल के साथ मनुष्य के अच्छे-बुरे कर्मों का कोई सम्बन्ध नहीं है। कोई किसी समय भी पैदा हो वह अपने कर्मों का फल भोगता है, अतः किसी भी काल को मनुष्य के कर्मों से जोड़ना सिद्धान्त के विरुद्ध है। देखिए, महाभारत में स्पष्ट लिखा है कि—

यदि कालः प्रमाणं ते न वैरं कस्यचिद् भवेत्। कस्मात्त्वपचित्तिं यान्ति बान्धवा बान्धवैर्हतैः॥ ५४॥
कस्माद्देवासुराः पूर्वमन्योऽन्यमभिजघ्निरे। यदि कालेन निर्याणं सुखं दुःखं भवाभवौ॥ ५५॥
भिषजो भेषजं कर्तुं कस्मादिच्छन्ति रोगिनः। यदि कालेन पच्यन्ते भेषजैः किं प्रयोजनम्॥ ५६॥

प्रलापः सुमहान् कस्मात् क्रियते शोकमूर्च्छितैः। यदि कालः प्रमाणं ते कस्माद् धर्मोऽस्ति कर्तृषु॥ ५७॥
—महा० शान्ति० अ० १३९

कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणम्। इति ते संशयो मा भूद्राजा कालस्य कारणम्॥ ७९॥
—महा० शान्ति० अ० ६९

भाषार्थ—यदि तुझे काल प्रमाण है तो किसी से वैर नहीं होना चाहिए। फिर सम्बन्धी-सम्बन्धियों से मारे हुए क्यों क्षय को प्राप्त होते हैं॥ ५४॥ पूर्वकाल में देव और असुरों ने एक-दूसरे को क्यों मारा? यदि सुख-दुःख, जन्म-मरण काल से ही होते हैं॥ ५५॥ वैद्य रोग की दवाई करने की क्यों इच्छा करते हैं? यदि काल से ही सब पकाये जाते हैं तो दवाई से क्या प्रयोजन?॥ ५६॥ शोक से मूर्च्छित हुए लोग महान् रोना-पीटना क्यों करते हैं? यदि तुझे काल ही प्रमाण है तो कर्त्ता में धर्म की स्थिति क्यों है?॥ ५७॥ काल राजा का कारण है या राजा काल का कारण है, तुम्हें यह सन्देह नहीं होना चाहिए; राजा ही काल का कारण है॥ ७९॥

इससे सिद्ध है कि हमारे कर्मों में काल कारण नहीं है अपितु काल का सम्बन्ध उत्पद्यमान चाँद-सूर्य ग्रहों से है। इससे सिद्ध है कि नक्षत्र हमारे अच्छे-बुरे कर्मों में कारण नहीं हैं, प्रत्युत हम कर्म करने में स्वतन्त्र हैं।

(२२७) प्रश्न—वेद ने नक्षत्र और ग्रहों से कल्याण की प्रार्थना करनी लिखी है। साथ ही साथ छह नक्षत्र मूल के हैं। उनमें पैदा हुए बालक की कुशलता के लिए मूलशान्ति करनी लिखी है। निःसन्देह वेदों ने नक्षत्र-ग्रहों से कल्याण चाहकर मूलशान्ति द्वारा अरिष्टागमन की निवृत्ति कही है। स्वामी दयानन्दजी ने एक भी प्रमाण न देकर वेद के लेख पर चौका लगा दिया।
—पृ० ५५५, पं० १०

उत्तर—**'द्वा सुपर्णा'** से सिद्ध है कि ईश्वर, जीव, प्रकृति नित्य हैं। इनमें से जीव और परमात्मा चेतन तथा प्रकृति जड़ है। जीव स्वतन्त्रता से कर्म करता और परमात्मा कर्मों का फलदाता है। परमात्मा ने प्रकृति से जीवों के कर्म-भोगार्थ **'सूर्याचन्द्रमसौ धाता'** इस सृष्टि को उसी प्रकार से बनाया जैसे पहले बनाया करता था। परमात्मा ने दो प्रकार का जगत् बनाया। प्राणी जैसे मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्षादि; अप्राणी, आग, पीना, मिट्टी, हवा, आकाश, चाँद, सूर्य्य, सितारे आदि। इस जगत् में परमात्मा द्रष्टा, फलदाता, जीव भोक्ता और शेष जगत् भोग्यपदार्थ है। मनुष्य पृथिवी पर रहता, अन्न पैदा करता, अग्नि से प्रकाश और गरमी ग्रहण करता, जल से प्यास बुझाता, हवा से साँस लेता, आकाश में रहता, चाँद, सूर्य, सितारों से अपनी इच्छानुसार गरमी, सरदी, प्रकाश, बरसात तथा जलवायु की शुद्धता से स्वास्थ्य ग्रहण करता, ओषधियों से भूख दूर करता और भी धातु, पत्थर, लकड़ी आदि से आवश्यकतानुसार उपकार लेता है। इसके दुःख-सुख भी तीन प्रकार के हैं। **आध्यात्मिक**—जो अपनी आत्मा से ही मानसिक दुःख-सुख मिलते हैं। **आधिभौतिक**—जो दूसरे प्राणियों से मिलते हैं। **आधिदैविक**—जो उपर्युक्त पृथिवी, सूर्य, सितारों आदि से सरदी, गरमी, प्रकाश, वर्षा, आँधी, भूचाल आदि द्वारा मिलते हैं।

आत्मा स्वतन्त्रता से स्वयं कर्म करता है, परमात्मा कर्मानुसार फल उपर्युक्त तीन प्रकार से दुःखों-सुखों द्वारा देता है। अब यदि मनुष्य परमात्मा से प्रार्थना करता है कि पृथिवी, जल, नक्षत्र, ओषधि मेरा कल्याण करें तो भी, और यदि इन्हीं पदार्थों से कल्याण की प्रार्थना करता है तो भी उसका यही अभिप्राय या इच्छा होती है कि इन पदार्थों के साथ मेरा जितना सम्बन्ध या उपयोगिता है उस बारे में मुझे इनसे सुख मिले, दुःख न मिले। इस प्रकार की प्रार्थना से वस्तुओं की वास्तविकता में फ़र्क नहीं आता, चेतन चेतन ही रहते हैं, जड़ जड़ ही रहते हैं, अतः नक्षत्र और ग्रह हमारे भोग्य पदार्थ हैं और जड़ हैं, उनसे या परमात्मा से कल्याण की प्रार्थना का यही

अभिप्राय या हमारी इच्छा है कि इनके साथ हमारा जितना सम्बन्ध है उतने सम्बन्ध में इनसे हमको सुख मिले, दु:ख न मिले। इससे ये पदार्थ चेतन या हमारे कर्मों के फलदाता नहीं बन जाते और न वे प्रसन्न या नाराज़ होकर हमें स्वयं सुख या दु:ख दे सकते हैं, अपितु परमात्मा हमारे कर्मों के अनुसार उन द्वारा हमें आधिदैविक सुख या दु:ख देते हैं, अत: उनको नाराज़ कल्पना करके उनकी शान्ति के लिए कोई क्रिया करनी सर्वथा निर्मूल और व्यर्थ है।

अब रही काल की बात, इसका सम्बन्ध नित्य पदार्थों से नहीं, अनित्य पदार्थों से है। सृष्टि के पैदा होने के कारण सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ से इसका सम्बन्ध है। कौन वस्तु कब हुई, कब कैसी अवस्था में थी, है, और होगी इत्यादि। काल का पदार्थों के साथ सम्बन्ध है। काल जड़ वस्तु है। वह भी नक्षत्रों की भाँति ही हमारे अच्छे या बुरे कर्मों में कारण नहीं है। कर्म करने में हम पूर्ण स्वतन्त्र हैं। हम अच्छे कर्म करें या बुरे, इसमें नक्षत्रों की भाँति ही काल का कोई हस्ताक्षेप नहीं है। काल तीन हैं भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान। परमात्मा में भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान का हमारी अपेक्षा से ही व्यवहार होता है। परमात्मा भूतकाल की समस्त घटनाओं को सम्पूर्ण जानता है। जीव होश आने के पीछे अपनी और अपने से सम्बन्ध रखनेवाले प्राणियों की भूतकाल की घटनाओं को जानता है या किन्हीं कार्यों को देखकर उनके कारणों का अनुमान करते हुए दूसरों के भूतकाल को भी किसी हद तक जान सकता है। पिछले जन्म के भूत को योगी अपने विषय में योगाभ्यास द्वारा जान सकता है, ज्योतिष से नहीं, क्योंकि उसकी आत्मा में कार्यसंस्कार विद्यमान हैं। दूसरों के पिछले जन्म के भूतकाल को योगी भी नहीं जान सकता, क्योंकि उनके संस्कार उनकी आत्मा में हैं, योगी की आत्मा में नहीं हैं। वर्त्तमानकाल को सर्वव्यापक होने से परमात्मा सबको सम्पूर्णता से जानता है। जीव अपने वर्त्तमान को तथा समीपस्थ दूसरों के वर्त्तमान को भी जान लेता है और योगी जिस स्थान का भी ध्यान करे उस स्थान के वर्त्तमान को योगावस्था में जान सकता है, ज्योतिष से नहीं।

अब रह गई भविष्य की बात, सो परमात्मा सृष्टि-सम्बन्धी बातों को तथा जीवों के कर्मफलों के सम्बन्ध में किस कर्म का क्या फल किस काल में देना है, इसको सम्पूर्णतया जानता है। जीवात्मा भी जो वस्तु नियम के अनुसार निश्चित हो, उसके भविष्यत्काल को जान लेता है। जैसे तिथियों और ऋतुओं के परिवर्तन का हिसाब, सूर्य-चाँद का ग्रहण इत्यादि, क्योंकि ये सब-कुछ चाँद, सूर्य, ज़मीन, सितारों के नियमित भ्रमण पर निर्भर हैं, जो नियम के अनुसार निश्चित हैं जिसमें एक सैकिण्ड का भी फ़र्क नहीं पड़ सकता। कारण को देखकर भविष्यत् के कार्य को भी जान सकता है, जैसे विवाह को देखकर सन्तान होने के भविष्य को, बादलों को देखकर वर्षा के भविष्य को, गरमी-सरदी आदि की जाँच से आनेवाली आँधी या वर्षा को इत्यादि-इत्यादि और भविष्य के विषय में ऐसा अनुमानिक ज्ञान ९० प्रतिशत ठीक निकलना सम्भव है, किन्तु मनुष्य से भविष्य में किये जानेवाले कर्मों के बारे में 'आज से आठवें दिन बारह बजकर एक मिनट गुज़रने पर मैं क्या करूँगा'—इस बारे में मनुष्य की तो हस्ती ही क्या है, इसको तो ईश्वर भी नहीं जानता। कारण यह कि जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है; जिस काम के करने का अभी मैंने संकल्प भी नहीं किया उसके बारे में ईश्वर भी यही जानता है कि मेरे दिल में संकल्प नहीं है। जब मेरे दिल में संकल्प पैदा होगा तो संकल्प के बारे में, जब काम करूँगा तो काम के बारे में ईश्वर को तुरन्त ज्ञान हो जाएगा। ईश्वर की सर्वज्ञता में इससे दोष नहीं आता, क्योंकि सर्वज्ञ के अर्थ हैं जो सब-कुछ जानता हो। सब-कुछ क्या, जो दुनिया में विद्यमान है। जो चीज़ दुनिया में अविद्यमान है, उसके विषय में ईश्वर भी यही जानता है कि वह अविद्यमान है। 'संकल्प से संकल्प का और कर्म से कर्म का ईश्वर को ज्ञान होने पर ईश्वर के ज्ञान में वृद्धि मानने से ईश्वर अनित्य हो जावेगा,' यह दोष नहीं आता, क्योंकि ईश्वर सैद्धान्तिक रूप से इस बात को

जानता है कि जीव शरीर को धारण करके दुनिया में क्या कुछ कर सकता है। उसमें से जीव जो करता है उसका फल ईश्वर दे देता है, इससे ईश्वर के ज्ञान में वृद्धि क्या हुई?

जो आदमी सौ तक गिनना जानता है उसके सामने कोई ५० या ७० अथवा ९० तक गिने तो उसके ज्ञान में वृद्धि क्या हुई, वह तो पहले से ही सौ गिनना जानता है। इसी बात को दृष्टि में रखकर ऋषि दयानन्दजी ने लिखा है कि 'जो ईश्वर जानता है वह जीव करता है, जो जीव करता है वह ईश्वर जानता है' इसमें पहले हिस्से के यही अर्थ हैं कि ईश्वर जिन बातों को जानता है कि जीव क्या कुछ कर सकता है, उन्हीं में से जीव करता है। इससे सिद्ध हुआ कि ईश्वर जीव से भविष्यत् में किये जानेवाले कर्मों को नहीं जानता। यदि एक मिनट के लिए हम यह मान लें कि वह जानता है कि आज से आठवें दिन बारह बजकर एक मिनट व्यतीत होने पर मैं चोरी करूँगा तो बतलाओ कि मैं उस चोरी करने के संकल्प को तब्दील कर सकता हूँ या नहीं? यदि कहो तब्दील कर सकता हूँ तो ईश्वर का ज्ञान ग़लत होने से वह ईश्वर कहाने के क़ाबिल न रहा। यदि कहो तब्दील नहीं कर सकता तो मेरे काम ईश्वर के ज्ञान में नियत हो गये और मुझे मजबूरन करने पड़ेंगे, फिर उसके फल का ज़ुम्मेवार मैं क्यों? उसका फल उसी को भोगना चाहिए जिसने कोई काम जबरन करवाया। इससे सिद्ध हो गया कि मनुष्य के भविष्य में किये जानेवाले कर्मों को जब ईश्वर भी नहीं जानता तो मनुष्य की तो हस्ती ही क्या है! अतः जन्मपत्री तथा सम्पूर्ण भविष्यवाणियाँ सिद्धान्तरूप में ग़लत हैं। उनमें से यदि कोई बात सच निकल जाती है तो वह 'घुनाक्षरन्याय' से सत्य हो जाती है, पाण्डित्य से नहीं। हम आपको आपके ही घर से एक प्रमाण देते हैं कि जब राजा मुञ्ज ने ज्योतिषी के कहने पर अपने मन्त्री वत्सराज को भोज के क़त्ल के लिए कहा तो वत्सराज ने जो उत्तर दिया, वह यह है—

त्रैलोक्यनाथो रामोऽस्ति वसिष्ठो ब्रह्मपुत्रकः। तेन राज्याभिषेके तु मुहूर्तः कथितोऽभवत्॥ २०॥
तन्मुहूर्तेन रामोऽपि वनं नीतोऽवनिं विना। सीतापहारोऽप्यभवद्विरंचिवचनं वृथा॥ २१॥
जातः कोऽयं नृपश्रेष्ठ किंचिज्ज्ञ उदरम्भरिः। यदुक्त्या मन्मथाकारं कुमारं हन्तुमिच्छसि॥ २२॥

—भोजप्रबन्ध, वल्लालपण्डितविरचित

भाषार्थ—श्री रामचन्द्रजी त्रिलोकी के नाथ थे और वसिष्ठ ब्रह्मा का पुत्र था। उस त्रिलोकीनाथ के गद्दी पर बैठने का मुहूर्त ब्रह्मा के पुत्र वसिष्ठ ने निकाला॥ २०॥ उसी महूर्त में श्रीराम पृथिवी के राज्य को छोड़कर वन को चले गये, सीता भी चुराई गई वसिष्ठ का कहना व्यर्थ ही गया॥ २१॥ तो यह थोड़ा-सा जाननेवाला पेटू क्या है, जिसके कहने पर आप कामदेव के समान-सुन्दर कुमार को मारने को तैयार हुए हो॥ २२॥

जो ज्योतिषी दो-दो पैसे पर जूती खोई जाने पर पचास गप्प मारते हैं, वे भगोड़ों को बताकर लाखों रुपया क्यों नहीं प्राप्त करते? खुफ़िया पुलिस (सी० आई० डी०) के स्थान में ज्योतिष से माल और मुल्ज़िम बतलाकर क्यों लखपति नहीं बनते? इनकी लड़कियाँ क्यों विधवा हो जाती हैं? इनके लड़के क्यों मरते हैं? जिन्स [वस्तुओं] के मन्दे-तेज़ को जानकर व्यापार से करोड़पति क्यों नहीं बनते? पता लगा कि ये बातें जनता को धोखे से ठगकर अपने खाने-कमाने की हैं, वास्तव में उपयोग में आने की नहीं हैं। हमारी पुष्टि में आपके यहाँ साफ़ लिखा है—

अश्वप्लुतं वासवगर्जितं च, स्त्रीणां च चित्तं पुरुषस्य भाग्यम्।
अवर्षणं चाप्यतिवर्षणं च, देवो न जानाति कुतो मनुष्यः॥ १४३॥ —भोजप्रबन्ध

भाषार्थ—घोड़े का कूदना, इन्द्र का गर्जना, स्त्री का हृदय, मनुष्य का भाग्य, न बरसना तथा अति बरसना इनको देवता भी नहीं जानते, फिर मनुष्य की तो हस्ती ही क्या है॥ १४३॥

अतः सूर्य, चाँद आदि ग्रहों को चेतन माननेवालों की बुद्धि चेतनतारहित और भविष्यवाणी

से जनता को ठगकर खानेवालों की सर्वथा मक्कारी है। है कोई माई का लाल सनातनधर्म में पैदा हुआ जो ग्रहों को चेतन और भविष्यवाणी को सत्य सिद्ध करके फलित-ज्योतिष को मृत्यु-मुख से निकाल सके?

स्वामी दयानन्द और फलित-ज्योतिष

(२२७क) प्रश्न—गर्भाधान-संस्कार में स्वामी दयानन्दजी लिखते हैं कि 'उन ऋतुदान के सोलह दिनों में पौर्णमासी, अमावास्या, चतुर्दशी वा अष्टमी आवे उसको छोड़ देवें।' इन तिथियों का छोड़ना ज्योतिष के जातक और मुहूर्तग्रन्थों में लिखा है। गर्भाधान में एकादशी आदि तिथियों का फल नेष्ट लिखा है, इस कारण स्वामी दयानन्दजी ने इनका त्याग किया है। इससे सिद्ध है कि स्वामीजी फलित-ज्योतिष को मानते थे। —पृ० २४, पं० ३०

उत्तर—स्वामीजी के इस लेख का आधार कोई फलित-ज्योतिषग्रन्थ नहीं है अपितु स्वामीजी ने यह समस्त विधि मनुस्मृति अध्याय तीन श्लोक ४५ से ५० तक के आधार पर लिखी है। स्वामीजी ने तथा मनु ने जिस स्वास्थ्य की दृष्टि से पहली चार रात्रियाँ मैथुन में वर्जित की हैं उसी दृष्टि से ग्यारहवीं तथा तेरहवीं रात्रि मना की है। यहाँ एकादशी तथा त्रयोदशी रात्रि हैं, तिथियाँ नहीं हैं। उसी बात को दृष्टि में रखकर पर्व अर्थात् पूर्णिमा, अमावास्या, चतुर्दशी तथा अष्टमी को छोड़ा है, क्योंकि ऋतु का समुद्र के समान चन्द्रमा से सम्बन्ध है। इन रात्रियों में ऋतु कुपित होता है, अतः वैद्यक की दृष्टि से इन रात्रियों में समागम से नपुंसकता, सोज़ाक, आतशक आदि रोगों के हो जाने का अन्देशा है। इसी कारण मना किया है। फिर युग्म रात्रि में पुत्र, आयुग्म में कन्या; पुरुष-वीर्य-आधिक्य से पुत्र, स्त्री-रजाधिक्य से कन्या तथा समान से नपुंसक वा वन्ध्या पैदा होना इत्यादि सारा प्रकरण ही ऋतु के उतार-चढ़ावों तथा वैद्यक की दृष्टि से लिखा गया है। इसमें फलित-ज्योतिष की गन्ध भी नहीं है।

(२२७ख) प्रश्न—तिथि, तिथि-देवता, नक्षत्र, नक्षत्र-देवताओं की नामकरण में आहुतियाँ देना—इसको गोभिलीय गृह्यसूत्र शुभ फलदायक मानता है। इस कारण स्वामीजी ने संस्कारविधि में आहुतिचतुष्टय का ग्रहण किया है, फिर कौन कहता है कि स्वामीजी फलित-ज्योतिष को नहीं मानते? —पृ० २४

उत्तर—गोभिलीय गृह्यसूत्र में इन आहुतियों को कहीं भी ज्योतिष की दृष्टि से शुभ फलदायक नहीं लिखा। वैसे आहुतियाँ जितनी दी जाएँ जल-वायु की शुद्धि का हेतु होने से उतनी ही शुभ फलदायक हैं। रहा तिथि और तिथिदेवता, सो हम लिख चुके हैं कि ये तिथि तथा नक्षत्रों के सांकेतिक दूसरे नाम हैं और तिथि तथा नक्षत्रों को द्योतित, अर्थात् प्रकाशित करने के कारण देवता कहाते हैं। इनका विस्तृत वर्णन देखो नं० १९६।

अतः स्वामी दयानन्दजी के ग्रन्थों से फलित-ज्योतिष की सिद्धि का प्रयत्न वक्ता के अभिप्राय के विरुद्ध वाक्छलमात्र है।

तीर्थ

(२२८) प्रश्न—**'नमः पार्याय चावार्याय'** [यजुः० १६।४२] इस मन्त्र में तीर्थों का माहात्म्य वर्णन किया गया है। —पृ० २५६, पं० २५

उत्तर—इस मन्त्र में पौराणिक तीर्थों का चिह्न भी नहीं है, क्योंकि पौराणिक लोग जलों और स्थलों में स्नान, भ्रमण, दर्शन, मरण आदि से मुक्ति मानते हैं। जैसे—

स्नान से— **पूर्वे वयसि कर्माणि कृत्वा पापानि ये नराः।**
पश्चाद् गङ्गां निषेवन्ते तेऽपि यान्त्युत्तमां गतिम्॥ ३०॥ —महा० अनु० अ० २६

दर्शन से— **भवन्ति निर्विषाः सर्पा यथा तार्क्ष्यस्य दर्शनात् ।**
गङ्गाया दर्शनात्तद्वत् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४४॥ —महा० अनु० अ० २६

मरण से— **इह ये पुरुषाः क्षेत्रे मरिष्यन्ति शतक्रतो ।**
ते गमिष्यन्ति सुकृतान् लोकान् पापविवर्जितान् ॥७॥ —म० शां० अ० ५३

भ्रमण से— **पांसवोऽपि कुरुक्षेत्रे वायुना समुदीरिताः ।**
अपि दुष्कृतकर्माणं नयन्ति परमां गतिम् ॥३॥ —महा० वन० अ० ८३

नाम लेने से— **गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ।**
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥७१॥ —ब्र० प्रकृति खं० अ०१०

भाषार्थ—जो मनुष्य अपनी पूर्व आयु में पापकर्म करके पीछे से गङ्गा का सेवन करते हैं वे भी परमगति को प्राप्त होंगे ॥३०॥ जैसे गरुड़ के देखने से साँप विषरहित हो जाते हैं वैसे ही गङ्गा के देखते ही मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥४४॥ हे इन्द्र! जो लोग इस क्षेत्र में मरेंगे वे पापों से छूटकर पुण्यलोकों को प्राप्त होंगे ॥६॥ हवा से उड़े हुए रेणु भी कुरुक्षेत्र में जिस किसी पर पड़ेंगे वे अति पापी को भी परमगति प्राप्त करावेंगे ॥३॥ यदि कोई आदमी चार सौ कोस से 'गङ्गा-गङ्गा' ऐसा कहेगा तो वह सब पापों से छूटकर विष्णुलोक को प्राप्त होगा ॥७१॥

पौराणिक सिद्धान्तानुसार इसका नाम तीर्थ है। हमारा यह दावा है कि मनुष्य की मुक्ति श्रेष्ठ कर्मों से होती है, जल-स्थल आदि में स्नान, दर्शन, भ्रमण, मरण आदि से नहीं हो सकती। आपने जो मन्त्र पेश किया है उससे पौराणिक तीर्थों की पुष्टि नहीं होती। हम मन्त्र का ठीक-ठीक अर्थ नीचे कर देते हैं—

नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च
कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च॥ —यजुः० १६।४२

भाषार्थ—जो मनुष्य दुःखों से पार हुए और इधर के भाग में आये हुए का भी सत्कार तथा उस तट से नौकादि द्वारा इस पार पहुँचे या पहुँचाने और इस पार से उस पार पहुँचने वा पहुँचानेवाले का सत्कार करें, वेदविद्या के पढ़ानेवालों और समुद्र तथा नदी आदि के तटों पर रहनेवाले को भी अन्न देवें, तृण आदि कार्यों में साधु और फेन-बुद्बुदादि के कार्यों में प्रवीण पुरुष को भी अन्न आदि देवें, वे कल्याण को प्राप्त होवें ॥४२॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि नौकादि यानों में शिक्षित मल्लाह आदि को रख, समुद्रादि के इस पार उस पार, जा-आके देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तरों में व्यवहार से धन की उन्नति करके अपना अभीष्ट सिद्ध करें ॥४२॥

बतलाइए, इस मन्त्र में जलस्थल में स्नान, भ्रमण, दर्शन, मरण आदि से मुक्ति बतानेवाले कौन-कौन-से पद हैं? यदि नहीं तो फिर इन पौराणिक भ्रमजालों को वेदों के सिर मढ़ना बुद्धिमत्ता नहीं है।

(२२९) प्रश्न—'आपो भूयिष्ठा' इत्यादि [ऋ० १।१६१।९] इस मन्त्र में वर्णन है कि जितेन्द्रिय, सत्यवादी को तीर्थ फल देते हैं। —पृ० २५६, पं० ९

उत्तर—प्रतीत यह होता है कि अब पुराणप्रतिपादित तीर्थों पर आपका भी विश्वास नहीं रहा। वरना आप जल-स्थल में स्नान, दर्शन, मरण आदि से पापनाश तथा मुक्ति की पुष्टि में कोई प्रमाण पेश करते, किन्तु आप भी विवश हैं। वेद पौराणिक तीर्थों की पुष्टि करते ही नहीं, क्योंकि वेद ज्ञान और कर्म से मोक्ष मानते हैं, जैसेकि—

विद्यां चाविद्यां च यस्तद् वेदोभयꣳसह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥ —यजु:० ४०।१४

भाषार्थ—जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जानता है, वह अविद्या अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को तरके, विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है॥१४॥

इससे सिद्ध है कि पुराणों का जल-स्थल को तीर्थ मान, मुक्ति का साधन बताना वेद के विरुद्ध होने से मिथ्या ही है। रही आपके पेश किये मन्त्र की बात। न तो वेदमन्त्र में तीर्थों का प्रतिपादन है और न ही इस मन्त्र का यह विषय है। इस मन्त्र का देवता अर्थात् प्रतिपाद्यविषय '**ऋभवः**' अर्थात् 'विद्वान् लोग' है। इस मन्त्र का यथार्थ अर्थ इस प्रकार है—

आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवीदग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत्।
वर्धयन्ती बहुभ्यः प्रैको अब्रवीदृता वदन्तश्चमसाँ अपिंशत॥

—ऋ० १।१६१।९

भाषार्थ—एक तो कहता है कि जल बहुत हैं। दूसरा कहता है कि अग्नि बहुत हैं। एक उत्तमता से कहता है कि पृथिवी बड़ी है। इस प्रकार से सत्य बातों को कहते हुए सज्जन बादलों की भाँति पदार्थों को भिन्न करें।

भावार्थ—इस संसार में स्थूल पदार्थों के बीच कोई जल अधिक, कोई अग्नि अधिक और कोई भूमि को बड़ी बतलाते हैं, परन्तु स्थूल पदार्थों में भूमि ही अधिक है। इस प्रकार सत्य ज्ञान से मेघों के अंशों का जो ज्ञान, उसके समान सब पदार्थों को अलग-अलग कर सिद्धान्तों की सब परीक्षा करें। इस काम के बिना ठीक प्रकार से पदार्थविद्या को नहीं जान सकते॥९॥

बतलाइए, इस मन्त्र में वे कौन-से पद हैं, जो पौराणिक तीर्थों का वर्णन करते हों? आपने लिखा कि तीर्थ जितेन्द्रिय, सत्यवादी को फल देते हैं। श्रीमान्‌जी, जो सत्यवादी और जितेन्द्रिय होगा उसको पौराणिक तीर्थों की आवश्यकता ही क्या है? पौराणिक तीर्थों की तो उनको आवश्यकता है, जिन्हें कुकर्म करते हुए मोक्ष प्राप्त करना हो और सहज ही पापों का नाश करना हो। जैसे—

अग्नौ प्रास्तं प्रधूयेत यथा तूलं द्विजोत्तम ।
तथा गङ्गावगाढस्य सर्वपापं प्रधूयते ॥४२॥ —महा० अनु० अ० २६
यत्किंचिद् दुष्कृतं कर्म स्त्रिया वा पुरुषस्य वा॥१९८॥
स्नातमात्रस्य तत्सर्वं नश्यते नात्र संशयः ॥१९९॥ —म० वन० अ० ८१
यद्यकार्यं शतं कृत्वा कृतं गङ्गाभिषेचनम् ।
सर्वं तत्तस्य गङ्गापो दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥९०॥ —महा० वन० अ० ८५
ततो गच्छेत राजेन्द्र कुरुक्षेत्रमभिष्टुतम् ।
पापेभ्यो यत्र मुच्यन्ते दर्शनात् सर्वजन्तवः ॥१॥ —महा० वन० अ० ८३
सप्तावरान् सप्त परान् पितॄंस्तेभ्यश्च ये परे। पुमांस्तारयते गङ्गां वीक्ष्य स्पृष्ट्वावगाह्य च॥६२॥
यावदस्थि मनुष्यस्य गङ्गातोयेषु तिष्ठति। तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥३२॥

—महा० अनु० अ० २६

भाषार्थ—हे उत्तम द्विज! जैसे रूई अग्नि को प्राप्त होकर जल जाती है, वैसे ही गङ्गा में स्नान करनेवाले के पाप नाश हो जाते हैं॥४२॥ स्त्री या पुरुष का चाहे जो भी बुरा कर्म हो॥१९८॥ वह स्नानमात्र से ही नष्ट हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥१९९॥ यदि सैकड़ों पाप करके भी गङ्गा में स्नान किया है तो उस पाप को गङ्गा का पानी ऐसे ही नाश कर देता है जैसे

ईंधन को अग्नि॥ ९०॥ हे राजेन्द्र! फिर स्तुति के योग्य कुरुक्षेत्र में जावे जहाँ पर सारे जीव दर्शन से ही पापों से छूट जाते हैं॥ १॥ सात वरे के तथा सात परे के और उनसे भी जो आगे के पितर हैं उन सबको मनुष्य गङ्गा के स्पर्श, दर्शन तथा स्नान से तार देता है॥ ६२॥ मनुष्य की हड्डियाँ जबतक गङ्गा के पानी में रहती हैं तबतक सहस्रों वर्ष स्वर्गलोग में रहता है॥ ३२॥

यह है पौराणिक तीर्थों का प्रयोजन! इसको वेदानुकूल सिद्ध करने की कृपा करें।

(२३०) प्रश्न—'तीर्थैस्तरन्ति' इत्यादि [अथर्व० १८।४।७] में लिखा है कि बड़ी आपत्ति को तीर्थों से तर जाते हैं, अर्थात् बड़े-बड़े भयंकर पाप तीर्थों से क्षय हो जाते हैं।

—पृ० २५६, पं० २०

उत्तर—हाँ, अबके आपने पौराणिक सिद्धान्त की बात कही कि बड़े-बड़े पाप तीर्थों से क्षय हो जाते हैं, किन्तु उपर्युक्त वेदमन्त्र में इस भाव का प्रकट करनेवाला कोई भी पद नहीं है, अपितु इस वेदमन्त्र में यह प्रतिपादन किया गया है कि तरने के साधनों—वेदशास्त्रों से लोग दुःखों से छुटकारा पा जाते हैं। देखिए, मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है—

तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति।
अत्रादधुर्यजमानाय लोकं दिशो भूतानि यदकल्पयन्त॥ —अथर्व० १८।४।७

भाषार्थ—तरने के साधनों—शास्त्रों वा घाटों आदि द्वारा मनुष्य बहुत गतियोंवाली बड़ी-बड़ी विपत्तियों वा नदियों को इस प्रकार से पार करते हैं जिस प्रकार से यज्ञ करनेवाले सुकर्मी लोग चलते हैं, ऐसा निश्चय है। यहाँ संसार में यजमान के लिए स्थान उन पुण्यात्माओं ने दिया है जबकि दिशाओं को सत्तावाले प्राणियों ने समर्थ बनाया है॥ ७॥

भावार्थ—मनुष्य विद्वान्, धर्मात्माओं के वेदविहित मार्ग पर चलकर विपत्तियाँ से पार होवें, धर्मात्मा लोग ही संसार में मान्य होते हैं, क्योंकि वे पुरुषार्थी जीव सब दिशाओं को उपकारी बनाते हैं॥ ७॥

इस मन्त्र में कहीं भी पाप दूर होने की बात नहीं लिखी और किये हुए पाप कभी दूर नहीं होते, अपितु उनका फल अवश्य ही भुगतना पड़ता है। देखिए, वेद क्या कहता है—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥ —यजुः० ४०।३

भाषार्थ—जो कोई भी लोग आत्मा के विरुद्ध पापाचरण करनेवाले हैं, वे जीते हुए भी दुःख पाते हैं और मरने पर भी वे ऐसे जन्म-जन्मान्तरों को प्राप्त होते हैं जो ज्ञान से रहित, अन्धकार से युक्त, दुःखमय लोक हैं॥ ३॥

यह मन्त्र स्पष्टरूप से वर्णन करता है कि किये हुए पापकर्मों का फल अवश्य मिलता है, वह टल नहीं सकता। महाभारत में लिखा है कि—

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।
एवं पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति॥ २२॥
अचोद्यमानानि यथा पुष्पाणि च फलानि च।
स्वकालं नाति वर्तन्ते तथा कर्म पुराकृतम्॥ २३॥ —महा० अनु० अ० ७

नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥ १७॥

—ब्रह्मवैवर्त० प्रकृति० अ० ३७

भाषार्थ—जैसे हज़ारों गौवों में से बछड़ा अपनी माँ को ढूँढ लेता है, ऐसे ही पूर्व किया हुआ कर्म कर्त्ता को प्राप्त होता है॥ २२॥ बिना प्रेरणा के ही जैसे फूल और फल अपने समय

का उल्लंघन नहीं करते, वैसे ही पूर्व में किया हुआ कर्म समय का उल्लंघन नहीं करता॥ २३॥ सौ करोड़ कल्पों तक भी किया हुआ कर्म बिना भोगे क्षय नहीं होता। किया हुआ शुभ तथा अशुभ कर्म अवश्य ही भोगना पड़ता है॥ १७॥

इससे यह तो सिद्ध हो गया कि किया हुआ पाप क्षय नहीं होता, अपितु भोगना पड़ता है। अब देखना यह है कि वे कौन-से तीर्थ हैं कि जिनसे मनुष्य आपत्तियों तथा दुःखों को तर सकता है। क्या वे जल-स्थलरूप तीर्थ हैं या विद्यालय, वेद, शास्त्र, सत्सङ्ग आदि तीर्थ हैं। सो इस विषय में प्रमाण उपस्थित हैं—

मन तीर्थ— **मनसा च प्रदीप्तेन ब्रह्मज्ञानजलेन च।**
स्नाति यो मानसे तीर्थे तत् स्नानं तत्त्वदर्शिनः॥ १३॥

—महा० अनु० अ० १०८

सत्संग—**व्रजे वाप्यथवारण्ये यत्र सन्ति बहुश्रुताः।**
तत्तन्नगरमित्याहुः पार्थ तीर्थं च तद्भवेत्॥ ९२॥ —महा० वन० अ० २००

आत्मा—**आत्मा नदी भारत पुण्यतीर्था सत्योदका धृतिकूला दयोर्मिः।**
तस्यां स्नातः पूयते पुण्यकर्मा पुण्यो ह्यात्मा नित्यमलोभ एव॥ २१॥

—महा० उद्योग० अ० ४०

सत्संग—**तदलं ते विरोधेन शमं गच्छ नृपात्मज। वासुदेवेन तीर्थेन कुलं रक्षितुमर्हसि॥ ६॥**

—महा० उद्योग० अ० १०५

ब्रह्मध्यानं परं तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः। दमस्तीर्थं तु परमं भावशुद्धिः परं तथा॥ २३॥
ज्ञानह्रदे ध्यानजले रागद्वेषमलापहे। यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम्॥ २४॥

—गरुड० पूर्व० अ० ८१

योग—**योगिकं स्नानमाख्यातं योगेन हरिचिन्तनम्॥ १२॥**
आत्मतीर्थमिति ख्यातं सेवितं ब्रह्मवादिभिः॥ १३॥ —गरुड० पूर्व० अ० ५०

भाषार्थ—मन से प्रकाशित ब्राह्मज्ञानरूप जल से जो मन के तीर्थ में स्नान करता है, तत्त्वदर्शियों का यही स्नान है॥ १३॥ घर में वा जंगल में जहाँ ज्ञानी लोग रहते हैं, उसी का नाम नगर है, उसी को तीर्थ कहते हैं॥ ९१॥ हे भारत! आत्मा नदी है। यही पवित्र तीर्थ है। इसमें सत्य का जल, धैर्य के किनारे तथा दया की लहरें हैं। इसमें स्नान करनेवाला पुण्यात्मा पवित्र हो जाता है। आत्मा पवित्र है, नित्य एवं निर्लोभ है॥ २१॥ हे राजपुत्र दुर्योधन! विरोध छोड़ दे, शान्त हो। तू कृष्णरूप तीर्थ से अपने कुल की रक्षा कर॥ ३६॥ ब्रह्म का ध्यान परम तीर्थ है। इन्द्रियों का निग्रह तीर्थ है। मन का निग्रह तीर्थ है। भाव की शुद्धि परम तीर्थ है। ज्ञानरूप तालाब में ध्यान-जल में जो मन के तीर्थ में स्नान करके राग-द्वेषरूप मल को दूर करता है, वह परमगति को प्राप्त होता है॥ २३-२४॥ योग से हरि का चिन्तन यौगिक स्नान है॥ १२॥ आत्मारूप तीर्थ का प्रसिद्ध ब्रह्मवादियों ने सेवन किया॥ १३॥

इन प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध हो गया कि मोक्ष के हेतु जलस्थल-स्नान, दर्शन, भ्रमण आदि तीर्थ नहीं, अपितु उपर्युक्त तीर्थ ही दुःखविनाशक, ज्ञानप्रकाशक तथा मोक्षदायक हैं।

(२३१) प्रश्न—'सरस्वती सरयुः' इत्यादि [ऋ० १०।६४।९] इस मन्त्र में सरस्वती, सरयु आदि नदियों से रक्षा की प्रार्थना की गई है। —पृ० २५७, पं० ९

उत्तर—इस मन्त्र में जल-स्थल को तीर्थ मानने तथा उनके दर्शन, स्नान, भ्रमण आदि से मोक्ष-प्राप्ति का वर्णन नहीं है और न ही इस मन्त्र में नदियों से प्रार्थना की गई है, अपितु इस

मन्त्र में कृषियज्ञ का वर्णन है। इस मन्त्र का प्रतिपाद्यविषय '**विश्वेदेवाः**' अर्थात् समस्त विद्वान् हैं। इस मन्त्र का अर्थ निम्न प्रकार है—

सरस्वती सरयुः सिन्धुरूर्मिभिर्महो महीरवसा यन्तु वक्षणीः।
देवीरापो मातरः सूदयित्न्वो घृतवत्पयो मधुमन्नो अर्चत॥ ९॥

—ऋ० १०।६४।९

भाषार्थ—हे विद्वान् लोगो! आपकी कृपा से बड़ी-से-बड़ी लहरोंसहित सरस्वती, सिन्धु, सरयु आदि जो २१ प्रकार की नदियाँ हैं वे हमारे खेत-सिंचन आदि से हमारी रक्षा हेतु आवें, हमारे कृषियज्ञ में प्राप्त हों और दिव्यशील माता के समान प्रेरणावाली, उनका जो मधुरतायुक्त जल है, वह जल देवें॥ ९॥

भावार्थ—विद्वान् लोग उक्त प्रकार की नदियों में से नहरें निकालकर प्रजा की कृषि को पानी से सिंचन करके उन्हें सुखी बनावें॥

कहिए महाराज! इस मन्त्र में आपके जल-स्थल-स्नान, दर्शन, भ्रमण से मोक्ष देनेवाले तीर्थों का वर्णन कहाँ है? वास्तव में ये तीर्थ हो भी नहीं सकते, क्योंकि जल-स्थल मोक्ष का हेतु नहीं हो सकते। जैसे—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥ १०९॥ —मनु० अ० ५
यमो वैवस्वतो देवो यस्त्वैष हृदि स्थितः।
तेन चेदविवादस्ते मा गङ्गा कुरून् गमः॥ ९२॥ —मनु० अ० ८

जटाभाराजिनैर्युक्ता दाम्भिका वेषधारिणः। भ्रमन्ति ज्ञानिवल्लोके भ्रामयन्ति जनानपि॥ ६३॥
गृहारण्यसमा लोके गतव्रीडा दिगम्बराः। चरन्ति गर्दभाद्याश्च विरक्तास्ते भवन्ति किम्॥ ६५॥
मृद्भस्मोद्धूलनादेव मुक्ताः स्युर्यदि मानवाः। मृद्भस्मवासी नित्यं श्वा स किं मुक्तो भविष्यति॥ ६६॥
तृणपर्णोदकाहाराः सततं वनवासिनः। जम्बूकाखुमृगाद्याश्च तापसास्ते भवन्ति किम्॥ ६७॥
आजन्म मरणान्तं च गंगादितटिनीस्थिताः। मण्डूकमत्स्यप्रमुखा योगिनस्ते भवन्ति किम्॥ ६८॥
पारावताः शिलाहाराः कदाचिदपि चातकाः। न पिबन्ति महीतोयं व्रतिनस्ते भवन्ति किम्॥ ६९॥
तस्मान्नित्यादिकं कर्म लोकरञ्जनकारकम्। मोक्षस्य कारणं साक्षात्तत्त्वज्ञानं खगेश्वर॥ ७०॥

—गरुड़० प्रेत० अ० ४९

भाषार्थ—जलों से शरीर शुद्ध होता है। मन सत्य से शुद्ध होता है। विद्या और तप से आत्मा शुद्ध होता है और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है॥ १०९॥ संसार को नियम में रखनेवाला प्रकाशमान देव परमात्मा जो हृदय में विद्यमान है यदि तेरा उसके साथ विवाद नहीं है तो न गंगा को जा और न कुरुक्षेत्र को॥ ९२॥ जटाओं के भार और मृगछाला से युक्त वेषधारी मक्कार, ज्ञानियों की भाँति संसार में जल-स्थलों में भ्रमण करते हैं और लोगों को भ्रमण करवाते हैं॥ ६३॥ जिनके लिए घर और जंगल समान है, नंगे, लज्जा को छोड़कर संसार में फिरनेवाले गधे क्या विरक्त हो जाते हैं?॥ ६५॥ भस्म और धूल में लिप्त होने से यदि मनुष्य मुक्त हो जावे तो मिट्टी और भस्म में निवास करनेवाले कुत्ते की क्या मोक्षगति हो जावेगी?॥ ६६॥ घास, पत्ते, पानी का आहार करनेवाले तथा नित्य वन में रहनेवाले गीदड़, चूहे, मृगादि क्या तपस्वी हो जावेंगे?॥ ६७॥ जन्म से लेकर मरने तक गङ्गादि नदियों के किनारे रहनेवाले मेंढक, मछली आदि क्या योगी हो जाते हैं?॥ ६८॥ पत्थरों का आहार करनेवाले कबूतर और कभी भी पृथिवी का पानी न पीनेवाले चातक क्या व्रती हो जाते हैं?॥ ६९॥ इसलिए नित्यादि कर्म लोगों को प्रसन्न करने के लिए हैं, मोक्ष

का साक्षात् कारण तो ज्ञान ही है॥७०॥

अब आपको निश्चय हो गया होगा कि मोक्ष का कारण जल-स्थल-स्नान, दर्शन, भ्रमणादि नहीं है, अपितु ज्ञानादि ही मोक्ष के कारण होने से सच्चे तीर्थ हैं। जैसे—

अगाधे विपुले सिद्धे सत्यतीर्थे शुचिह्रदे।
स्नातव्यं मनसा युक्तं स्नानं तत् परमं स्मृतम्॥३४॥ —शिव० उमा० अ० १२

भाषार्थ—मनुष्य को अति गहरे, विशाल तथा सिद्धियों से सम्पन्न सत्यरूपी तीर्थ तथा पवित्रतारूप तालाब में मानसिक स्नान करना चाहिए। वही अत्यन्त श्रेष्ठ स्नान समझने योग्य है॥३४॥

सर्वेषामेव तीर्थानां क्षान्तिः परमपूजिता। तस्मात् पूर्वं प्रयत्नेन क्षान्तिः कार्या क्रियासु वै॥४७॥
—भविष्य० ब्राह्म० अ १७१

यत्स्नातं ज्ञानसलिलैः शीलभस्मप्रमार्जितम्। तत्पात्रं सर्वपात्रेभ्य उत्तमं परिकीर्तितम्॥७९॥
—भविष्य० ब्राह्म० अ० १८७

भाषार्थ—सब तीर्थों में शान्ति परम पूजित है। इसलिए पहले प्रयत्न से हर एक काम में शान्ति करनी चाहिए॥४७॥

जो ज्ञान के जल से स्नान करना तथा शील की भस्म से माँजना है—यह पात्र सब पात्रों से उत्तम कहा गया है॥७९॥

इत्यादि पुराणों में भी सैकड़ों श्लोक हैं जो जल-स्थल-स्नान, दर्शन, भ्रमण आदि से मुक्ति का खण्डन करके ज्ञान आदि से मुक्ति मानते हैं।

(२३२) प्रश्न—'इमं मे गंगे यमुने' इत्यादि [ऋ० १०।७५।५]। इस मन्त्र में गङ्गा-यमुना का सेवन करने और प्रार्थना सुनने का वर्णन है। —पृ० १५७, पं० १७

उत्तर—इस मन्त्र में भी नदियों में स्नान, दर्शन, स्पर्शन आदि से पाप दूर होने तथा मुक्ति मिलने का वर्णन नहीं है, अपितु इस मन्त्र में नदियों के प्रकार बताये गये हैं। ऋषियों ने जिस नदी को जिस प्रकार का देखा वैसा ही उसका नाम वेद में से लेकर रख दिया। इस मन्त्र में नदियों के लक्षण और नाम इस प्रकार वर्णित हैं—

इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्यासुषोमया॥
—ऋ० १०।७५।५

भाषार्थ—हे गङ्गे, यमुने, सरस्वति, शुतुद्रि, परुष्णि, असिक्नि, मरुद्वृधे, वितस्ता, सुषोमा, आर्जीकीये! तुम मेरे इस स्तोत्र को सेवन करो तथा सुनो।

इस मन्त्र में से आप कोई एक ही शब्द बतलावें जिससे इन नदियों में स्नान से पापनाश तथा मोक्ष-प्राप्ति वर्णन की गई हो। रहा नदियों को सम्बोधित करने तथा स्तुति सुनने को कहना, सो यह वर्णन करने की वेद की शैली है कि अचेतनों की भी चेतनों की भाँति स्तुति की जाती है। जैसाकि ईश्वरस्वरूप के बारे में हम विस्तारपूर्वक वर्णन कर आये हैं। इन नदियों के उपर्युक्त नाम किन गुणों के कारण होते हैं इसका वर्णन निरुक्त में इस प्रकार से किया गया है—

अथैकपदनिरुक्तम्—**गङ्गा गमनात्। यमुना प्रयुवती गच्छति प्रवियुतं गच्छतीति वा।**
सरस्वती सर इत्युदकनाम सर्त्तेस्तद्वती। शुतुद्री शुद्राविणी क्षिप्रन्द्राविण्याशु तुन्नेव द्रवतीति वा।
इरावती परुष्णीत्याहुः—पर्ववती कुटिलागामिनी।
असिक्न्यशुक्लासिता—सितमिति वर्णनाम तत्प्रतिषेधोऽसितम्।

मरुद्वृधाः सर्वा नद्यो मरुत एना वर्द्धयन्ति। वितस्ताऽ विदग्धाविवृद्धा महाकूला। आर्जीकीयां विपाडित्याहुः। ऋजीकप्रभवावर्जुगामिनी वा, सुषोमा सिन्धुपदेनाभिप्रसुवन्ति नद्यः। सिन्धुः स्यन्दनात्॥ १॥ —निरु० अ० ९ख० २६

भाषार्थ—अब एक-एक पद का निरुक्त कहते हैं। गमन से गङ्गा, अर्थात् गति वा चाल वा बहाव जिसका प्रशंसित हो उसका नाम गङ्गा। जोड़ती हुई चलने वा जुड़ी हुई चलनेवाली यमुना। सर यह पानी का नाम है, उत्तम जलवाली का नाम सरस्वती। शीघ्र भागनेवाली, शीघ्र व्यथित-सी चलनेवाली शुतुद्री जानो। पर्वों=जोड़ोंवाली, प्रकाशवाली, कुटिलगामिनी को परुष्णा जानो। अशुक्ला वा असिता होने से असिक्न्या। सित वर्ण का नाम है, उसका उलट असित। मरुद्वृधा सब नदी हैं, क्योंकि मरुत् इनको बढ़ाते हैं। विदग्धा वा विशेष बड़ी वा बड़े किनारोंवाली को वितस्ता जानो। ऋजुगामिनी को आर्जीकीया जानो वा ऋजीक पर्वत से निकले उसको। सिन्धु उसको कहते हैं जिसमें सब नदियाँ गिरें वा जो विशेष रूप से बहे।

इस निरुक्त के देखने से ऐसा जान पड़ता है कि इन-इन लक्षणोंवाली नदी होती हैं और जिस-जिस नदी में जो-जो लक्षण पाये गये, लोक में उस-उस नदी को पीछे से उस-उस नाम से पुकारने लगे। जैसाकि निरुक्तकार ने दो जगह स्वयं कहा है कि आर्जीकीया ऋजुगामिनी होने से विपाशा का नाम पड़ गया और पर्वोंवाली आदि लक्षणों से इरावती का दूसरा नाम परुष्णी पड़ा।

इससे यह जानना चाहिए कि वेद में आये गङ्गादि नाम भागीरथी आदि के वाचक नहीं, किन्तु वेदोक्त लक्षणयुक्त होने से भागीरथी आदि के गङ्गा आदि नाम पीछे से प्रचलित हुए हैं।

इससे सिद्ध है कि वेद में जलस्थल के दर्शन, स्नान, भ्रमणादि को तीर्थ नहीं माना गया अपितु ज्ञान, योग, सत्संगादि को तीर्थ माना गया है और पुराण भी उसका अनुमोदन करते हैं।

अब हम आपको पौराणिक तीर्थों का अनुपयोग आपके पुराणों से ही दिखाते हैं कि इनकी मियाद=अवधि भी समाप्त हो चुकी है। जैसे—

नन्द उवाच — **तीर्थान्येतानि सर्वाणि तिष्ठन्त्येव कियद्दिनम्।**
साधवो ग्राम्यदेवाश्च शास्त्राण्येतानि वत्सक॥ ३१॥

श्रीकृष्ण उवाच — **कलौ दशसहस्राणि हरिस्तिष्ठति मेदिनीम्।**
देवानां प्रतिमा पूज्या शास्त्राणि च पुराणकम्॥ ३२॥
तदर्धमपि तीर्थानि गंगादीनि सुनिश्चितम्।
तदर्धं ग्रामदेवाश्च वेदाश्च विदुषामपि॥ ३३॥

—ब्रह्मवैवर्त० खं० ४ अ० ९०

भाषार्थ—नन्दे ने पूछा कि हे बेटा! ये सारे तीर्थ कितने दिन तक ठहरेंगे तथा साधु, ग्रामों के देवता तथा शास्त्र ये कितने दिन तक ठहरेंगे॥ ३१॥ कृष्णजी ने कहा कि कलियुग में दस हज़ार वर्ष तक हरि पृथिवी पर ठहरेंगे और मूर्त्तिपूजा, शास्त्र और पुराण भी दस हज़ार वर्ष ठहरेंगे॥ ३२॥ इससे आधा समय अर्थात् पाँच हज़ार वर्ष तक निश्चय रूप से गंगा आदि तीर्थ ठहरेंगे, उससे भी आधे समय तक अर्थात् ढाई हज़ार वर्ष तक ग्रामों के देवता ठहरेंगे तथा वेद और विद्वान् भी ढाई हज़ार वर्ष तक ठहरेंगे।

इस समय कलियुग के ५०३४ वर्ष[1] व्यतीत हो चुके हैं, इससे पुराणों के कथनानुसार अब कोई गङ्गादि तीर्थ पृथिवी पर मौजूद नहीं है, अतः पौराणिकों को चाहिए कि वे तीर्थों को सिद्ध करने के स्थान में उनकी अन्त्येष्टि आदि क्रियाकर्म में विशेष ध्यान दें।

---

१. प्रथम संस्करण, प्रकाशन काल सन् १९३६। इस समय ५०९७ वर्ष। —सं०

(२३३) प्रश्न—स्वामीजी कहते हैं कि पण्डों के बही-खाते देख लो, उनसे मालूम हो जाएगा कि तीर्थ थोड़े ही काल से बने हैं। पण्डों की बही क्यों देखें? ईश्वर का बही-खाता वेद क्यों नहीं देखें, जिसमें तीर्थों का महत्त्व भरा है? क्या स्वामीजी की दृष्टि में वह पण्डों के बही-खाते के तुल्य भी महत्त्व नहीं रखता? —पृ० २५९, पं० १८

उत्तर—स्वामीजी तीर्थ मानते हैं वेद, शास्त्र-अध्ययन, सत्सङ्ग, ज्ञान, ध्यान आदि को, जो मनुष्य को सांसारिक दुःखों से तराने के हेतु हैं, या मानते हैं किश्ती को जो जलों से तराने का हेतु है और पुराण तीर्थ मानते हैं जलों और स्थलों को, और उनमें स्नान, दर्शन, भ्रमण, निवास, मरण आदि से मानते हैं मुक्ति। स्वामी दयानन्दजी के माने हुए तीर्थों का तो वेदों में वर्णन है, किन्तु पौराणिक तीर्थों का वेदों में क़तई वर्णन नहीं है। इसका प्रमाण स्पष्ट है कि आपने जितने भी वेदमन्त्र दिये हैं उनसे आपके किये अर्थों के अनुसार एक भी वेदमन्त्र जलस्थल में स्नान-दर्शनादि से पापों का क्षय और मोक्ष-प्राप्ति का वर्णन नहीं करता, अतः स्वामीजी ने लिखा है कि आजकल जो जल, स्थल, तीर्थ, पापनाशक और मुक्तिदायक माने जाते हैं वे प्राचीन नहीं हैं अपितु उनकी कल्पना एक हज़ार वर्ष से इधर-इधर हुई है, क्योंकि पण्डों के पास एक हज़ार वर्ष से अधिक कोई भी लेख विद्यमान नहीं है, अतः स्वामीजी का लिखना ठीक है। आपमें हिम्मत हो तो एक हज़ार वर्ष से प्राचीन कोई ताम्रपत्र या बहीखाता इन तीर्थों की प्राचीन स्थिति की सिद्धि में पेश करें।

(२३४) प्रश्न—इस मन्त्र का तो समस्त भाष्यकारों ने यह अर्थ किया है कि—हे रुद्र! आप समस्त तीर्थों में विचरते हैं। इस कारण आप तीर्थ हैं। आपको मैं प्रणाम करता हूँ। अब आर्यसमाजी विचारें कि '**नमस्तीर्थाय च**' इसमें तीर्थ का खण्डन है या मण्डन॥ —पृ० २६०, पं० ४

उत्तर—श्रीमान्‌जी! तीर्थ शब्द पर कोई झगड़ा नहीं है। झगड़ा तो तीर्थ शब्द के अर्थ पर तथा उससे पाप-नाश और मोक्ष-प्राप्ति पर है। यद्यपि हम इस मन्त्र के सत्य अर्थ (नं० २२८ में) कर आये हैं तथापि यदि आपके और आपके पौराणिक भाष्यकारों के अर्थ को ही सामने रखा जावे तो भी उससे आपकी प्रयोजन-सिद्धि नहीं होती, क्योंकि इन अर्थों से न तो यह सिद्ध होता है कि गङ्गादि नदियों या कुरुक्षेत्रादि स्थलों का नाम तीर्थ है, और न ही इनमें स्नान, भ्रमण, मरणादि से पापनाश तथा मोक्ष होने का वर्णन है। रुद्र के समस्त तीर्थों में विचरने तथा रुद्र को तीर्थ मानने से तो पौराणिक जलस्थलों की तीर्थ-सिद्धि नहीं हो सकती, क्योंकि हम आपके अर्थों के अनुसार भी यह कह सकते हैं कि 'रुद्र सत्य, ज्ञान, ध्यान, शास्त्रादि तीर्थों में विचरने से स्वयं भी तीर्थ रूप थे', अतः प्रत्येक अवस्था में उपर्युक्त मन्त्र पौराणिक तीर्थों का खण्डन ही करता है। आपमें हिम्मत हो तो वेद का कोई ऐसा मन्त्र पेश करें, जिससे यह सिद्ध हो सके कि 'गङ्गा, कुरुक्षेत्र आदि जलस्थलों में स्नान, दर्शन, भ्रमण, निवास, मरण आदि से पापनाश तथा मोक्ष-प्राप्ति होती है।'

(२३५) प्रश्न—रही बात '**समानतीर्थे वासी**' इस सूत्र की, इसपर तत्त्वबोधिनीकार लिखते हैं-**तीर्थं शास्त्राऽध्वरक्षेत्रोपायोपाध्यायमन्त्रिषु योनौ जलावतारे च इति विश्वः।** शास्त्र, मार्ग, क्षेत्र, उपाय, उपाध्याय, मन्त्री, योनि, जलावतार—इनका नाम तीर्थ है। —पृ० २६०, पं० ७

उत्तर—प्रथम आपने तत्त्वबोधिनी तो दे दी, किन्तु सिद्धान्तकौमुदी के जिस पाठ पर तत्त्वबोधिनी है उसे हज़म कर गये। मूल के बिना टीका किसकी? लीजिए, हम पहले सिद्धान्तकौमुदी का मूल पाठ बतलाते हैं, देखिए—

समानतीर्थे वासी। (४।४।१०७)

साधुरिति निवृत्तम्। वसतीति वासी। समाने तीर्थे गुरौ वसतीति सतीर्थ्यः।

—सिद्धान्तकौमुदी तद्धिते प्राग्घितीयप्रकरणम्।

इसमें सिद्धान्तकौमुदीवाले ने स्पष्ट लिखा है कि तीर्थ नाम गुरु का है।

दूसरे, आपने तत्त्वबोधिनी-टीका नहीं दिखाई, केवल कोश का प्रमाण दिखाया है। सो कोश में तीर्थ का अर्थ उपाध्याय विद्यमान है और उसी का इस सूत्र के साथ सम्बन्ध है। तीसरे, तीर्थ शब्द के कितने अर्थ होते हैं? इस कोश के अर्थों में भी आपने चालाकी से काम लिया है। कोश में आपने 'मार्ग' कौन-से शब्द का अर्थ किया है? वहाँ तो 'अध्वरक्षेत्र' शब्द है जिसका अर्थ है 'यज्ञस्थल'। आपने अध्वर का अर्थ मार्ग करके क्षेत्र को भिन्न दिखाकर धोखा दिया है। चौथे, आपने जलावतार का अर्थ क्यों नहीं किया? जलावतार के अर्थ हैं जल से पार ले-जानेवाली किश्ती, अतः कोश के अनुसार 'शास्त्र, यज्ञस्थल, उपाध्याय, मन्त्री, योनि, किश्ती' ये अर्थ तीर्थ शब्द के हैं। आपके इस लेख से स्वामीजी के सिद्धान्त की पुष्टि होती है। जैसाकि—

'**प्रश्न**—तो कोई तीर्थ, नामस्मरण सत्य है वा नहीं?

उत्तर—है, वेदादि सत्य शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, धार्मिक विद्वानों का सत्संग, परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, निर्वैरता, निष्कपटता, सत्यभाषण, सत्य का मानना, सत्य करना, ब्रह्मचर्य, आचार्य, अतिथि, माता-पिता की सेवा, परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, शान्ति, जितेन्द्रियता, सुशीलता, धर्मयुक्त पुरुषार्थ, ज्ञान-विज्ञान आदि शुभगुण-कर्म दुःखों से तारनेवाले होने से तीर्थ हैं, और जो जलस्थलमय हैं वे तीर्थ कभी नहीं हो सकते, क्योंकि '**जना यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि**' मनुष्य जिनके द्वारा दुःखों से तरें उनका नाम तीर्थ है। जलस्थल तरानेवाले नहीं, किन्तु डुबाकर मारनेवाले हैं। प्रत्युत नौका आदि का नाम तीर्थ हो सकता है, क्योंकि उनसे समुद्रादि को तरते हैं।'

—सत्यार्थ० समु० ११

स्वामीजी के इस सिद्धान्त की पुष्टि वेद, धर्मशास्त्र, इतिहास, यहाँ तक कि पुराण भी करते हैं, यह हम दिखा चुके हैं।

(२३६) **प्रश्न**—क्या कोई सनातनधर्मी यह कहता है कि तीर्थ शब्द से केवल जलसमूह का ही ग्रहण है, शास्त्रादिकों का नहीं। —पृ० २६०, पं० १०

उत्तर—तीर्थ शब्द के अर्थ जलस्थल के बिना और भी होते हैं—चाहे सनातनधर्मी यह मानते भी हों, तो भी वे पाप काटने और मोक्ष होने में तीर्थों के मुक़ाबले में वेद-शास्त्रादि किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं समझते, क्योंकि वेद-शास्त्र के तीर्थ मानने से तो गङ्गादि में स्नान का तथा काशी आदि निवास का कोई विशेष महत्त्व रहता ही नहीं। जलस्थल तीर्थों का तो महत्त्व ही इस बात में माना जाता है कि उनमें स्नान, दर्शन, स्मरण, भ्रमण, निवास, मरणमात्र से ही जन्म-जन्मान्तर के पाप कटकर मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी भी मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं। जैसेकि—

इदं गुह्यतमं क्षेत्रं सदा वाराणसी मम। सर्वेषामेव जन्तूनां हेतुर्मोक्षस्य सर्वथा॥ ७॥
अत्र तीर्थे विशेषोऽस्त्यविमुक्ताख्ये पुरोत्तमे। श्रूयतां तत्त्वया देवि परशक्ते सुचित्तया॥ १३॥
सर्वे वर्णा आश्रमाश्च बालयौवनवार्द्धकाः। अस्यां पुर्यां मृताश्चेत् स्युर्मुक्ता एव न संशयः॥ १४॥
अशुचिश्च शुचिर्वापि कन्या परिणता तथा। विधवा वाथवा वन्ध्या रजोदोषयुतापि वा॥ १५॥
प्रसूता संस्कृता कापि यादृशी तादृशी द्विजाः। अत्र क्षेत्रे मृता चेत्स्यान्मोक्षभाङ् नात्र संशयः॥ १६॥
स्वेदजश्चाण्डजो वापि ह्युद्भिजोऽथ जरायुजः। मृतो मोक्षमवाप्नोति यथात्र न तथा क्वचित्॥ १७॥
ज्ञानापेक्षा न चात्रैव भक्त्यपेक्षा न वै पुनः। कर्मापेक्षा न देव्यत्र दानापेक्षा न चैव हि॥ १८॥
संस्कृत्यपेक्षा नैवात्र ध्यानापेक्षा न कर्हिचित्। नामापेक्षार्चनापेक्षा सुजातीनां तथात्र न॥ १९॥
मम क्षेत्रे मोक्षदे हि यो वा वसति मानवः। यथा तथा मृतः स्याच्चेन्मोक्षमाप्नोति निश्चितम्॥ २०॥

—शिव० कोटिरुद्र० अ० २३

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका॥ ५॥
पुरी द्वारवती ज्ञेया सप्तैता मोक्षदायिकाः॥ ६॥

—गरुड० प्रेत० अ० ३८

नर्मदा— **तर्पयित्वा पितॄन् देवानग्निष्टोमफलं लभेत्॥ ५३॥**
वसिष्ठाश्रम—**तत्रोष्य रजनीमेकां गोसहस्रफलं लभेत॥ ५६॥**
पिङ्गतीर्थ— **पिंगतीर्थमुपस्पृश्य ब्रह्मचरी जितेन्द्रियः।**
कपिलानां नरश्रेष्ठ शतस्य फलमश्नुते॥ ५७॥
ततो गत्वा सरस्वत्याः सागरस्य च संगमे॥ ६०॥
गो-सहस्रफलं तस्य स्वर्गलोकं च विन्दति॥ ६१॥
पिण्डारके नरः स्नात्वा लभेद् बहु सुवर्णकम्॥ ६५॥
सागरस्य च सिन्धोश्च संगमं प्राप्य भारत॥ ६८॥
प्राप्नोति वारुणं लोकं दीप्यमानं स्वतेजसा॥ ६९॥
दमीतीर्थ— **जन्मप्रभृति यत्पापं तत् स्नातस्य प्रणश्यति॥ ७३॥**
वसुधारा— **गमनादेव तस्यां हि हयमेधफलं लभेत्॥ ७६॥**
पञ्चनद— **पञ्चयज्ञानवाप्नोति क्रमशो येऽनुकीर्तिताः॥ ८३॥**
वासव— **सर्वपापविशुद्धात्मा गच्छेत् परमां गतिम्॥ ८८॥**
नागभवन—**तत्र स्नात्वा नरो नूनं वाजपेयमवाप्नुयात्।**
सर्वपापविशुद्धात्मा गच्छेच्च परमां गतिम्॥ ९१॥

—महा० वन० अ० ८२

भाषार्थ—यह काशी मेरा सदा से गुप्ततर क्षेत्र है जोकि सर्वथा सर्वप्राणियों के लिए मोक्ष का हेतु है॥ ७॥ इस अविमुक्ताख्य तीर्थ में विशेष उत्तमता है। हे देवि! तुम्हें चित्त देकर सुनना चाहिए॥ १३॥ सारे वर्ण, सब आश्रम, बालक, जवान, बूढ़े यदि इस पुरी में मरें तो मोक्ष को प्राप्त होते हैं, इसमें संशय नहीं है॥ १४॥ शुद्ध हो, चाहे अशुद्ध हो, कन्या हो चाहे विवाही हो, विधवा हो वा वन्ध्या हो, चाहे रजोदोष से दूषित हो॥ १५॥ प्रसूता हो, असंस्कृता हो, वा जैसी-कैसी हो, इस क्षेत्र में यदि मर जावे तो मोक्षभागिनी होगी इसमें संशय नहीं॥ १६॥ स्वेदज हो, वा अण्डज हो, उद्भिज हो वा जरायुज हो, जैसे मरकर यहाँ मोक्ष को प्राप्त होता है वैसा कहीं नहीं॥ १७॥ यहाँ ज्ञान की आवश्यकता नहीं, न यहाँ पर भक्ति की अपेक्षा है। हे देवि! न यहाँ कर्म की अपेक्षा है, न ही दान की अपेक्षा है॥ १८॥ न संस्कारयुक्त होने की आवश्यकता है और यहाँ पर न कभी ध्यान की अपेक्षा है, न यहाँ पर नाम की अपेक्षा है, न पूजा की ज़रूरत, न यहाँ सुजाति होने की अपेक्षा है॥ १९॥ मेरे मोक्ष देनेवाले क्षेत्र में जो भी मनुष्य बसता है, जैसे-कैसे भी मरा हुआ निश्चितरूप से मोक्ष को प्राप्त होता है॥ २०॥ अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काँची, अवन्तिका तथा द्वारवतीपुरी ये सात मोक्ष के देनेवाली हैं॥ ५-६॥ नर्मदा नदी में पितरों तथा देवों का तर्पण करके अग्निष्टोमयज्ञ के फल को प्राप्त होता है॥ ५३॥ एक रात वसिष्ठाश्रम में निवास करने से सहस्र गोदान के फल को पाता है॥ ५६॥ पिंगतीर्थ में स्नान से सौ कपिला-दान के फल को पाता है॥ ५७॥ तब सरस्वती और सागर के संगम में जाकर॥ ६०॥ हज़ार गोदान के फल को तथा स्वर्गलोक को प्राप्त होता है॥ ६१॥ पिंडारक स्नान करके मनुष्य बहुत सोने को प्राप्त होता है॥ ६५॥ हे भारत! सागर और सिन्धु के संगम को प्राप्त होकर॥ ६८॥ अपने तेज से दीप्त वरुणलोक को प्राप्त होता है॥ ६९॥ दमीतीर्थ में स्नान करके जन्मभर के पाप का नाश कर

लेता है॥७३॥ वसुधारा में जानेमात्र से ही अश्वमेध के फल को पाता है॥७६॥ पञ्चनद में स्नान करने से पञ्चमहायज्ञ के फलों को प्राप्त होता है॥८८॥ नागभवन तीर्थ में स्नान करने से निश्चय मनुष्य वाजपेय यज्ञ के फल को प्राप्त होता है। सब पापों से छूट, शुद्धात्मा होकर परमगति=मोक्ष को प्राप्त होता है॥९१॥

इत्यादि हज़ारों प्रमाण हैं जोकि जलस्थल में स्नान, दर्शन, निवास, भ्रमण, मरणमात्र से पाप का छूटना और मोक्ष को प्राप्त होना मानते हैं। क्या सनातनधर्म में कोई माई का लाल ऐसा पैदा हुआ है जो इस प्रकार के तीर्थों को वेदों में से सिद्ध कर सके? रहा ऋषि दयानन्दजी का सिद्धान्त—उसका जहाँ वेद प्रतिपादन करते हैं, वहाँ सनातनधर्म के समस्त ग्रन्थ भी स्पष्ट शब्दों में मानते हैं। जैसेकि—

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्। विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥९॥
प्रतिग्रहादपावृत्तः सन्तुष्टो येन केनचित्। अहंकारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते॥१०॥
अकल्पको निरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः। विमुक्तः सर्वपापेभ्यः स तीर्थफलमश्नुते॥११॥
अक्रोधनश्च राजेन्द्र सत्यशीलो दृढव्रतः। आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते॥१२॥
—महा० वन० अ० ८२

भाषार्थ—जिसके हाथ और पैर तथा मन क़ाबू में है और जिसके पास विद्या, तप और कीर्ति है, वह तीर्थ के फल को भोगता है॥९॥ जो दान नहीं लेता, जिस-किस प्रकार से सन्तुष्ट है, अहंकार से मुक्त है, वह तीर्थ के फल को भोगता है॥१०॥ जो बुद्धिमान्, शीघ्रकारी, अल्प-भोजन से सन्तुष्ट तथा जितेन्द्रिय और सब पापों से मुक्त है, वह तीर्थ के फल को भोगता है॥११॥ हे राजेन्द्र! जो क्रोध से हीन, सत्यशील, दृढ़प्रतिज्ञ, सब प्राणियों को आत्मा के समान देखनेवाला है, वह तीर्थ के फल को भोगता है॥१२॥

कहिए, महाभारत ऋषि के सिद्धान्त का अक्षरशः अनुमोदन करता है या नहीं, अतः इस सारे लेख का परिणाम यह है कि—

(१) पौराणिक सनातनधर्म के सिद्धान्त में जलस्थल में स्नान, दर्शन, भ्रमण, निवास, मरण आदि से पापों का दूर होना तथा मोक्षप्राप्ति का नाम तीर्थ है, इसमें ज्ञानादि साधनों की अपेक्षा नहीं।

(२) वैदिक सिद्धान्तानुसार ज्ञान, शास्त्र, सत्संगादि तीर्थ हैं तथा किश्ती नामक भी तीर्थ हो सकता है; जलस्थल का नाम तीर्थ नहीं है।

(३) वेदों में कहीं भी जलस्थल को तीर्थ नहीं कहा।

(४) वेदों में कहीं भी जलस्थल-स्नान, भ्रमण आदि से मोक्ष नहीं माना।

(५) वेदों में जहाँ गङ्गा, यमुना, सरस्वती, सिन्धु आदि नाम आते हैं वहाँ नदियों के प्रकार तथा लक्षण और उनका उपयोग वर्णन है। न उनको तीर्थ कहा है, न उनको पापनाशक माना है और न ही उनको मोक्ष का साधन वर्णन किया है।

(६) वेदों में जहाँ-जहाँ तीर्थ शब्द आया है, वहाँ-वहाँ ज्ञान, वेद, शास्त्र, सत्संग, माता-पिता-गुरु आदि का नाम है, जलस्थल का नहीं, क्योंकि मनुष्य को दुःखसागर से ज्ञानादि ही तैरा सकते हैं, जलस्थल नहीं।

(७) वेद की आज्ञा है कि ब्रह्म के ज्ञान से ही मोक्ष हो सकता है अन्यथा नहीं। जैसाकि—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥ —यजुः० ३१।१८

भाषार्थ—हे जिज्ञासु पुरुष! मैं जिस बड़े-बड़े गुणों से युक्त सूर्य के तुल्य प्रकाशस्वरूप, अन्धकार वा अज्ञान से पृथक् वर्त्तमान, स्वस्वरूप से सर्वत्र पूर्ण परमात्मा को जानता हूँ, उसी को जानकर आप दु:खदायी मृत्यु को जीत सकते हैं, इससे भिन्न और कोई मार्ग मोक्ष-प्राप्ति का नहीं है।

अत: ऋषि दयानन्दजी का सिद्धान्त वेदानुकूल होने से सत्य तथा पौराणिक सिद्धान्त वेदविरुद्ध होने से मिथ्या है।

पाप-मोचन

(२३७) प्रश्न—जब यह मनुष्य संसार में दु:खी होता है या अन्यों को दु:खी देखता है, तब यह अपने दु:ख दूर करने की आवाज़ों को ईश्वर के पास पहुँचाता है। इस आवाज़ पहुँचाने की विधि और इस क्रन्दन को सुनकर जगदीश्वर मनुष्य के दु:ख को दूर करता है।

—पृ० २६०, पं० २२

उत्तर—परमात्मा न्यायकारी है। वह जीवों को उनके कर्मों का फल यथावत् देता है। यदि कोई मनुष्य अपने या दूसरों के दु:खों को देखकर अपने किये हुए पापों की क्षमा के लिए ईश्वर के सामने गिड़गिड़ाता है तो उसका गिड़गिड़ाना व्यर्थ है। परमात्मा किये हुए कर्मों का अवश्य फल देंगे। हाँ, उसकी प्रार्थनाओं का यह फल हो सकता है कि वह अपनी पाप करने की वृत्तियों का नाश करके भविष्य में पाप करना छोड़ दे। बस, जहाँ-जहाँ वेदों में पापमोचन की प्रार्थनाएँ हैं, उनका यही प्रयोजन है कि जीव परमात्मा से प्रतिज्ञा करता है कि 'मैं भविष्य में पाप न करूँगा।'

(२३८) प्रश्न—**'तच्चक्षुर्देवहितम्'** इत्यादि [यजु:० ३६।२४] इस मन्त्र में अपने स्वतन्त्र जीवन और इन्द्रियों के पुष्ट होने की सूर्य से प्रार्थना की है। —पृ० २६०, पं० २६

उत्तर—इस मन्त्र में सूर्य से नहीं, अपितु परमात्मा से ही प्रार्थना की गई है, क्योंकि सूर्य जड़ है और हमारी भाँति ईश्वर का ही बनाया हुआ है। प्रार्थना करने का प्रयोजन यह है कि 'जिन पदार्थों' के लिए हम परमात्मा से प्रार्थना करते हैं—एक प्रकार से परमात्मा के सामने इस बात की प्रतिज्ञा करते हैं कि 'हम इन पदार्थों की प्राप्ति के लिए यत्न करेंगे'। इस मन्त्र में एक शब्द भी ऐसा नहीं है जिसके यह अर्थ हों कि परमात्मा किये हुए पापों को क्षमा कर देता है। इस मन्त्र के यथार्थ अर्थ इस प्रकार हैं—

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥

—यजु:० ३६।२४

भाषार्थ—हे परमेश्वर! आप जो विद्वानों के लिए हितकारी, शुद्ध, नेत्र के तुल्य सबके दिखानेवाले, पूर्वकाल अर्थात् अनादिकाल से उत्कृष्टता के साथ सबके ज्ञाता हैं, उस चेतन ब्रह्म आपकी कृपा से हम सौ वर्ष तक देखें, सौ वर्ष तक प्राणों को धारण करें, जीवें, सौ वर्ष तक शास्त्रों वा मङ्गल वचनों को सुनें, सौ वर्षपर्यन्त पढ़ाएँ वा उपदेश करें, सौ वर्षपर्यन्त दीनतारहित हों और सौ वर्ष से अधिक भी देखें, जीवें, सुनें, पढ़ें, उपदेश करें और अदीन रहें॥ २४॥

कहिए महाराज! इसमें पापमोचन कहाँ वर्णन किया गया है! श्रीमान्‌जी! वेद में पापमोचन की आज्ञा नहीं है, अपितु वेद पापकर्मों का फल देना अवश्य वर्णन करता है। जैसे—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥ —यजु:० ४०।३

भाषार्थ—जो लोक-लोकान्तर वा जन्म-जन्मान्तर अत्यन्त अज्ञानमय वा दुःखमय हैं, उन लोकों को मरने के पश्चात् भी वे लोग जाते हैं जो कोई आत्मा का हनन करनेवाले, अर्थात् पापाचारी जन हैं॥ ३॥

(२३९) प्रश्न—'सुमित्रिया न आप' इत्यादि [यजुः० ३६।२३] इस मन्त्र में परमात्मा से ओषधियों के हमारे लिए मित्र तथा शत्रु के लिए अमित्र होने की प्रार्थना है।

—पृ० २६१, पं० १२

उत्तर—आप अपनी प्रतिज्ञा के विरुद्ध करते हुए प्रतिज्ञाहानिनिग्रहस्थान में आ रहे हैं। इस मन्त्र में भी पापमोचन का ज़िक्र तक नहीं है। न मालूम इन दोनों मन्त्रों के देने से आपकी क्या प्रयोजन-सिद्धि हुई है। इस मन्त्र का ठीक-ठीक अर्थ इस प्रकार है—

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः॥

—यजुः० ३६।२३

भाषार्थ—हे मनुष्यो! यह प्राण वा जल, जौ आदि ओषधियाँ हमारे लिए उत्तम मित्र के समान होवें वे ही जो अधर्मी, हम धर्मात्माओं से द्वेष करें और जिनसे हम लोग द्वेष करें उनके लिए शत्रु के तुल्य विरुद्ध होवें॥ २३॥

भावार्थ—जैसे अनुकूलता से जीते हुए इन्द्रिय मित्र के तुल्य हितकारी होते हैं, वैसे जलादि पदार्थ भी देश-काल के अनुकूल यथोचित सेवन किये हितकारी और विरुद्ध सेवन किये शत्रु के तुल्य दुःखदायी होते हैं॥ २३॥

यहाँ वेद में पापमोचन का वर्णन तो कहाँ, धर्म से द्वेष करनेवाले पापियों के लिए ओषधियों के शत्रुवत् विरुद्ध होने की प्रार्थना है तथा वेद में भगवान् स्वयं कहते हैं कि—

आरादरातिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान्।
रक्षो यत्सर्वं दुर्भूतं तत्तमइवाप हन्मसि॥ —अथर्व० ८।२।१२

भाषार्थ—दान न करने का भाव—दुःखमय अवस्था दूर रहे। न छोड़नेवाली पीड़ा, मांसभक्षक और रुधिर पान करनेवाले और जो दुःखदायी, दुष्ट प्राणी हैं उन सबको अन्धकार के समान नष्ट कर देता हूँ॥ १२॥

इससे साफ़ सिद्ध है कि परमात्मा पापियों को अवश्य दण्ड देते हैं।

(२४०) प्रश्न—'तनूपा अग्नेऽसि' इत्यादि [यजुः० ३।१७] इस मन्त्र में अग्नि से शरीर की रोग आदि से रक्षा करने, दीर्घ आयु करने, तेज देने आदि की प्रार्थना की गई है।

—पृ० २६१, पं० २०

उत्तर—इस मन्त्र में भी पापमोचन का वर्णन नज़र नहीं आता, अपितु अग्नि अर्थात् परमात्मा से आयु आदि देने की प्रार्थना है। जैसे—

तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि।
वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण॥ —यजुः० ३।१७

भाषार्थ—हे जगदीश्वर! जिस कारण आप सब मूर्त्तिमान पदार्थों के शरीरों की रक्षा करनेवाले हैं, इससे आप मेरे शरीर की रक्षा कीजिए। हे परमेश्वर! जैसे आप सबको आयु के देनेवाले हैं, वैसे मेरे लिए पूर्ण आयु अर्थात् सौ वर्ष तक जीवन दीजिए। हे सर्वविद्यामय ईश्वर! जैसे आप सब मनुष्यों को विज्ञान देनेवाले हैं, वैसे मेरे लिए भी ठीक-ठीक गुण-ज्ञानपूर्वक पूर्णविद्या को दीजिए। हे सब कामों को पूर्ण करनेवाले परमेश्वर! मेरे शरीर में जितना बुद्धि, बल और शौर्यादि गुण-कर्म है उतना अंग मेरा अच्छे प्रकार पूर्ण कीजिए।

कहिए महाराज! इस मन्त्र में पापमोचन का वर्णन करनेवाले कौन-से पद हैं? परमात्मा पापमोचक नहीं, अपितु पापियों को दण्ड देकर रुलाने के कारण रुद्र कहाते हैं। जैसेकि—

रुद्रस्य ये मीळ्हुषः सन्ति पुत्रा याँश्चो नु दाधृविर्भरध्यै।
विदे हि माता महो मही षा सेत्पृश्निः सुभ्वे गर्भमाधात्॥ —ऋ० ६।६६।३

भाषार्थ—एक दानवीर, पापियों को दण्ड देकर रुलानेवाले रुद्रदेव के जो अनेक पुत्र हैं और निश्चय ही जिनके भरण-पोषण-पालन करने की सब शक्ति वह एक अद्वितीय रुद्र धारण करता है, इस महान् रुद्र की शक्ति को वह प्रकृतिरूपी बड़ी माता प्राप्त करती है और जीवों की उत्तम अवस्था होने के लिए वह विविध रंग-रूपवाली प्रकृति माता निश्चय से जीवों को गर्भ में धारण करती है॥ ३॥

परमात्मा का रुद्र नाम ही इस बात को सिद्ध करता है कि वह पापियों के पाप का मोचन नहीं करता, अपितु उनके पापों का दण्ड देकर उनको रुलाता है।

(२४१) प्रश्न—'नमस्ते अग्न ओजसे' इत्यादि [साम० पू० १।१।२।१] इस मन्त्र में अग्नि से शत्रुओं के नाश करने की प्रार्थना की गई है। —पृ० २६२, पं० ५

उत्तर—आप भी अजीब आदमी हैं। प्रतिज्ञा तो करते हैं पापमोचन सिद्ध करने की, किन्तु उसकी सिद्धि के लिए मन्त्र एक भी पेश नहीं कर सकते। भला! बतलाइए, इस मन्त्र में वे कौन-से पद हैं जो यह बतलाते हों कि परमात्मा पापों को क्षमा कर देता है? इस मन्त्र में तो आपके अर्थ के अनुसार ही धर्म के शत्रुओं, अर्थात् पापियों को नाश करने की प्रार्थना की गई है। मन्त्र के ठीक अर्थ इस प्रकार हैं—

नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः। अमैरमित्रमर्दय॥ —साम० पू० १।१।२।१

भाषार्थ—हे अग्ने! हे देव! परमात्मन्! मनुष्य तुझे बल के लिए नमस्कार करते हैं, तू बलों से धर्म के शत्रु को पीड़ित कर। भक्त भगवान् से प्राण माँगते हैं और वन्दना करते हैं कि खल दण्डित हों॥ १॥

इस मन्त्र में पापमोचन नहीं अपितु पापियों को दण्ड देने का वर्णन है। वास्तव में यह पापमोचन का सिद्धान्त वैदिक है ही नहीं। और वेद ही क्या, इस ग़लत सिद्धान्त का सभी खण्डन करते हैं। जैसे—

यदाचरति कल्याणि शुभं वा यदि वाशुभम्।
तदेव लभते भद्रे कर्ता कर्मजमात्मनः॥ ६॥ —वाल्मी० अयो० स० ६३
अवश्यं लभते कर्ता फलं पापस्य कर्मणः।
घोरं पर्य्यागते काले द्रुमः पुष्पमिवार्तवम्॥ ८॥ —वाल्मी० अरण्य० स० २९

भाषार्थ—हे कल्याणि! मनुष्य जो कुछ भी शुभ-अशुभ करता है, हे भद्रे! करनेवाला वही अपने किये कर्मों के फल को प्राप्त होता है॥ ६॥ करनेवाला अपने पापकर्मों का फल घोरकाल आने पर अवश्य प्राप्त करता है, जैसे मौसम आने पर वृक्ष फूलों को प्राप्त होते हैं॥ ८॥

अतः पापमोचन का सिद्धान्त वेदविरुद्ध तथा मिथ्या है, और जनता को पाप करने के लिए उत्साहित करने में साधन है।

(२४२) प्रश्न—'यद् ग्रामे यदरण्ये' इत्यादि [यजुः० ३।४५] यह मन्त्र पढ़कर पापनाशक देवता ईश्वर को हवि दी जाती है। —पृ० २६२, पं० १०

उत्तर—इस मन्त्र में भी यह बात नहीं है कि ईश्वर पाप क्षमा कर देता है, अपितु आपके अर्थ के अनुसार ही इससे यह बात सिद्ध होती है कि 'पाप को हम क्षय करते हैं' अर्थात् हम

पाप करना छोड़ते हैं। हम पाप करना छोड़ दें इसमें तो कोई विवाद ही नहीं है। विवादास्पद तो यह विषय है कि ईश्वर किये हुए पापों का मोचन कर देता है वा नहीं। सो इस बारे में आप अभी तक एक मन्त्र भी पेश नहीं कर सके। इस मन्त्र का ठीक-ठीक अर्थ इस प्रकार है—

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये।
यदेनश्चकृमा वयमिदन्तदवयजामहे स्वाहा॥—यजुः० ३।४५

भाषार्थ—कर्म के अनुष्ठान करनेवाले हम लोग, जो गृहस्थों से सेवित ग्राम, वानप्रस्थों ने जिस वन की सेवा की हो, विद्वान् लोग जिस सभा की सेवा करते हों और योगी लोग जिस मन वा श्रोत्रादिकों की सेवा करते हों, उसमें स्थित होके जो पाप वा अधर्म किया वा करेंगे, सो सब दूर करते रहें तथा जो-जो उन-उन उक्त स्थानों में सत्य वाणी से पुण्य वा धर्माचरण करना योग्य है, उस-उसको प्राप्त होते रहें॥ ४५॥

भावार्थ—चारों आश्रमों में रहनेवाले मनुष्यों को मन, वाणी और कर्मों से सत्य कर्मों का आचारण कर पाप वा अधर्मों का त्याग करके विद्वानों की सभा, विद्या तथा उत्तम-उत्तम शिक्षा का प्रचार करके प्रजा के सुखों की उन्नति करनी चाहिए॥ ४५॥

इस मन्त्र में पाप तथा अधर्म की वृत्तियों को बदलकर भविष्य में पाप न करने तथा धर्माचरण करने का प्रतिपादन है, किये हुए पापों के क्षमा होने का वर्णन नहीं है और न ही किये हुए पाप क्षमा हो सकते हैं, अपितु किये हुए कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है और सभी ग्रन्थ इसकी पुष्टि करते हैं। जैसे—

अवश्यमेव लभते फलं पापस्य कर्मणः।
भर्तः पर्यागते काले कर्त्ता नास्त्यत्र संशयः॥ २५॥ —वाल्मी० युद्ध० स० १११
यत्करोत्यशुभं कर्म शुभं वा यदि सत्तम।
अवश्यं तत् समाप्नोति पुरुषो नात्र संशयः॥ ५॥ —महा० वन० अ० २०९

भाषार्थ—पापकर्म का फल अवश्य ही प्राप्त होता है। हे पते! समय आने पर कर्त्ता फल पाता है, इसमें संशय नहीं है॥ २५॥ हे उत्तम पुरुष! जो कोई शुभ या अशुभ कर्म करता है वह पुरुष अवश्य ही उसके फल को प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं है॥ ५॥

अतः सिद्ध हुआ कि पापमोचन का सिद्धान्त वेदविरुद्ध होने से पापजनक है।

(२४३) प्रश्न—'अग्ने रक्षा णो' इत्यादि [साम० पू० १।१।३।४] इस मन्त्र में प्रार्थना है कि हे अग्निरूप परमेश्वर! तुम हमारी पाप से रक्षा करो। —पृ० २६२, पं० १७

उत्तर—इस मन्त्र में भी आपके अर्थों के अनुसार भी पापमोचन का वर्णन नहीं है, अपितु 'हमारी पाप से रक्षा करो' अर्थात् पाप करने से बचाओ, ऐसा वर्णन है। और 'परमात्मा को धर्म के शत्रुओं का मारनेवाला, तपानेवाला तथा भस्म करनेवाला' वर्णन किया गया है, किये हुए पापों को क्षमा करनेवाला नहीं बताया। ऐसी अवस्था में दुष्टों, पापियों को दण्ड देनेवाला तथा हमारी पाप करने से रक्षा करनेवाला होने से यह मन्त्र हमारे सिद्धान्त का अनुमोदन तथा आपके सिद्धान्त का खण्डन करता है। मन्त्रार्थ इस प्रकार है—

अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति स्म देव रीषतः। तपिष्ठैरजरो दह॥ —साम० पू० १।१।३।४

भाषार्थ—हे उपास्यदेव प्रभो! हे अग्ने! स्वप्रकाश! हमारी पाप और पापी, हिंसक शत्रु से रक्षा कर, हमें उनसे बचा और कभी हीनबल न होनेवाला तू तपानेवाले तेजों, शस्त्रों से पापी को भस्म कर डाल॥ ४॥

कहिए, इस मन्त्र में पापमोचन वर्णन करनेवाले कौन-कौन-से पद हैं? हैं ही नहीं और हों

भी कैसे जबकि पाप क्षमा होते ही नहीं, अपितु किये हुए कर्म का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है, जैसाकि महाभारत में आता है—

चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम्। कुरुते यादृशं कर्म तादृशं प्रतिपद्यते॥ १६॥
निरन्तरं च मिश्रं च लभते कर्म पार्थिव। कल्याणं यदि वा पापं न तु नाशोऽस्य विद्यते॥ १७॥

—महा० शान्ति० अ० २९०

भाषार्थ—आँख से, मन से, वाणी से, कर्म से, चार प्रकार से मनुष्य जिस प्रकार का कर्म करता है वैसा ही फल प्राप्त करता है॥ १६॥ अकेला वा मिला हुआ कर्म हे राजन्! मनुष्य प्राप्त करता है, चाहे पुण्य हो चाहे पाप हो, इसका नाश नहीं होता॥ १७॥

इससे सिद्ध है कि मनुष्य की पाप करने की वृत्तियों का नाश होकर भविष्य में पाप करने से छूट सकता है, किन्तु किये हुए कर्म के फल का नाश नहीं होता।

(२४४) प्रश्न—'आ नो अग्ने' इत्यादि [साम० पू० १।१।४।९] परमेश्वर! शुद्ध करनेवाले, पापहर्त्ता, अन्न के बढ़ानेवाले, स्तुति योग्य धन को हमारे वास्ते दो, इत्यादि।

—पृ० २६२, पं० २२

उत्तर—इस मन्त्र में भी किये हुए कर्मों के फल के नाश का वर्णन नहीं है, अपितु परमात्मा को पापहर्त्ता इसलिए वर्णन किया गया है कि परमात्मा हमारी पाप करने की वृत्तियों का नाश करके हमें पापकर्म करने से बचाकर शुभकर्म में लगा देता है। इसी से परमात्मा को पापहर्त्ता, शुद्धकर्त्ता वर्णन किया है। मन्त्र का यथार्थ अर्थ इस प्रकार है—

आ नो अग्ने वयोवृधं रयिं पावक शंस्यम्।
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहं सुनीती सुयशस्तरम्॥ —साम० पू० ख० १।१।४।९

भाषार्थ—हे अग्ने! हे पवित्र करनेहारे! हमें प्रशंसा के योग्य, आयु को बढ़ानेवाला धन-ऐश्वर्य दे। हे ज्ञानसम्पन्न! हे सृष्टि के कर्त्ता! उत्तम धर्म की नीति से हमें जिस धन को बहुत लोग चाहते हैं और जिसके प्राप्त करने से उत्तम यश भी प्राप्त होता है, वह भी दे॥ ९॥

कहिए, मन्त्र में वे कौन-से पद हैं जो किये कर्मों के कर्मफल का नाश या पापमोचन वर्णन करते हैं? मन्त्र में परमेश्वर को जो पावक अर्थात् पवित्र करनेवाला कहा है उसके अर्थ ये हैं कि वह हमें पाप करने से रोककर पवित्र कर्मों में लगानेवाला है। किये कर्मों के फल का नाश या पापमोचन नहीं हो सकता, किये कर्मों का फल अवश्य ही मिलता है। जैसे—

सुशीघ्रमपि धावन्तं विधानमनुधावति। शेते सह शयानेन येन येन यथा कृतम्॥ ८॥
उपतिष्ठति तिष्ठन्तं गच्छन्तमनुगच्छति। करोति कुर्वतः कर्म च्छायेवानुविधीयते॥ ९॥
येन येन यथा यद्यत् पुरा कर्म समीहितम्। तत्तदेव नरो भुङ्क्ते नित्यं विहितमात्मना॥ १०॥

—महा० शान्ति० अ० १८१

भाषार्थ—जिसने जो कर्म किया है वह कर्म शीघ्र दौड़ते हुए के साथ दौड़ता है, सोये हुए के साथ सोता है॥ ८॥ बैठे के साथ बैठता है, और चलते हुए के साथ चलता है, करते हुए के साथ करता है। सारांश यह कि किया हुआ कर्म छाया के समान मनुष्य के साथ रहता है॥ ९॥ जिस-जिसने जैसे, जो-जो कर्म पहले किया है, वही-वही मनुष्य अपने किये कर्मों को नित्य भोगता है॥ १०॥

अतः सिद्ध है कि पापमोचन का सिद्धान्त वेदविरुद्ध तथा युक्तिशून्य होने से सर्वथैव मिथ्या है।

(२४५) प्रश्न—'अग्ने नय सुपथा राये' इत्यादि [यजुः० ४०।१६] इस मन्त्र में कहा है कि हे परमेश्वर! कुटिल, वञ्चनात्मक पाप को हमसे पृथक् करो। —पृ० २६३, पं० ४

उत्तर—इस मन्त्र में भी परमात्मा से कुटिल, वञ्चनात्मक पापस्वभाव को पृथक् करने की प्रार्थना की गई है, किये हुए पापकर्मों के फलभोग को पृथक् करने की प्रार्थना नहीं है। इस मन्त्र का यथार्थ अर्थ इस प्रकार है—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम॥

—यजुः० ४०।१६

भाषार्थ—हे दिव्यस्वरूप, प्रकाशस्वरूप, करुणामय जगदीश्वर! जिससे हम लोग आपके लिए अधिकतर सत्कारपूर्व प्रशंसा का सेवन करें, इससे सबको जाननेवाले आप हम लोगों से कुटिलतारूप पापाचरण को पृथक् कीजिए। हम जीवों को विज्ञानधन वा धन से होनेवाले सुख के लिए धर्मानुकूल मार्ग से समस्त प्रशस्त ज्ञानों को प्राप्त कीजिए॥ १६॥

श्रीमान्‌जी! बतालाइए, इसमें पापों को क्षमा करने या पापमोचन का वर्णन कहाँ है? यहाँ तो पापाचरण को दूर करने तथा धर्माचरण में प्रवृत्ति की प्रार्थना है। किये हुए पापकर्मों का फल कभी भी क्षमा नहीं हो सकता, देखिए—

बालो युवा च वृद्धश्च यत्करोति शुभाशुभम्। तस्यां तस्यामवस्थायां तत्फलं प्रतिपद्यते॥ १५॥
यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्। तथा पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति॥ १६॥

—महा० शान्ति० अ० १८१

भाषार्थ-बालक हो, चाहे जवान हो, चाहे बूढ़ा हो, जो भी पुण्य-पापकर्म करता है, उस-उस अवस्था में उसके फल को प्राप्त होता है॥ १५॥ जैसे हज़ारों गौओं में बछड़ा अपनी माता को प्राप्त होता है, वैसे ही पूर्व में किया हुआ कर्म कर्त्ता को प्राप्त होता है॥ १६॥

अतः सिद्ध हुआ कि किये हुए पापकर्मों का फल समाप्त या पापमोचन नहीं हो सकता। हाँ, पापाचरणों को छोड़कर धर्माचरण में मनुष्य की प्रवृत्ति हो सकती है।

(२४६) प्रश्न—'अप नः शोशुचत्' इत्यादि [ऋ० १।९७।१] हमारा जो पाप है वह हमसे निकलकर शोक में पड़कर नष्ट हो जावे। —पृ० २६३, पं० १२

उत्तर—इस मन्त्र में भी पूर्व किये हुए पापकर्मों के फल की क्षमा वा पापमोचन नहीं है अपितु पाप करने की आदत को दूर करके पुण्य करने की आदत डालने का अभिप्राय है। मन्त्र का यथार्थ अर्थ इस प्रकार है—

अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम्। अप नः शोशुचदघम्॥ —ऋ० १।९७।१

भाषार्थ—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! हमारे पापस्वभाव को काष्ठ की आग के समान भस्म करके दूर कीजिए और हमारे प्राण, देह, तथा ऐश्वर्य को शुद्ध, प्रकाशित और उज्ज्वल कीजिए। पुनः प्रार्थना है कि हमारे पाप करने के स्वभाव को भस्म करके दूर कीजिए॥ १॥

इस मन्त्र से पूर्वकृत पापमोचन सिद्ध नहीं होता, अपितु पाप करने का स्वभाव दूर होकर पुण्य करने का स्वभाव हो जाए यही सिद्ध होता है और पूर्वकृत पाप का फल टल भी नहीं सकता—

नाधर्मः कारणापेक्षी कर्तारमभिमुञ्चति। कर्ता खलु यथाकालं ततः समभिपद्यते॥ ८॥

—महा० शान्ति० अ० २९८

भाषार्थ—अधर्म किसी भी कारण की अपेक्षा से कर्त्ता को नहीं छोड़ता; निश्चयरूप से करनेवाला समयानुसार किये कर्म के फल को प्राप्त होता है॥ ८॥

अतः सिद्ध हुआ कि पापमोचन का सिद्धान्त वेद-विरुद्ध और मिथ्या है।

(२४७) प्रश्न—'सुक्षेत्रिया सुगातुया' इत्यादि [ऋ० १।९७।२] आपकी कृपा से हमारा पाप संकट में पड़कर नष्ट हो जावे। —पृ० २६३, पं० १७

उत्तर—इस मन्त्र में भी ईश्वर से अपने पाप करने के स्वभाव को नष्ट करने की प्रार्थना है। मन्त्र का यथार्थ अर्थ इस प्रकार है—

सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे। अप नः शोशुचदघम्॥ —ऋ० १।९७।२

भाषार्थ—हे परमेश्वर! हम लोग उत्तम क्षेत्र को प्राप्त करने की इच्छा से, उत्तम मार्ग को प्राप्त करने की इच्छा से, और उत्तम धन को प्राप्त करने की इच्छा से, तेरी उपासना करें। हे ज्ञानवान्! तेजस्विन्! आप हमारे पाप करने के स्वभाव को भस्म कर डालें॥ २॥

इससे पापमोचन सिद्ध नहीं होता, अपितु पाप करने के स्वभाव को दूर करना सिद्ध होता है। देखिए, पुराण भी यही कहते हैं—

कृतकर्म क्षयो नास्ति कल्पकोटिशतैरपि। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥ ३९॥

—शिव० कोटिरुद्र० अ० २३

भाषार्थ—किये हुए कर्म का सौ करोड़ कल्प तक भी क्षय नहीं होता, किया हुआ शुभ तथा अशुभ कर्मफल अवश्य ही भोगना पड़ेगा॥ ३९॥

इससे स्पष्ट हो गया कि किये हुए पापकर्मों का क्षय नहीं होता, अतः पापमोचन का सिद्धान्त वेद, शास्त्र, पुराणविरुद्ध होने से सर्वथा मिथ्या है। पाप करने के स्वभाव को छोड़कर आगे को पुण्यकर्म करना ही पाप दूर होने का प्रयोजन है।

(२४८) प्रश्न—इस स्थल में **'अप नः'** इस मन्त्र से लेकर **'स नः सिंधुम्'** इस मन्त्र तक ८ मन्त्र पापक्षमायाचन के हैं। जिनको देखना हो, ऋग्वेद देख लें। —पृ० २६३, पं० २२

उत्तर—इन मन्त्रों में भी किये हुए पाप के फल को क्षमा करने, पापमोचन वा पापक्षमा का वर्णन नहीं है, अपितु पाप करने के स्वभाव का नाश करके सदाचारी बनकर आगे को पापकर्म की निवृत्ति तथा पुण्यकर्म में प्रवृत्ति का वर्णन है। पापों का क्षमा करना ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के विरुद्ध है, क्योंकि परमात्मा न्यायकारी है और जो जैसा काम करे उसको वैसा फल देना न्याय है। किसी के पाप क्षमा करने से परमात्मा न्यायकारी नहीं रह सकता। परमात्मा का एक नाम यम है, जिसका अभिप्राय है कि परमात्मा सबको नियम में रखता है। पाप क्षमा करने से परमात्मा का नियम भंग हो जाएगा। परमात्मा का नाम रुद्र है। रुद्र उसको कहते हैं जो पापियों को दण्ड देकर रुलाता है। यदि पाप क्षमा कर दे तो उसका रुद्र नाम व्यर्थ हो जाए। परमात्मा का नाम दयालु है। यदि परमात्मा दुष्टों के पाप क्षमा कर दे तो जिन निर्बलों पर अत्याचार करके दुष्टों ने पाप किया है, उनको दण्ड न देने से उन निर्बलों पर अत्याचार करनेवाला परमात्मा माना जाएगा। परमात्मा को न्यायकारी, यम, रुद्र तथा दयालु प्रतिपादन करनेवाले मन्त्र निम्नलिखित हैं—

न्यायकारी— **विशां राजानमद्भुतमध्यक्षं धर्मणामिमम्।**
अग्निमीळे स उ श्रवत्॥ —ऋ० ८।४३।२४

यम— **परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम्।**
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य॥ —ऋ० १०।१४।१

रुद्र— **इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः क्षिप्रेषवे देवाय स्वधाव्ने।**
अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता शृणोतु नः॥ —ऋ० ७।४६।१

दयालु— **यन्नूनमश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा।**
अस्य प्रियस्य शर्मण्यहिंसानस्य सश्चिरे॥ —ऋ० ५।६४।३

भाषार्थ—प्रजाओं के अद्‌भुत राजा, धर्मकार्यों का योग्य अध्यक्ष, अर्थात् कर्मफल-प्रदाता इस तेजस्वी देव की मैं स्तुति करता हूँ। वही हमारी स्तुति सुनता है॥ २४॥ इस व्यापक भूतसमूह को अर्थात् सब प्राणियों को पुण्य-पाप के मार्गों से नियम में चलानेवाले तेजस्वरूप, सब मनुष्यों को एक ही न्याय के रास्ते में चलानेवाले यम राजा परमात्मा की श्रद्धा-भक्ति से स्तुति करो॥ १॥ ये स्तुतियाँ दृढ़दण्डधारी, सुखदाता, अन्न से पालन करनेवाले, दुष्टों को दण्ड देनेवाले रुद्र के लिए हैं, वे इन स्तुतियों को सुनें॥ १॥ यदि सद्‌गति प्राप्त करना चाहूँ तो स्नेहमय, दयालु प्रभु के बताये मार्ग से जाऊँ, क्योंकि इस हिंसा न करनेवाले, अर्थात् दयाभाव-युक्त परमप्रिय परमेश्वर के कल्याणमय मार्ग से विद्वान् आश्रय पाते हैं॥ ३॥

इससे सिद्ध हो गया कि पापों का क्षमा करना परमेश्वर के न्यायकारी, यम, रुद्र, दयालु आदि गुण-कर्म-स्वभाव के विरुद्ध है, अतः पापमोचन वेद-विरुद्ध होने से सर्वथा मिथ्या है।

(२४९) प्रश्न—स्तुति करने का मतलब ईश्वर के सदृश गुण-कर्म-स्वभाव बनाना है। आपकी दृष्टि में ईश्वर में भी गुण-कर्म हैं। आपको यह भी मालूम है कि गुण जब रहेगा तब किसी आधार में रहेगा और आधार जो होगा वह निःसन्देह साकार होगा। जब आपकी दृष्टि में ईश्वर साकार ही नहीं तो उसमें गुण कैसे ठहरेंगे? —पृ० २६५, पं० ४

उत्तर—बेशक स्तुति करने का प्रयोजन ईश्वर में प्रीति तथा उसके गुण-कर्म-स्वभाव से अपने गुण-कर्म-स्वभाव का सुधारना है और निःसन्देह ईश्वर में गुण और कर्म हैं, क्योंकि—

पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि॥

—वैशे० अ० १, आ० १, सू० ५

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन—ये नौ द्रव्य हैं। इन नौ द्रव्यों में आत्मा भी एक द्रव्य है, और—

क्रियागुणवत्समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम्॥ —वैशे० अ० १, आ० १, सू० १५

जिसमें क्रियागुण या केवल गुण रहें उसको द्रव्य कहते हैं। उनमें से पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, मन और आत्मा—ये छह द्रव्य क्रिया और गुणवाले हैं तथा आकाश, काल और दिशा ये तीन क्रिया से रहित गुणवाले द्रव्य हैं।

इस प्रमाण से आत्मा क्रिया तथा गुणवाला द्रव्य है। आत्मा दो प्रकार का है—जीवात्मा तथा परमात्मा। जीवात्मा तथा परमात्मा दोनों स्वरूप से निराकार हैं। वैसे ही आकाश, दिशा और काल भी स्वरूप से निराकार हैं। जीवात्मा को पुण्य-पापकर्म करने के कारण उनका फल सुखदुःख भोगने के लिए नैमित्तिकरूप से शरीर मिलता है, किन्तु शरीर धारण करने पर भी आत्मा के स्वरूप में फ़र्क नहीं आता, रहता वह निराकार ही है। साकार तो शरीर ही होता है, जीवात्मा नहीं। शरीर के सम्बन्ध से वह सुख-दुःख कर्मफल भोगता है। परमात्मा न पुण्य-पाप कर्म करता है, न उसके फल भोगने के लिए शरीर धारता है। उसके कर्म स्वाभाविक ही हैं। यह ठीक है कि गुण आधार अर्थात् द्रव्य में रहते हैं, किन्तु आधार साकार ही होता है, निराकार नहीं—यह वेद, शास्त्र, दर्शन के विरुद्ध युक्तिशून्य उन्मत्त प्रलाप है। मालूम होता है कि आप दर्शन-ज्ञान से सर्वथा शून्य हैं। वरना यह न लिखते कि आधार साकार ही होता है। देखिए, जैसे निराकार दिशा में परत्व, अपरत्व गुण रहते हैं, काल में भी निराकार होने पर भी पहले, पीछे गुण रहते हैं, निराकार आकाश में शब्द गुण रहता है, निराकार जीवात्मा में शरीररहित होने पर भी मोक्षावस्था में भी ज्ञान-प्रयत्न-आनन्द गुण रहते हैं, वैसे ही निराकार परमात्मा में भी ज्ञान, प्रयत्न, आनन्द, दया, न्याय आदि गुण विद्यमान हैं। देखो यजुर्वेद अध्याय ४० में **'स पर्य्यगात्'** इत्यादि ईश्वर के स्वरूप के प्रतिपादक मन्त्र।

(२५०) प्रश्न—न्यायदर्शन ने उत्क्षेपन, अवक्षेपन, कुञ्चन, प्रसारण, गमन—ये पाँच कर्म माने हैं। क्या ईश्वर में उत्क्षेपन कर्म है। वह किसको उठाकर ऊपर फैंकता है या बराबर में फैंकता है, किसी को लम्बा-चौड़ा करता है या किसी को घिस डालता है, अथवा वह चलता है। उसमें कौन कर्म है? —पृ० २६५, पं० ९

उत्तर—ऊपर-नीचे, दायें-बायें आदि शब्द ईश्वर में प्रयुक्त नहीं हो सकते, क्योंकि वे परिमित वस्तु के लिए प्रयुक्त हो सकते हैं और ईश्वर सर्वत्र परिपूर्ण, व्यापक है। हाँ, जीवों की अपेक्षा से ये शब्द प्रयुक्त हो सकते हैं। सूर्य, चाँद, सितारों को ईश्वर ऊपर को भी चलाता है, नीचे को भी चलाता है, अत: उत्क्षेपण, अवक्षेपन कर्म ईश्वर में हुआ। ईश्वर सृष्टि की उत्पत्ति के समय प्रकृति के बिखरे हुए परमाणुओं को इकट्ठा करता है, इससे कुञ्चन-कर्म ईश्वर में है। प्रलय के समय ईश्वर पृथिवी आदि स्थूल वस्तुओं का नाश करके उनके परमाणुओं को आकाश में बिखेर देता है, इससे ईश्वर में प्रसारण-कर्म है। हाँ, रहा गमन—वह स्वयं नहीं चलता, क्योंकि परिपूर्ण व्यापक में चलना नहीं हो सकता, परन्तु ईश्वर संसार के सम्पूर्ण पदार्थों को नियम में चलाता है, अत: गमन-कर्म उसमें है। इस प्रकार से ईश्वर में पाँचों प्रकार के कर्म वर्त्तमान हैं।

(२५१) प्रश्न—आपने तो ईश्वर को अविज्ञेय और अनिर्वचनीय तथा इच्छारहित माना है। इच्छारहित में कभी कर्म का करना बन सकता है? —पृ० २६५, पं० १२

उत्तर—स्वामीजी ने ईश्वर को अविज्ञेय तथा अनिर्वचनीय माना है, इसका आपने कोई ठिकाना नहीं लिखा कि कहाँ माना है। अविज्ञेय का यदि यह अभिप्राय हो कि बाह्येन्द्रियों से अगोचर है तो ठीक है। यदि आपका अभिप्राय यह हो कि ईश्वर सर्वथा अविज्ञेय है तो यह स्वामीजी का मत नहीं है। स्वामीजी तो उपासना द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार मानते हैं। फिर वे उसे अविज्ञेय कैसे मान सकते हैं? अनिर्वचनीय हम किसी भी पदार्थ को नहीं मानते और न स्वामीजी ने लिखा है। रहा इच्छा का सवाल सो ईश्वर में नहीं है, क्योंकि इच्छा अप्राप्त वस्तु की होती है और परमात्मा को कोई पदार्थ अप्राप्त नहीं है। हाँ, ईश्वर में ईक्षण अर्थात् दर्शन, विचार और कामना हैं जैसाकि आपने भी अपनी पुस्तक के पृ० २३१, पं० १६ में लिखा है। ईश्वर अपने ईक्षण से सृष्टि-उत्पत्ति, प्रलय, कर्मफल देना आदि कर्म करता है इसमें कोई भी आपत्ति नहीं है।

(२५२) प्रश्न—एवं ईश्वर-जैसे गुण मनुष्यों में आवेंगे कैसे? वह सर्वज्ञ है, सर्वव्यापक है, सर्वशक्तिमान् है। आपके मत में शरीररहित है, तो क्या दुनिया के मनुष्य सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् बनकर अपने शरीर को छोड़ दें, ज़हर खाकर मर जावें? —पृ० २६५, पं० १४

उत्तर—आपके दिमाग़ में भी कुछ पागलपन का अंश प्रतीत होता है, वरना स्वामीजी ने यह कहाँ लिखा है कि मनुष्य ईश्वर-जैसा बन जाए? अपितु आपने ही अपनी किताब में पृ० २६४, पं० ६ में सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास ७, पृ० १८२ का पता देकर पाठ नकल किया है, जिसमें लिखा है कि 'स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण-कर्म-स्वभाव से अपने गुण-कर्म-स्वभाव का सुधारना'। बस स्वामीजी के लेखानुसार ईश्वर के प्रत्येक गुण से शिक्षा लेकर मनुष्य अपने गुण-कर्म-स्वभाव का सुधार कर सकता है। जैसे परमात्मा की सर्वज्ञता से यह सुधार करें कि हम अधिक-से-अधिक ज्ञान की प्राप्ति का यत्न करें, थोड़े-से ज्ञान से सन्तुष्ट होकर न बैठ जावें तथा परमात्मा की सर्वव्यापकता से यह सुधार करें कि हम एक ही स्थान में कूपमण्डूक बनकर न बैठे रहें, अपितु देश-देशान्तर में घूमकर विद्या, धन, ऐश्वर्य की वृद्धि करें। परमात्मा की सर्वशक्तिमत्ता से यह सुधार करें कि हम अधिक-से-अधिक शक्ति सम्पादन करके दुष्टों को दण्ड दें, श्रेष्ठों का पालन करें तथा शत्रुओं का पराजय करके चक्रवर्ती राज्य की प्राप्ति का यत्न करें तथा परमात्मा के शरीररहित होने से यह सुधार करें कि जिससे जन्म-मरण से छूट शरीर से रहित

हो परमानन्द को प्राप्त हों। बस, यही स्वामीजी का प्रयोजन है, जिसको आपकी अल्पबुद्धि समझने में असमर्थ रही है।

(२५३) प्रश्न—आपने सत्यार्थप्रकाश में ईश्वर के चार कर्म बतलाये—सृष्टि का रचना, प्रलय का करना, जीव को उसके कर्मानुसार फलदेना, वेद का बनाना। क्या अब ये चारों काम आर्यसमाजी करने लगेंगे? —पृ० २६५, पं० १७

उत्तर—आर्यसमाजी ही नहीं अपितु प्रत्येक मनुष्य ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव से अपने गुण-कर्म-स्वभाव सुधार सकता है। जैसे ईश्वर के सृष्टिरचना-कर्म से मनुष्य यह शिक्षा ले-सकता है कि जैसे ईश्वर ने अग्नि, पानी, मिट्टी, हवा, आकाश—इन पाँच ही तत्त्वों की न्यून-अधिकता के हेर-फेर से संसार की अनेक वस्तुएँ बनाकर अपनी कारीगरी का प्रमाण दिया है, वैसे ही मनुष्य को भी धातु, मिट्टी, पत्थर, लकड़ी, आग, पानी, हवा, आकाश आदि वस्तुओं के मेल से यान आदि अनेक प्रकार की वस्तुएँ बनाकर अपनी कारीगरी का प्रमाण देना चाहिए तथा परमात्मा के प्रलयकर्म से यह शिक्षा लेनी चाहिए कि जैसे परमात्मा इस सृष्टि को पुरानी, शक्तिहीन देखकर इसकी प्रलय करके फिर से उसको नई और शक्तिशाली बनाता है, वैसे ही हम लोगों को भी अपने घर, पुल, चारपाई, रेल के इञ्ज, यन्त्र, कलाएँ इत्यादि सब वस्तुओं को पुरानी तथा शक्तिहीन देखकर उनके पुरज़ों को खोल, ठीक करके फिर से नई तथा शक्तिशाली बना लेना चाहिए। परमात्मा के न्यायपूर्वक सब जीवों को कर्मफल देने से यह शिक्षा लेनी चाहिए कि जैसे परमात्मा निष्पक्षपात होकर न्याय से दुष्टों को दण्ड, श्रेष्ठों का पालन तथा कर्मों का फल देता है, ऐसे ही हमको भी अपने परिवार, माता, पिता, गुरु, आचार्य, पुत्र, पत्नी, भृत्य, प्रजा आदिकों के साथ निष्पक्ष होकर न्यायानुसार पालन, पोषण, शिक्षा, दण्ड आदि व्यवहार उनके कर्मों के अनुसार यथायोग्य करना चाहिए। परमात्मा के वेद-प्रकाश से हमें यह शिक्षा लेनी चाहिए कि जैसे परमात्मा ने सब मनुष्यों के ज्ञानार्थ अपनी कल्याणी वाणी वेद का मनुष्यमात्र के लिए प्रकाश किया है, वैसे ही हम भी वेदविद्या तथा अपनी अन्य भी हर प्रकार की विद्या को मनुष्यमात्र को पढ़ाकर संसार में विद्या तथा ज्ञान की वृद्धि करें। परमात्मा के इन चारों कर्म्मों से शिक्षा लेकर हम इस प्रकार से अपने गुण-कर्म-स्वभाव को सुधार सकते हैं।

(२५४) प्रश्न—स्वभाव नाम तो शरीर का है। **'स्वभवनं स्वभावः'** जो साथ में पैदा हो उसका नाम स्वभाव है। क्या ईश्वर के भी शरीर है? यदि स्वभाव नाम आप आदत का मानें तो ईश्वर-जैसी आदत जीवों की तो नहीं हो सकती, सम्भव है आर्यसमाज़ियों की हो जावे। —पृ० २६५, पं० १९

उत्तर—स्वभाव शब्द के बहुत-से अर्थ हैं। स्वभाव स्वयं किसी वस्तु के नित्य गुण का भी नाम है, जैसे जल में शीतता, पृथिवी में गन्ध, अग्नि में उष्णता। दूसरे, स्वभाव नाम आदत का है। स्वभाव नाम शरीर का तो हो ही नहीं सकता। स्वभाव की व्युत्पत्ति है— **'स्वयं भवतीति स्वभावः'** जो स्वयं ही हो, पैदा हुआ न हो; वह स्वभाव है। जो पैदा होता है वह स्वभाव नहीं अपितु नैमित्तिक होता है। यदि शरीर स्वभाविक हो तो मोक्ष हो ही न सके, अतः शरीर स्वाभाविक नहीं, कर्मों के निमित्त से कर्म-फल-भोगार्थ मिलता है। ईश्वर के न पाप-पुण्यकर्म हैं न उनके भोगार्थ ईश्वर को शरीर धारना पड़ता है, अतः **'स्वभवनं स्वभावः'** का अर्थ भी यही है कि 'स्वयं होना स्वभाव है'। 'साथ में पैदा होना' अर्थ ग़लत है। जब ईश्वर स्वयं पैदा नहीं होता तो उसके साथ पैदा होने के क्या माने [अर्थ]? अतः स्वभाव शरीर का नाम तो है ही नहीं। जीव विषय में स्वभाव का नाम आदत भी हो सकता है, क्योंकि जीव में नैमित्तिक गुण भी होते हैं, किन्तु ईश्वर-विषय में स्वभाव के अर्थ हैं—ईश्वर के नित्य गुण, आदत अर्थ ईश्वर-विषय

में नहीं है। ईश्वर-जैसे गुण-कर्म-स्वभाव जीव के नहीं हो सकते, अपितु जीव ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव से शिक्षा लेकर अपने गुण-कर्म-स्वभाव सुधार सकता है।

(२५५) प्रश्न—फिर आपने यह किस आधार पर माना कि स्तुति करने का मतलब यही है कि ईश्वर के सदृश जीव के गुण-कर्म-स्वभाव हो जाना? स्वभाविक धर्म किसी का बदलता नहीं। नीम में कटुत्व और नींबू में खट्टापन, कोयले में स्याही, नमक में खारापन, ऊख में मिठास कभी बदलते हैं? आप बातें कैसी करते हैं? —पृ० २६५, पं० २३

उत्तर—यह सिद्धान्त वेद से ही लिया गया है कि ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव से अपने गुण-कर्म-स्वभाव में सुधार किया जावे। हम इस विषय में वेद के प्रमाण उपस्थित करते हैं—

ईश्वर के अनन्त गुण— **नहि नु ते महिमानः समस्य न मघवन्मघवत्त्वस्य विद्म।**
न राधसो राधसो नूतनस्येन्द्र नकिर्ददृश इन्द्रियं ते॥ —ऋ० ६।२७।३

ईश्वर के कर्म— **विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।**
इन्द्रस्य युज्यः सखा॥ —ऋ० १।२२।१९

ईश्वर के गुण-कर्म का अनुकरण— **तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमीस वीर्यं मयि धेहि बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि।** —यजुः० १९।९

पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन। स्तोतारस्त इह स्मसि॥ —यजुः० ३४।४१

भाषार्थ—हे ऐश्वर्यसम्पन्न इन्द्र! तेरे सम्पूर्ण गुणों का ज्ञान हमें नहीं है। तेरे ऐश्वर्य का भी पूर्ण ज्ञान हम नहीं कर सकते। तेरी नूतन-नूतन सिद्धियों का भी हमें ज्ञान नहीं है। भगवन्! तेरी शक्तियों का भी हमें दर्शन नहीं हुआ है॥ ३॥ सर्वव्यापक ईश्वर के ये सब कर्म देखिए, जिससे व्रतों को, अर्थात् धर्म नियमों को जाना जाता है। वह जीवात्मा का योग्य मित्र है॥ १९॥ हे सकल शुभ गुणों के भण्डार ईश्वर! जो तुझमें तेज है उस तेज को मुझमें धारण कीजिए। जो तुझमें पराक्रम है उस पराक्रम को मुझमें धरिये। जो तुझमें बल है उस बल को मुझमें भी धरिये। जो तुझमें सामर्थ्य है उस सामर्थ्य को मुझमें धरिये। जो तुझमें दुष्टों पर क्रोध है उस क्रोध को मुझमें धरिये। जो तुझमें सहनशीलता है उस सहनशीलता को मुझमें भी धारण कीजिए॥ ९॥ हे पुष्टिकारक परमेश्वर! हम लोग आपके स्वभाव वा नियम में ऐसे वर्त्तें कि जिससे कभी भी हमारे चित्त न बिगड़ें। इस जगत् में आपके स्तुति करनेवाले होते हुए हम सुखी होते हैं॥ ४१॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के अनुकूल वर्त्तते हैं वे कभी नष्ट सुखवाले नहीं होते॥ ४१॥

कैसे स्पष्ट शब्दों में वेद ने ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव से अपने गुण-कर्म-स्वभाव सुधारने का उपदेश दिया है और स्तुति का प्रयोजन बतलाया है!

बेशक किसी वस्तु के स्वाभाविक गुण का नाश नहीं होता, किन्तु नैमित्तिक गुणों का प्रवेश भी पदार्थों में होता है। जैसे जल का स्वाभाविक गुण शीतता है, किन्तु आग पर उबालने से वह इतना गर्म हो जाता है कि मनुष्य पर पड़ जावे तो जला देता है। इससे उसका स्वाभाविक गुण शीतलता नष्ट नहीं होता, क्योंकि ऐसी अवस्था में भी आग को बुझा देता है, किन्तु आग के संयोग से उसमें गर्मी आ जाती है। इस प्रकार से नीम, नींबू, आम, नारंगी आदि वृक्षों में भी एक-दूसरे के साथ पैवन्द लगाने से एक-दूसरे के नैमित्तिक गुण प्रवेश कर जाते हैं। कोयला आग के संयोग से आग की भाँति चमकने लगता है। इसी भाँति नमक और गुड़ में भी दूसरी वस्तुओं के संयोग से नैमित्तिक गुणों का प्रवेश हो जाता है। जैसे प्रत्येक पदार्थ में अपने स्वाभाविक गुण रहते हुए

भी दूसरे पदार्थों के संयोग से नैमित्तिक गुण आ जाते हैं, ऐसे ही जीवात्मा अपने स्वाभाविक गुणों को स्थिर रखते हुए भी परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव से शिक्षा लेकर अपने गुण-कर्म-स्वभाव में नैमित्तिक सुधार कर सकता है। आप कैसी बहकी-बहकी बातें करते हैं? क्या आपको पदार्थों में नैमित्तिक गुणों के आ-जाने का भी ज्ञान नहीं है?

(२५६) प्रश्न—आप लिखते हैं कि 'प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहायता का मिलना', 'उपासना से परम ब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना'। प्रार्थना से जो आपने सहाय का मिलना माना है, यह सहाय कौन देगा? आप लिखते हैं कि यदि ईश्वर पापों को क्षमा कर दे तो वह दयालु न रहे। हम भी यही कहेंगे कि ईश्वर प्रार्थना से सहाय करता है तो वह दयालु नहीं रहा, क्योंकि जिन्होंने प्रार्थना की उनको सहाय दी और जिन्होंने नहीं की वे टका-से रह गये। प्रार्थना की रिश्वत खानेवाला ईश्वर कभी दयालु हो नहीं सकता। यह आप ही का सिद्धान्त था कि पाप क्षमा कर देने से ईश्वर दयालु नहीं रहता। —पृ० २६५, पं० २८

उत्तर—कर्म तीन प्रकार के हैं—मानसिक, वाचिक तथा शारीरिक, इसलिए प्रार्थना भी मानसिक तथा वाचिका कर्म है। यदि प्रार्थना धर्मानुकूल है तो उसे शुभ कर्म तथा यदि प्रार्थना धर्म के प्रतिकूल है तो उसे अशुभ कर्म माना जावेगा। अशुभ प्रार्थनारूप कर्म का फल मन तथा वाणी के द्वारा अशुभ मिलेगा तथा शुभ प्रार्थनारूप कर्म का फल मन-वाणी द्वारा शुभ मिलेगा। इसी का नाम सहायता है और वह सहायता भी कर्मों का फल है। परमेश्वर अपनी तरफ़ से बिना कर्म के सहायतारूप फल नहीं देता, अतः उसके दयालु होने में कोई दोष नहीं आता, क्योंकि जो शुभ प्रार्थना करता है उसे शुभ फल मिलता है, जो अशुभ प्रार्थना करता है उसको अशुभ फल मिलता है और जो नहीं करता उसको फल नहीं मिलता। इससे ईश्वर पर पक्षपात या रिश्वत का कोई दोष नहीं आता। चूँकि प्रार्थनारूप कर्म मन-वाणी तक ही सीमित है, अतः उसका फल भी मन-वाणी तक ही सीमित रहेगा। उस प्रार्थना का शारीरिक फल तभी मिलेगा यदि वह उस प्रार्थना के अनुकूल शारीरिक कर्म करेगा, अन्यथा शारीरिक फल न मिलेगा। इसी बात का स्वामीजी ने यजुर्वेद अध्याय ३ मन्त्र २९ के भाष्य में इन शब्दों में वर्णन किया है—'मनुष्य लोग जैसी परमेश्वर की प्रार्थना करें वैसा ही उनको पुरुषार्थ भी करना चाहिए, जैसे विद्या आदि धनवाला परमेश्वर है ऐसा विशेषण ईश्वर का कह वा सुनकर कोई मनुष्य कृतकृत्य अर्थात् विद्यादि धनवाला नहीं हो सकता, किन्तु अपने पुरुषार्थ से विद्या आदि धन की वृद्धि वा रक्षा निरन्तर करनी चाहिए।'

हाँ, पापकर्मों को क्षमा करने से ईश्वर अवश्य दयालु न रहेगा, क्योंकि पापियों को दण्ड न देने से लोगों को पाप करने में उत्साह होगा तथा पापियों ने जिनपर अत्याचार किया है उनके साथ अन्याय होने से दयालुता नष्ट हो जावेगी, अतः पापमोचन की बात सर्वथा सिद्धान्त-विरुद्ध है।

(२५७) प्रश्न—आप उपासना से ईश्वर-मेल बतलाते हैं, ग़ज़ब कर रहे हैं। समुद्र में मिला हुआ गङ्गाजल कभी पृथक् नहीं हो सकता, फिर आप यहाँ जीव-ब्रह्म का मेल करके अपने लिखे मुक्ति से पुनरागमन का क्यों कचूमर निकाल रहे हैं? —पृ० २६६, पं० ७

उत्तर—स्वामीजी उपासना में ईश्वर तथा जीव का समुद्र और गङ्गाजल की भाँति मेल नहीं मानते अपितु उपासना में जीव-ईश्वर का मछली-जल की भाँति मेल मानते हैं। जीव और ईश्वर उपासना में स्वरूप से भिन्न-भिन्न रहते हैं, किन्तु उपास्य-उपासकभाव से प्रेम में एक हो जाते हैं, अतः मोक्ष से पुनरावृत्ति के सिद्धान्त में कोई दोष नहीं आता।

(२५८) प्रश्न—फिर आप ईश्वर का साक्षात्कार होना भी मानते हैं। क्या ईश्वर शरीरी है

जिसका साक्षात्कार होगा? साक्षात्कार इन्द्रिय और मन से होता है, ये सब साकार हैं। इस कारण ये साकार का ही साक्षात्कार कर सकते हैं। आपने ईश्वर का साक्षात्कार लिखकर यहाँ पर ईश्वर निराकार है, इस सिद्धान्त को रगड़ डाला है। —पृ० २६६, पं० १०

उत्तर—यहाँ पर साक्षात्कार से स्वामीजी का मतलब इन्द्रिय-प्रत्यक्ष से नहीं है, अपितु स्वामीजी का मतलब आत्मानुभव से है। चूँकि आत्मा भी निराकार है और परमात्मा भी निराकार है, अतः निराकार आत्मा निराकार परमात्मा का अनुभव करता है, इससे ईश्वर निराकार है इस सिद्धान्त पर कोई आक्षेप नहीं आता।

(२५९) प्रश्न—आपने यह खूब लिखा कि 'जो केवल भाँड के समान ईश्वर की स्तुति करता है', ईश्वर-स्तुति करनेवालों को भाँड की उपमा देनेवाला या तो नास्तिक चार्वाक हुआ था या आप हुए। —पृ० २६६, पं० १५

उत्तर—आपने स्वामीजी के आधे लेख को चुरा लिया। पूरा पाठ इस प्रकार है—'इसका फल यह है कि जैसे परमेश्वर के गुण हैं, वैसे गुण-कर्म-स्वभाव अपने भी करना। जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवे और जो केवल भाँड के समान परमेश्वर के गुण-कीर्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता, उसकी स्तुति करना व्यर्थ है'। अब साफ़ हो गया कि स्वामीजी कहते हैं कि मनुष्य को स्तुति के अनुकूल अपना आचरण भी बनाना चाहिए। जो मनुष्य ईश्वर की स्तुति तो करता है, किन्तु अपने चरित्र को नहीं सुधारता वह केवल भाँड के समान ही है, उसको स्तुति करने का कोई लाभ नहीं है। यही बात गरुडपुराण प्रेतखण्ड, धर्मकाण्ड अ० ४९ में भी लिखी है, जैसे—

नाममात्रेण सन्तुष्टाः कर्मकाण्डरता नराः। मन्त्रोच्चारणहोमाद्यैर्भ्रामिताः क्रतुविस्तरैः॥ ६०॥
संसारजसुखासक्तं ब्रह्मज्ञोऽस्मीति वादिनम्। कर्मब्रह्मोभयभ्रष्टं तं त्यजेदन्त्यजं यथा॥ ६४॥

भाषार्थ—जो लोग नाम अर्थात् ईश्वरस्तुतिमात्र से सन्तुष्ट हैं, और केवल मन्त्रोच्चारण, होम आदि यज्ञों के विस्तार में भ्रमते हैं॥ ६०॥ और जो मनुष्य संसार के सुखों में फँसा हुआ कहता है कि 'मैं ब्रह्म हूँ', ऐसे कर्म तथा ब्रह्म दोनों से भ्रष्ट हुए मनुष्य को अन्त्यज की भाँति छोड़ देना चाहिए॥ ६४॥

कहिए महाराज! क्या गरुडपुराण के कर्त्ता को भी आपके दरबार से चार्वाक की पदवी मिलेगी? यदि नहीं तो स्वामीजी का लेख सर्वथा सत्य है कि चरित्र-सुधार के बिना ईश्वर स्तुति केवल भाँड के सदृश ही है।

(२६०) प्रश्न—आपने यह लिखा है कि 'ऐसी स्तुति कभी न करनी चाहिए कि मेरे शत्रुओं का नाश हो और मेरे धन हो एवं मैं प्रतिष्ठावान् बनूँ' इससे तो यही जाना जाता है कि आपने कभी स्वप्न में भी वेद नहीं देखे। जो मन्त्र हमने दिये हैं, उनमें शत्रुओं के नाश और धनी होने की प्रार्थना स्पष्ट लिखी है। क्या आपकी दृष्टि में इन मन्त्रों के बनानेवाले जगदीश्वर की बेसमझी तो नहीं है? —पृ० २६६, पं० १७

उत्तर—आपने यहाँ पर भी स्वामीजी के लेख को आगे-पीछे से चुराकर बीच में से अधूरा पाठ दे दिया है। जबतक पूरा पाठ न हो परिणाम ठीक नहीं निकल सकता। स्वामीजी के पूरे पाठ का अभिप्राय यह है कि बिना पुरुषार्थ के इस प्रकार की प्रार्थनाएँ व्यर्थ हैं। परमेश्वर इनको नहीं सुनता। परमेश्वर उसी की प्रार्थना सुनता है जो पुरुषार्थ करता है। पूरा पाठ इस प्रकार है—

''जो मनुष्य जिस बात की प्रार्थना करता है उसको वैसा ही वर्त्तमान भी करना चाहिए, अर्थात् जैसे सर्वोत्तम बुद्धि की प्राप्ति के लिए परमेश्वर की प्रार्थना करे उसके लिए जितना अपने से प्रयत्न हो सके उतना किया करे, अर्थात् अपने पुरुषार्थ के उपरान्त प्रार्थना करनी योग्य है। ऐसी प्रार्थना

कभी न करनी चाहिए और न परमेश्वर उसको स्वीकार करता है कि—जैसे हे परमेश्वर! आप मेरे शत्रुओं का नाश, मुझको सबसे बड़ा, मेरी ही प्रतिष्ठा और मेरे अधीन सब हो जाएँ इत्यादि, क्योंकि जब दोनों शत्रु एक-दूसरे के नाश के लिए प्रार्थना करें तो क्या परमेश्वर दोनों का नाश कर दे? जो कोई कहे कि जिसका प्रेम अधिक उसकी प्रार्थना सफल हो जावे तब हम कह सकते हैं कि जिसका प्रेम न्यून हो उसके शत्रु का भी न्यून नाश होना चाहिए। ऐसी मूर्खता की प्रार्थना करते-करते कोई ऐसी भी प्रार्थना करेगा कि हे ईश्वर! आप मुझको रोटी बनाकर खिलाइए, मेरे मकान में झाड़ू लगाइए, वस्त्र धो दीजिए और खेती-बाड़ी भी कीजिए। इस प्रकार जो परमेश्वर के भरोसे आलसी होकर बैठे रहते हैं वे महामूर्ख हैं, क्योंकि जो परमेश्वर की पुरुषार्थ करने की आज्ञा है उसको जो कोई तोड़ेगा वह सुख कभी न पावेगा। जैसे—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः॥ —यजुः० अ० ४०। मं० २

परमेश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्य सौ वर्षपर्यन्त, अर्थात् जबतक जीवे तबतक कर्म करता हुआ जीने की इच्छा करे, आलसी कभी न हो।

देखो, सृष्टि के बीच में जितने प्राणी अथवा अप्राणी हैं, वे सब अपने-अपने कर्म करते ही रहते हैं। जैसे पिपीलिका आदि सदा प्रयत्न करते, पृथिवी आदि सदा घूमते और वृक्ष आदि सदा बढ़ते-घटते रहते हैं वैसे यह दृष्टान्त मनुष्यों को भी ग्रहण करना योग्य है। जैसे पुरुषार्थ करते हुए पुरुष का सहाय दूसरा भी करता है वैसे धर्म से पुरुषार्थी पुरुष का सहाय ईश्वर भी करता है। जैसे काम करनेवाले पुरुष को भृत्य करते (रखते) हैं और अन्य आलसी को नहीं, देखने की इच्छा करने और नेत्रवाले को दिखलाते हैं अन्धे को नहीं, इसी प्रकार परमेश्वर भी सबके उपकार करने की प्रार्थना में सहायक होता है, हानिकारक कर्म में नहीं। जो कोई गुड़ मीठा है ऐसा कहता है उसको गुड़ प्राप्त वा उसको स्वाद प्राप्त कभी नहीं होता और जो यत्न करता है उसको शीघ्र वा विलम्ब से गुड़ मिल ही जाता है। —सत्यार्थप्रकाश, सप्तमसमुल्लास

इस पाठ से पता लगता है कि स्वामीजी का अभिप्राय यह है कि धर्मानुकूल सबके उपकारार्थ प्रार्थना में ईश्वर सहायक होता है, अधर्म से युक्त स्वार्थ की प्रार्थना में ईश्वर सहायक नहीं होता, अतः यदि मनुष्य धर्म के विरोधी शत्रुओं के नाश की प्रार्थना करे और परोपकार के लिए धन की प्रार्थना करे तथा प्रजा की रक्षार्थ प्रतिष्ठावान् बनने की प्रार्थना करे तो इस प्रकार की प्रार्थना धर्मानुकूल है, करनी चाहिए तथा पुरुषार्थ करना चाहिए, ईश्वर सहायक होंगे, किन्तु इसके विपरीत वैयक्तिक शत्रुता में शत्रु के नाश की तथा स्वार्थ के लिए धन की और प्रजा को दुःख देने के लिए प्रतिष्ठावान् बनने की प्रार्थना न करनी चाहिए और न परमात्मा ऐसी प्रर्थनाओं को स्वीकार करके सहायता करता है और पुरुषार्थ से हीन किसी प्रकार की भी प्रार्थना व्यर्थ है। वेदमन्त्रों में जो शत्रुओं के नाश तथा धनप्राप्ति की प्रार्थनाएँ हैं, वे सब धर्म के शत्रुओं के नाश तथा परोपकारार्थ धन-प्राप्ति की प्रार्थनाएँ हैं। वैयक्तिक शत्रुता से शत्रु के नाश तथा स्वार्थ के लिए धन की प्रार्थना नहीं है, अतः स्वामीजी ने पुरुषार्थपूर्वक धर्म के शत्रुओं के नाश करने, परोपकारार्थ धनप्राप्ति की प्रार्थनाओं का अनुमोदन तथा आलस्यपूर्वक वैयक्तिक शत्रुता में शत्रुओं के नाश की तथा स्वार्थ के लिए धनप्राप्ति की प्रार्थनाओं का बलपूर्वक खण्डन किया है।

(२६१) प्रश्न—यह आपने खूब लिखा कि हमको रोटी बनाकर खिलाइए, ऐसा तो आपने ही किया होगा। —पृ० २६६, पं० २५

उत्तर—स्वामीजी ने केवल प्रार्थना पर भरोसा रखनेवाले पुरुषार्थहीन लोगों की मनोवृत्ति का खण्डन किया है ताकि लोग धर्मानुकूल प्रार्थना के साथ पुरुषार्थ भी किया करें, वरना प्रार्थना पर भरोसा करनेवाले आलसी बहुत हैं, जैसे बाबा अटल के पुजारी—

बाबा टल्ल! पकी-पकाई घल्ल

का नारा लगाते हैं। तथा राम के भक्त कहते हैं—

राम राम का नाम लो, रहो खाट पर सोय।
अनहोनी होनी नहीं, होनी हो सो होय॥

और कृष्ण के भक्त इस प्रकार आलस्य का प्रचार करते हैं कि—

ऐहिकं तु सदा भाव्यं पूर्वचरितकर्मणा॥ २६॥
आमुष्मिकं तथा कृष्णः स्वयमेव करिष्यति।
अतो हि तत्कृते त्याज्यः प्रयत्नः सर्वथा बुधैः॥ २७॥

—पद्मपुराण पातालखण्ड अध्याय ८२

भाषार्थ—वर्त्तमान में तो सदा वही होगा जो पूर्वकर्म का फल है॥ २६॥ भविष्य के लिए स्वयं कृष्णजी करेंगे, अतः उसके लिए बुद्धिमानों को यत्न का त्याग कर देना चाहिए॥ २७॥

यह है आलस्यवाद जिसका खण्डन करके स्वामीजी पुरुषार्थ का प्रचार करना चाहते थे।

(२६२) प्रश्न—अनेक ईश्वरभक्त हुए हैं कौन कहता है कि ये सब आलसी थे? आलसी तो आप हैं जो ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना से ही पिण्ड छुड़ा रहे हैं। —पृ० २६६, पं० २५

उत्तर—वैदिक ईश्वरभक्त ऋषि-महर्षि जितने हुए हैं वे सब पुरुषार्थी थे, क्योंकि वेद पुरुषार्थ की शिक्षा देता है; किन्तु जितने भी पौराणिक भक्त हुए हैं वे सभी आलसी थे, क्योंकि पुराण आलस्य की शिक्षा देते हैं और पौराणिकों का परमेश्वर भी अजीब है—धन्ना भक्त के कट्टे-बच्छे चराने लगा, तो नरसी की हुण्डी ही तार दी, द्रौपदी का चीर बढ़ा दिया इत्यादि आलस्य की सैकड़ों मिसालें हैं। आज भी आलसी पौराणिक आलस्य में पड़े कृष्ण की प्रतीक्षा में व्याकुल हैं कि—

'बंशी वालिया काहना तेरे आवन दी लोड।'

इस प्रत्यक्ष में और प्रमाण की आवश्यकता ही क्या है? रही स्वामीजी की बात! वे स्तुति, प्रार्थना करने का निषेध नहीं करते अपितु 'केवल स्तुति-प्रार्थना के भरोसे पर न रहो साथ में पुरुषार्थ भी करो'—यह उपदेश करते हैं।

(२६३) प्रश्न—आपने यह भी अच्छा न्याय किया कि ईश्वर भक्तों के पापों को क्षमा ही नहीं करता। यदि ऐसा है तो फिर ईश्वर के मानने की क्या आवश्यकता? —पृ० २६६, पं० २८

उत्तर—आपके न मानने से ईश्वर की हस्ती थोड़ा ही मिट सकती है। ईश्वर मोम की नाक नहीं है कि जैसा आप चाहें वैसा ही करे; उसके नियम हैं, वह नियम के अनुसार सृष्टि को चला रहा है। उसकी आवश्यकता है सृष्टि-उत्पत्ति के लिए, वेद का ज्ञान प्रकाशित करने के लिए तथा श्रेष्ठों का पालन और दुष्टों को पापकर्म का फल देने के लिए। वह पापों को क्षमा करके अन्याय का भागी नहीं बन सकता। स्वामी दयानन्दजी भी यही लिखते हैं कि—

"**(प्रश्न)**—ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है वा नहीं?

(उत्तर)—नहीं, क्योंकि जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट हो जाए और सब मनुष्य महापापी हो जाएँ, क्योंकि क्षमा की बात सुनके ही उनको पाप करने में निर्भयता और उत्साह हो जाए। जैसे राजा अपराध को क्षमा कर दे तो वे उत्साहपूर्वक अधिक-अधिक बड़े-बड़े पाप करें, क्योंकि राजा अपना अपराध क्षमा कर देगा और उनको भी भरोसा हो जाए कि राजा से हम हाथ जोड़ने आदि चेष्टा कर अपने अपराध छुड़ा लेंगे और जो अपराध नहीं करते वे भी अपराध करने से न डरकर पाप करने में प्रवृत्त हो जावेंगे, इसलिए सब कर्मों का फल यथावत्

देना ही ईश्वर का काम है, क्षमा करना नहीं।'' —सत्यार्थ० सप्तमसमु०

अतः सिद्ध हुआ कि पापमोचन का सिद्धान्त वेदविरुद्ध और मिथ्या है।

(२६४) प्रश्न—'त्वं हि विश्वतो मुखः' इत्यादि [ऋ० १।७।५।६] मन्त्र आर्याभिविनय में नं० ३९ पर देकर पाप नष्ट होने की प्रार्थना की है।

—पृ० २६७, पं० ७ [सरल पता १।९७।६—सं०]

उत्तर—यहाँ पर भी किये हुए पापकर्मों के फल अर्थात् पापमोचन की प्रार्थना नहीं है अपितु अपनी पाप करने की वृत्तियों को नष्ट करने की प्रार्थना है। वेदमन्त्र तथा उसका अर्थ यों है—

त्वं हि विश्वतो मुखः विश्वतः परिभूरसि। अप नः शोशुचदघम्॥ —ऋ० १।७।५।६

भाषार्थ—हे अग्ने! परमात्मन्! आप ही सब जगत् में, सब ठिकानों में व्याप्त हो, अतएव आप विश्वतोमुख हो। हे सर्वतोमुखाग्ने! स्वशक्ति से सब जीवों के हृदय में सत्योपदेश नित्य ही कर रहे हो, वही आपका मुख है। कृपालो! आपकी इच्छा से हमारा पाप (पाप करने का स्वभाव) सब नष्ट हो जाए, जिसे हम लोग निष्पाप (पाप करने के स्वभाव से रहित) होके आपकी भक्ति और आज्ञापालन में नित्य तत्पर रहें॥ ६॥

इसी प्रकार वेद के जितने भी मन्त्रों में यह आता है कि 'हे ईश्वर! आप हमारे पापों का नाश कर दें', उसका यही अभिप्राय है कि ईश्वर हमारे पाप करने के स्वभाव का नाश कर दे, ताकि हम भविष्य में पाप करने की आदत से मुक्त होकर पुण्यकर्म करें। वेदों में किये हुए कर्मों के फल का वा किये हुए कर्मों का नाश या क्षमा या पापमोचन का कहीं भी वर्णन नहीं है, अपितु परमात्मा को न्यायकारी, रुद्र अर्थात् दुष्टों को दण्ड देकर रुलानेवाला, यम अर्थात् दुष्टों को नियम में रखनेवाला, मन्यु अर्थात् दुष्टों पर क्रोध करनेवाला वर्णन किया गया है, अतः किये हुए पापकर्मों का क्षमा करना ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के विरुद्ध होने से पापमोचन की कल्पना सर्वथैव मिथ्या है। वैदिक सिद्धान्त यही है कि पाप की वृत्तियों को दूर करने की प्रार्थना तथा तदनुकूल प्रयत्न किया जावे, जैसेकि—

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव॥ —यजुः० ३०।३

हे सुख देनेवाले देव! हे जगदुत्पादक प्रभो! हमारे सम्पूर्ण दुर्गुणों को दूर कीजिए और जो शुभ गुण हैं वे हमको प्राप्त कराइए।

इस मन्त्र के द्वारा मानो जीव प्रार्थना करता हुआ प्रतिज्ञा करता है कि मैं आज से अपने जीवन से दुर्गुणों को निकालकर शुभ गुणों को धारण करने का यत्न करूँगा, आप मेरी सहायता करें। ऐसा ही सर्वत्र समझना चाहिए।

नामस्मरण-महत्त्व

(२६५) प्रश्न—'कस्य नूनम्' इत्यादि [ऋ० १।२४।१] इस मन्त्र में परमात्मा के नामस्मरण का वर्णन है। —पृ० २६७, पं० २

उत्तर—इस मन्त्र में नामस्मरण का वर्णन नहीं है, अपितु इसमें तथा इससे अगले मन्त्र में मोक्ष से पुनरावृत्ति का वर्णन है। इस मन्त्र में प्रश्न तथा इससे अगले मन्त्र में उत्तर हैं। हम दोनों मन्त्रों का ठीक-ठीक अर्थ लिख देते हैं—

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च॥ १॥
अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च॥ २॥ —ऋ० १।२४।१-२

भाषार्थ—हम लोग किसका नाम पवित्र जानें? कौन नाशरहित पदार्थों के मध्य में वर्त्तमान देव सदा प्रकाशस्वरूप है जो हमें मुक्ति का सुख देकर पुनः इस संसार में जन्म देता और माता तथा पिता का दर्शन कराता है?॥ १ ॥ हम इस स्वप्रकाशस्वरूप अनादि, सदा मुक्त परमात्मा का नाम पवित्र जानें, जो हमें मुक्ति में आनन्द देकर पृथिवी पर पुनः माता-पिता के सम्बन्ध में जन्म देकर माता-पिता का दर्शन कराता है। वही परमात्मा मुक्ति की व्यवस्था करता है, सबका स्वामी है॥ २ ॥

इन दोनों मन्त्रों में परमात्मा के नाम को पवित्र तो वर्णन किया है, किन्तु नाम के स्मरण का वर्णन नहीं है। नामस्मरण का मन्त्र हम नीचे पेश करते हैं—

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳशरीरम्। ओ३म् क्रतो स्मर। क्लिबे स्मर। कृतꣳस्मर॥

—यजुः० ४०।१५

भाषार्थ—हे कर्म करनेवाले जीव! तू ओम् नाम परमात्मा का स्मरण कर, सामर्थ्य के लिए किये हुए कर्म का स्मरण कर, प्राणवायु, अपानवायु, तथा परमात्मा को प्राप्त हो। यह शरीर अन्त में भस्म होनेवाला है॥ १५ ॥

इस मन्त्र में निम्न आज्ञाएँ हैं—

(१) ओम् नामक परमात्मा का स्मरण कर।

(२) अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए उसको याद कर।

(३) किये हुए कर्म को याद कर।

(४) प्राण-अपान को वश में करके परमात्मा को प्राप्त कर।

(५) अन्त में शरीर भस्म होनेवाला है।

चूँकि शरीर नाश होनेवाला है, इसलिए परमात्मा को याद रखकर शुभ कर्म कर, प्राणायाम द्वारा सामर्थ्य बढ़ाकर परमात्मा को प्राप्त कर।

इस मन्त्र में केवल नामस्मरण की आज्ञा नहीं है, अपितु शुभ कर्म करते हुए ओम् नाम के स्मरण द्वारा परमात्मा की प्राप्ति की आज्ञा है। इसी बात का ऋषि दयानन्दजी ने भी प्रतिपादन किया है कि—

''और नामस्मरणमात्र से कुछ फल नहीं होता। जैसाकि मिश्री-मिश्री कहने से मुँह मीठा और नीम-नीम कहने से कड़वा नहीं होता, किन्तु जीभ से चखने ही से मीठा वा कड़वापन जाना जाता है।

प्रश्न—क्या नाम लेना सर्वथा मिथ्या है जो सर्वत्र पुराणों में नामस्मरण का बड़ा माहात्म्य लिखा है?

उत्तर—नाम लेने की तुम्हारी रीति उत्तम नहीं। जिस प्रकार तुम नामस्मरण करते हो वह रीति झूठी है।

प्रश्न—हमारी कैसी रीति है?

उत्तर—वेदविरुद्ध।

प्रश्न—भला अब आप हमको वेदोक्त नामस्मरण की रीति बतलाइए?

उत्तर—नामस्मरण इस प्रकार करना चाहिए, जैसे '**न्यायकारी**' ईश्वर का एक नाम है, इस नाम से जो इसका अर्थ है कि जैसे पक्षपातरहित होकर परमात्मा सबका यथावत् न्याय करता है वैसे उसको ग्रहण कर न्याययुक्त व्यवहार सर्वदा करना, अन्याय कभी न करना। इस प्रकार एक नाम से भी मनुष्य का कल्याण हो सकता है।'' —सत्यार्थप्रकाश, एकादशसमुल्लास

इससे सिद्ध हुआ कि परमात्मा की आज्ञानुसार शुभ कर्म करना ही परमात्मा का नामस्मरण

है। शुभ कर्म के बिना केवल नाम का रटना व्यर्थ है।

(२६६) प्रश्न—'ओमित्येतदक्षरम्' इत्यादि [छान्दो० १।१] इसमें ओ३म् के जप करने की आज्ञा पाई जाती है। —पृ० २६८, पं० ४

उत्तर—वेदप्रमाण देने की प्रतिज्ञा करके छान्दोग्य उपनिषत् का प्रमाण देना यह आपकी ईमानदारी का नमूना है! क्या छान्दोग्य वेद है? फिर न मालूम आपने यह प्रमाण किस मतलब से दिया है, क्योंकि इसमें नामस्मरण की शिक्षा ही नहीं है। भला इस पाठ में जप करना कौन-से पद का अर्थ है? लीजिए, हम इसका अर्थ कर देते हैं—

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत॥ —छान्दो० १।१।१

भाषार्थ—ओम् जिसका नाम है और जो कभी नष्ट नहीं होता उसकी उपासना करनी योग्य है, अन्य की नहीं॥ १॥

इसमें एक परमात्मा की पूजा का विधान है। परमात्मा से भिन्न अन्य की पूजा का निषेध है। इस मन्त्र में यह शिक्षा नहीं है कि केवल ओम् नामस्मरण से ही मोक्ष हो जाता है। आप कोई ऐसा वेद का प्रमाण पेश करें जिससे यह पौराणिक सिद्धान्त सिद्ध हो सके कि केवल नामोच्चारण से ही मोक्ष हो जाता है। हम ईश्वर-स्तुति को मानते हैं, किन्तु केवल स्तुति से कोई फल नहीं जबतक तदनुकूल चरित्रसुधार न हो, जैसे—

प्रश्न—परमेश्वर की स्तुति-प्रार्थना और उपासना करनी चाहिए वा नहीं?

उत्तर—करनी चाहिए।

प्रश्न—क्या स्तुति आदि करने से ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति-प्रार्थना करनेवाले का पाप छुड़ा देगा?

उत्तर—नहीं।

प्रश्न—तो फिर स्तुति-प्रार्थना क्यों करना?

उत्तर—उनके करने का फल अन्य ही है।

प्रश्न—क्या है?

उत्तर—स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण-कर्म-स्वभाव से अपने गुण-कर्म-स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना।

प्रश्न—इनको स्पष्ट करके समझाओ।

उत्तर—ईश्वर की स्तुति, जैसे—

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥

—यजुः० अ० ४०, मं० ८

वह परमात्मा सबमें व्यापक, शीघ्रकारी और अनन्त बलवान् है। वह शुद्ध, सर्वज्ञ, सबका अन्तर्यामी, सर्वोपरि विराजमान, सनातन, स्वयंसिद्ध परमेश्वर अपनी जीवरूप सनातन अनादि प्रजा को अपनी सनातन विद्या से यथावत् अर्थों का बोध वेद द्वारा कराता है—यह सगुण स्तुति, अर्थात् जिस-जिस गुण से सहित परमेश्वर की स्तुति करना—वह सगुण, **(अकाय)** अर्थात् वह कभी शरीर-धारण वा जन्म नहीं लेता, जिसमें छिद्र नहीं होता, नाड़ी आदि के बन्धन में नहीं आता और कभी पापाचरण नहीं करता, जिसमें क्लेश, दुःख, अज्ञान कभी नहीं होता—इत्यादि जिस-जिस राग-द्वेषादि गुणों से पृथक् मानकर परमेश्वर की स्तुति करना है वह निर्गुण स्तुति है। इसका

फल यह है कि जैसे परमेश्वर के गुण हैं वैसे गुण-कर्म-स्वभाव अपने भी करना। जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवे और जो केवल भाँड के समान परमेश्वर के गुण-कीर्त्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसकी स्तुति करना व्यर्थ है।

—सत्यार्थप्रकाश, सप्तमसमुल्लास

इसी बात को वेद भगवान् वर्णन करते हैं कि न केवल कर्म और न केवल उपासना=ब्रह्मज्ञान ही मोक्ष का हेतु है अपितु दोनों इकट्ठे होकर मोक्ष का हेतु हैं, जैसे—

अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽविद्यामुपासते। ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाᳬरताः ॥ १२ ॥
विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयᳬसह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥ १४ ॥

—यजुः० ४०।१२, १४

भाषार्थ—वे लोग अन्धकार में प्रविष्ट होते हैं जो केवल कर्म की उपासना करते हैं, और वे उससे भी अधिक अन्धकार में प्रविष्ट होते हैं जो केवल उपासना=ज्ञान को ही मोक्ष-साधन मानते हैं ॥ १२ ॥ जो मनुष्य ज्ञान तथा कर्म को साथ ही साथ इकट्ठा करना जानता है, वह कर्म से मृत्यु के भय को तरकर ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

अतः केवल नामस्मरण से मोक्ष मानना वेदविरुद्ध होने से मिथ्या है।

(२६७) प्रश्न—'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म' इत्यादि [गीता ८।१३] इसमें भी ब्रह्म के नाम ओम्स्मरण से मोक्ष मिलने का वर्णन है। —पृ० २६८, पं० ७

उत्तर—कहिए महाराज! अब तो गीता को भी वेद के नाम से पेश किया जाने लगा! क्या यही वैदिक सिद्धान्त का प्रतिपादन है? क्या सचमुच आप गीता को वेद मानते हैं? कुछ होश से काम लो, कहाँ महाभारत के भीष्म पर्व का एक भाग गीता और कहाँ वेद! 'कहाँ गांगला तेली और कहाँ राजा भोज'! फिर इस श्लोक में यह कहाँ लिखा है कि केवल नामोच्चारण से ही मुक्ति हो जाती है? इस श्लोक को गीता के दूसरे श्लोक से मिलाकर अर्थ करें—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्। यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्॥
एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः। कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्॥

—गी० ८।१३, ४।१५

ओम् इस एकाक्षर ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ मुझे याद करके जो देह का त्याग करता है वह परमगति को प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ इस प्रकार जानकर पहले मोक्ष की इच्छा करनेवालों ने भी कर्म किया। इसलिए तू कर्म ही कर, जोकि पहलों ने बहुत पहले किया है ॥ १५ ॥

इन दोनों श्लोकों को मिलाकर यदि आप यह सारांश निकाल सकें कि ईश्वर का नामोच्चारण तभी फलदायक होता है यदि तदनुकूल शुभाचरण भी किया जावे तो ठीक, और यदि आप केवल नामोच्चारण से ही मोक्ष इस श्लोक का भाव मानते हैं तो हमें वेदविरुद्ध होने से अप्रमाण मानना पड़ेगा। हमारे विचार में तो पहला श्लोक ओम् नाम के स्मरण की आज्ञा देता है, कर्म का निषेध नहीं करता तथा दूसरा श्लोक कर्म करने की आज्ञा देता है, नामस्मरण का निषेध नहीं करता। दोनों को मिलाकर यह अभिप्राय हुआ कि नामस्मरण तथा कर्म दोनों ही साथ-साथ मोक्ष का हेतु हैं। दोनों में एक कोई भी अकेला मोक्ष का हेतु नहीं है। यही वेद का सिद्धान्त है, क्योंकि वेद तो कहता है कि सम्पूर्ण वेद भी यदि पढ़ा जावे किन्तु ब्रह्म का ज्ञान न हो तो उच्चारणमात्र से वेद का भी कोई फल नहीं। फिर एक अक्षर का तो हो ही क्या सकता है, जैसे—

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद् विदुस्त इमे समासते॥

—ऋ० १।१६४।३९

भाषार्थ—ऋग्वेदादि से प्रतिपादित जिस सर्वोत्कृष्ट, सर्वव्यापक, विकाररहित, परमेश्वर में सब सूर्य-चन्द्र भूमि आदि आधेयरूप से स्थित हैं; परब्रह्म उस परमेश्वर को जो नहीं जानता, वह वेद से क्या करेगा, अर्थात् उसका वेदाध्ययन निष्फल है, जो मनुष्य उस प्रभु को जान लेते हैं, वे ही ब्रह्म में भली प्रकार स्थित होते हैं॥ ३९॥

भावार्थ—वेद पढ़ने का लाभ तभी है कि वेद से ईश्वर, जीव, प्रकृति तथा जगत् का जो शाब्दिक ज्ञान हुआ है उस ज्ञान को चरितार्थ करने के लिए योग-साधना द्वारा उनका साक्षात् करने का प्रयत्न करें॥ ३९॥

कहिए महाराज! ओम् नाम का तो कहना ही क्या है, चारों वेद भी आचरण के बिना निष्फल हैं, जैसे—

सावित्रीमात्रसारोऽपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः। नायन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी॥ ११८॥

—मनु० २।११८

आचारहीनान्न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः॥

—भविष्य० ब्राह्म० अ० ४१, श्लो० ८

भाषार्थ—जो ब्राह्मण सदाचारी हो वह केवल गायत्री जानता हुआ भी श्रेष्ठ है और जो दुराचारी, सर्वभक्षी, सर्वविक्रयी है, वह तीन वेदों को जाननेवाला भी अच्छा नहीं है॥ ११८॥ आचारहीन पुरुषों को वेद भी पवित्र नहीं करते चाहे वे छह अंगों के समेत भी पढ़े हों॥ ८॥

इन सारे प्रमाणों से सिद्ध है कि परमात्मा का नाम उच्चारण तथा वेदाध्ययन तभी फलदायक है यदि हमारा तदनुकूल आचरण हो, वरना केवल नामस्मरण से मनुष्य को कोई लाभ नहीं है। इसी बात को दर्शाते हुए स्वामी दयानन्दजी लिखते हैं कि—

प्रश्न—जो-जो तीर्थ वा नाम का माहात्म्य अर्थात् जैसे '**अन्यक्षेत्रे कृतं पापं काशिक्षेत्रे विनश्यति**' इत्यादि बातें हैं, वे सच्ची हैं वा नहीं?

उत्तर—नहीं, क्योंकि जो पाप छूट जाते हों तो दरिद्रों को धन, राजपाट, अन्धों को आँख मिल जाती, कोढ़ियों का कोढ़ आदि रोग छूट जाता, परन्तु ऐसा नहीं होता। इसलिए पाप वा पुण्य किसी का नहीं छूटता।

प्रश्न— **गङ्गागङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि।**
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥ १॥
हरिर्हरति पापानि हरिरित्यक्षरद्वयम्॥ २॥
प्रातःकाले शिवं दृष्ट्वा निशिपापं विनश्यति।
आजन्मकृतं मध्याह्ने सायाह्ने सप्तजन्मनाम्॥ ३॥

इत्यादि श्लोक पोपपुराण के हैं जो सैकड़ों-सहस्रों कोश दूर से भी गङ्गा-गङ्गा कहे तो उसके पाप नष्ट होकर वह विष्णुलोक अर्थात् वैकुण्ठ को जाता है॥ १॥ 'हरि' इन दो अक्षरों का नामोच्चारण सब पापों को हर लेता है वैसे ही राम, कृष्ण, शिव, भगवती आदि नामों का माहात्म्य है॥ २॥ और जो मनुष्य प्रातःकाल में शिव अर्थात् लिंग वा उसकी मूर्त्ति का दर्शन करे तो रात्रि में किया हुआ, मध्याह्न में दर्शन से जन्म-भर का, सायंकाल में दर्शन करने से सात जन्मों का पाप छूट जाता है। यह दर्शन का माहात्म्य है॥ ३॥ क्या झूठा हो जाएगा?

उत्तर—मिथ्या होने में क्या शंका, क्योंकि गङ्गा-गङ्गा वा हरे राम, कृष्ण, नारायण, शिव और भगवती नामस्मरण से पाप कभी नहीं छूटता। जो छूटे तो दुःखी कोई न रहे और पाप करने से कोई भी न डरे। जैसे आजकल पोपलीला में पाप बढ़कर हो रहे हैं। मूढ़ों को विश्वास है कि

हम पाप कर नामस्मरण वा तीर्थयात्रा करेंगे तो पापों की निवृत्ति हो जाएगी। इसी विश्वास पर पाप करके इस लोक और परलोक का नाश करते हैं, पर किया हुआ पाप भोगना ही पड़ता है।

प्रश्न—तो कोई तीर्थ, नामस्मरण सत्य है वा नहीं?

उत्तर—है, वेदादि सत्य शास्त्रों का पढ़ना धार्मिक विद्वानों का संग, परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, निर्वैरता, निष्कपटता, सत्यभाषण, सत्य का मानना, सत्य करना, ब्रह्मचर्यपालन, आचार्य, अतिथि, माता-पिता की सेवा, परमेश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना, शान्ति, जितेन्द्रियता, सुशीलता, धर्मयुक्त पुरुषार्थ, ज्ञान-विज्ञान आदि, शुभगुण-कर्म दुःखों से तारनेवाले होने से तीर्थ हैं और जो जल-स्थलमय हैं वे तीर्थ कभी नहीं हो सकते, क्योंकि **'जना यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि'** मनुष्य जिनके द्वारा दुःखों से तरें उनका नाम तीर्थ है। जलस्थल तरानेवाले नहीं किन्तु डुबाकर मारनेवाले हैं। प्रत्युत नौका आदि का नाम तीर्थ हो सकता है, क्योंकि उनसे समुद्र आदि को तरते हैं।

समानतीर्थे वासी॥ —अष्टा:० अ० ४ पा० ४ सू० १०८

नमस्तीर्थ्याय च॥ —यजु:० अ० १६ मं० ४२

जो ब्रह्मचारी एक आचार्य से और एक शास्त्र को साथ-साथ पढ़ते हों वे सब सतीर्थ्य अर्थात् समानतीर्थ-सेवी होते हैं। जो वेदादि शास्त्र और सत्यभाषणादि धर्मलक्षणों में साधु हो उसको अन्नादि पदार्थ देना और उनसे विद्या लेनी इत्यादि तीर्थ कहाते हैं।

नामस्मरण इसको कहते हैं कि—

यस्य नाम महद्यशः॥ —यजु:० अ० ३२ मं० ३

परमेश्वर का नाम बड़े यश अर्थात् धर्मयुक्त कामों का करना है जैसे ब्रह्म, परमेश्वर, ईश्वर, न्यायकारी, दयालु, सर्वशक्तिमान् आदि नाम परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव से हैं। जैसे ब्रह्म सबसे बड़ा; परमेश्वर—ईश्वरों का ईश्वर; ईश्वर—सामर्थ्ययुक्त; न्यायकारी—कभी अन्याय नहीं करता; दयालु—सबपर कृपादृष्टि रखता; सर्वशक्तिमान्—अपने सामर्थ्य ही से सब जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करता, सहाय किसी का नहीं लेता; ब्रह्म—विविध जगत् के पदार्थों का बनानेहारा; विष्णु—सबमें व्यापक होकर रक्षा करता; महादेव—सब देवों का देव; रुद्र—प्रलय करनेहारा आदि नामों के अर्थों को अपने में धारण करे, अर्थात् बड़े कामों से बड़ा हो, सामर्थों में समर्थ हो, सामर्थ्यों को बढ़ाता जाए, अधर्म कभी न करे, सबपर दया रक्खे, सब प्रकार के साधनों को समर्थ करे, शिल्पविद्या से नानाप्रकार के पदार्थों को बनावे, सब संसार में अपने आत्मा के तुल्य सुख-दुःख समझे, सबकी रक्षा करे, विद्वानों में विद्वान् होवे, दुष्टकर्म करनेवालों को प्रयत्न से दण्ड और सज्जनों की रक्षा करे, इस प्रकार परमेश्वर के नामों का अर्थ जानकर परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के अनुकूल अपने गुण-कर्म-स्वभाव करते जाना ही परमेश्वर का नामस्मरण है।

प्रश्न—गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः॥

इत्यादि गुरुमाहात्म्य तो सच्चा है? गुरु के पग धोके पीना, जैसी आज्ञा करे वैसा करना, गुरु लोभी हो तो वामन के समान; क्रोधी हो तो नरसिंह के सदृश, मोही हो तो राम के तुल्य और कामी हो तो कृष्ण के समान गुरु को जानना। चाहे गुरुजी कैसा ही पाप करे तो भी अश्रद्धा न करनी, सन्त वा गुरु के दर्शन को जाने में पग-पग में अश्वमेध का फल होता है, यह बात ठीक है वा नहीं?

उत्तर—ठीक नहीं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और परब्रह्म परमेश्वर के नाम हैं। उसके तुल्य गुरु कभी नहीं हो सकता। यह गुरुमाहात्म्य गुरुगीता भी एक बड़ी पोपलीला है। गुरु तो माता-पिता, आचार्य और अतिथि होते हैं। उनकी सेवा करनी, उनसे विद्या-शिक्षा लेनी-देनी शिष्य और

गुरु का काम है, परन्तु जो गुरु लोभी, क्रोधी, मोही और कामी हो तो उसको सर्वथा छोड़ देना, शिक्षा करनी, सहज शिक्षा से न माने तो अर्घ्य-पाद्य अर्थात् ताड़ना, दण्ड, प्राणहरण तक भी करने में कुछ दोष नहीं। जो विद्यादि सद्गुणों में गुरुत्व नहीं है, ऐसा मानते, और झूठ-मूठ कण्ठी-तिलक, वेदविरुद्ध मन्त्रोपदेश करनेवाले हैं, वे गुरु ही नहीं, किन्तु गड़रिये हैं। जैसे गड़रिये अपनी भेड़-बकरियों से दूध आदि से प्रयोजन सिद्ध करते हैं, वैसे ही शिष्यों के, चेले-चेलियों का धन हरके अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। वे—

दोहा— लोभी गुरु लालची चेला, दोनों खेलें दाव।
भवसागर में डूबते, बैठ पत्थर की नाव॥

गुरु समझें कि चेले-चेली कुछ-न-कुछ देवेंगे ही और चेला समझे कि चलो गुरु झूठे सौगन्ध खाने, पाप छुड़ाने के काम आवेंगे आदि लालच से दोनों कपटमुनि भवसागर के दु:ख में डूब मरते हैं। ऐसे गुरु और चेलों के मुख पर धूड़-राख पड़े। उसके पास कोई भी खड़ा न रहे, जो रहे वह दु:खसागर में पड़ेगा। जैसी पोपलीला पुजारी, पुराणियों ने चलाई वैसी ही इन गड़रिये गुरुओं ने भी लीला मचाई है। यह सब काम स्वार्थी लोगों का है। जो परमार्थी लोग हैं वे आप दु:ख पावें तो भी जगत् का उपकार करना नहीं छोड़ते और गुरुमाहात्म्य तथा गुरुगीता आदि भी इन्हीं लोभी, कुकर्मी गुरुओं ने बनाई है॥ —सत्यार्थ० समु० ११

(३६८) प्रश्न—'यन्मनसा न मनुते' इत्यादि [केन० १।५] इसमें भी ब्रह्म की पूजा, उपासना, नामस्मरण की आज्ञा है। —पृ० २६८, पं० १२

उत्तर—आपने इस केनोपनिषत् के पाठ को वेद के नाम से पेश किया है। यद्यपि 'केन' वेद नहीं, अपितु उपनिषत् है जो कि परत:प्रमाण है, तो भी आपने इसका अर्थ ठीक नहीं किया। इसमें न तो नामस्मरण का वर्णन है और न केवल नामस्मरण से मोक्ष का ज़िक्र है। इसमें तो मन के ज्ञान से अतीत ब्रह्म की उपासना की शिक्षा है तथा प्राकृतिक पदार्थों की उपासना का निषेध है। देखिए, इसका अर्थ यह है—

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ २॥

—केन० उ० खं० १ मं० ५

भाषार्थ—जो मन से 'इतना है', ऐसा करके मनन में नहीं आता, जो मन को जानता है उसी को तू ब्रह्म जान और उसी की उपासना कर, जो उससे भिन्न जीव और प्रकृति है उसकी उपासना ब्रह्म के स्थान में मत कर॥ २॥

बतलाइए, इसमें केवल नामस्मरण से मुक्ति का कहाँ विधान है? वेद एक नाम तो क्या सम्पूर्ण वेद के भी केवल उच्चारणमात्र से मुक्ति नहीं मानता। देखिए—

उत त्व: पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्व: श्रण्वन्न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्त्रे जायेव पत्य उशती सुवासा:॥

—ऋ० १०।७१।४

भाषार्थ—कोई वाणी को देखता हुआ भी नहीं देखता (अर्थ न जानने से) और कोई वेदवाणी को सुनता हुआ भी नहीं सुनता (अर्थ न जानने के कारण) और किसी के लिए वाणी ऐसे अपनी आत्मा को प्रकाशित कर देती है जैसे ऋतुस्नाता पत्नी अपने पति के लिए॥ ४॥

इससे सिद्ध है कि नामोच्चारण वा वेदपठन अर्थ समझे बिना तथा तदनुकूल आचरण किये बिना व्यर्थ ही है।

फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम्। न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति॥ —मनु० ६।६७

भाषार्थ—यद्यपि निर्मली का फल पानी को साफ करनेवाला है, परन्तु उसके नाममात्र से पानी साफ़ नहीं हो जाता॥ ६७॥

इसी प्रकार परमात्मा मोक्षदाता है, किन्तु परमात्मा के नामस्मरणमात्र से मोक्ष नहीं मिलता, अपितु तदनुकूल आचरण करने से मोक्ष मिलता है। इसी बात का स्वामी दयानन्दजी ने भी वर्णन किया है कि—

''थोड़े दिन हुए कि एक 'रामसनेही' मत शाहपुरा से चला है। उन्होंने सब वेदोक्त धर्म को छोड़के 'राम-राम' पुकारना अच्छा माना है। उसी में ज्ञान, ध्यान, मुक्ति मानते हैं, परन्तु जब भूख लगती है तब 'राम-राम' में से रोटी-शाक नहीं निकलता, क्योंकि खान-पान आदि तो गृहस्थियों के घर ही में मिलते हैं। वे भी मूर्त्तिपूजा को धिक्कारते हैं, परन्तु आप स्वयं मूर्त्ति बन रहे हैं। स्त्रियों के सङ्ग में बहुत रहते हैं, क्योंकि रामजी को 'रामकी' के बिना आनन्द ही नहीं मिल सकता। अब थोड़ा-सा विशेष रामसनेही के मत के विषय में लिखते हैं—

एक रामचरण नामक साधु हुआ है, जिसका मत मुख्यकर 'शाहपुरा' स्थान मेवाड़ से चला है। वे 'राम-राम' पुकारने ही को परममन्त्र और इसी को सिद्धान्त मानते हैं। उनके एक ग्रन्थ कि जिसमें सन्तदासजी आदि की बाणी है, ऐसा लिखा है—

भरम रोग तब ही मिट्या, रट्या निरञ्जन राई।
तब जम का कागज फट्या, कट्या कर्म तब जाई॥ —साखी ६

अब बुद्धिमान् लोग विचार लेवें कि 'राम-राम' कहने से भ्रम जोकि अज्ञान है वा यमराज का पापानुकूल शासन अथवा किये हुए कर्म कभी छूट सकते हैं वा नहीं? यह केवल मनुष्यों को पापों में फँसाना और मनुष्यजन्म को नष्ट कर देना है। अब इनका जो मुख्य गुरु 'रामचरण' हुआ है, उसके वचन—

महमा नाँव प्रताप की, सुणौ सरवण चित लाइ।
रामचरण रसना रटौ, क्रम सकल झड़ जाइ॥
जिन जिन समुऱ्या नाँव कूँ, सो सब उतऱ्या पार।
रामचरण जो वीसऱ्या, सो ही जम के द्वार॥
राम बिना सब झूठ बतायो॥
राम भजत छूट्या सब क्रम्मा। चंद अरु सूर देई परकम्मा॥
राम कहे तिन कूँ भै नाहीं। तीन लोक में कीरती गाहीं॥
राम रटत जम जोर न लागै।
राम नाम लिख पथर तराई। भगति हेति औतार ही धरही॥
ऊँच नीच कुल भेद विचारै। सो तो जनम आपणो हारै॥
सन्तां के कुल दीसै नाहीं। राम राम कह राम सम्हाहीं॥
ऐसो कुण जो कीरति गावै। हरि हरिजन कौ पार न पावै॥
राम सन्तां का अन्त न आवै। आप आपकी बुद्धि सम गावै॥

—नामप्रताप

इनका खण्डन—प्रथम तो रामचरण आदि के ग्रन्थ देखने से विदित होता है कि यह ग्रामीण एक सीधा-सादा मनुष्य था। न वह कुछ पढ़ा था, पढ़ा होता तो ऐसी गपड़चौथ क्यों लिखता? यह केवल इनको भ्रम है कि राम-राम कहने से कर्म छूट जाएँ। केवल ये अपना और दूसरों का जन्म खोते हैं। जम का भय तो बड़ा भारी है, परन्तु राजसिपाही, चोर, डाकू, व्याघ्र, सर्प, बिच्छू और मच्छर आदि का भय कभी नहीं छूटता। चाहे रात-दिन राम-राम किया करें कुछ भी

नहीं होगा। जैसे 'शक्कर-शक्कर' कहने से मुख मीठा नहीं होता, वैसे सत्यभाषणादि कर्म किये विना राम-राम करने से कुछ भी नहीं होगा और यदि एक बार राम-राम कहने से इनका राम नहीं सुनता तो जन्मभर कहने से भी नहीं सुनेगा और जो सुनता है तो दूसरी बार भी राम-राम कहना व्यर्थ है। इन लोगों ने अपना पेट भरने और दूसरों का जन्म नष्ट करने के लिए एक पाखण्ड खड़ा किया है सो यह बड़ा आश्चर्य हम सुनते और देखते हैं कि नाम तो धरा रामसनेही और कर्म करते हैं राँडस्नेही का। जहाँ देखो वहाँ राँड-ही-राँड सन्तों को घेर रही हैं। यदि ऐसे-ऐसे पाखण्ड न चलते तो आर्यावर्त्त देश की दुर्दशा क्यों होती? ये लोग अपने चेलों को जूठ खिलाते हैं और स्त्रियाँ भी लम्बी पड़कर दण्डवत् प्रणाम करती हैं। एकान्त में भी स्त्रियों और साधुओं की लीला होती रहती है। —सत्यार्थप्रकाश, एकादशसमुल्लास

(२६९) प्रश्न—ऊपर के मन्त्रों में जो नाममहत्त्व वेद, गीता ने बतलाया था, वह स्वामीजी ने ज़रा-सी हुज्जत में उड़ा दिया। —पृ० २६८, पं० २०

उत्तर—गीता में भी मन्त्र हैं, यह आपसे ही पता लगा। वेद का आपने एक मन्त्र दिया है, वह भी मोक्ष से पुनरावृत्ति का है, नामस्मरण के महत्त्व का नहीं है। शेष जो वेदबाह्य प्रमाण आपने दिये हैं, उनमें भी केवल नामस्मरण से मुक्ति कोई भी नहीं मानता और यह ठीक भी है कि परमेश्वर को जानना तथा वेदानुकूल आचरण करना ही मोक्ष का हेतु है। केवल नामस्मरण मोक्ष का साधन नहीं है—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥ —यजुः० ३१।१८

भाषार्थ—जो अन्धकार से परे, प्रकाशस्वरूप और महान् पुरुष परमात्मा है, उसको मैं जानता हूँ। उसको जानने से ही मनुष्य मृत्यु के पार हो सकता है, मृत्यु को दूर करने का दूसरा कोई मार्ग नहीं है॥ १८॥

कैसा स्पष्ट मन्त्र है कि परमात्मा को जाने बिना कोई दूसरा मार्ग मोक्ष का नहीं है, अतः केवल नामस्मण से मोक्ष नहीं हो सकता अपितु तदनुकूल कर्म करके ब्रह्म को जानने से मोक्ष हो सकता है।

आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते।
आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाग्भवेत्॥ —मनु० १।१०९

भाषार्थ—आचरण से गिरा हुआ ब्राह्मण वेद के फल को नहीं भोग सकता, आचरण से ही सम्पूर्ण फल को भोग सकता है॥ १०९॥

अतः स्वामीजी ने जो कुछ लिखा है, वह वेद तथा धर्मशास्त्र के आधार पर लिखा है। वेदविरुद्ध हुज्जतबाज़ी करना आप लोगों का काम है, स्वामीजी का नहीं।

(२७०) प्रश्न—रक्षा करने से ओम् कहलाता है तो यह जो ओम् ईश्वर का नाम है, यह स्मरण करने से रक्षा करता है या इस निराकार ओम् की पीतल की शक्ल बनाकर सिर में टाँगने से रक्षा करता है? यद्वा अपने-आप स्वाभाविक धर्म से रक्षा करता है? यहाँ पर स्मरण से ही रक्षा क्यों न मानें। —पृ० २६९, पं० ५

उत्तर—परमात्मा का नाम रक्षा करने से ओम्, न्याय करने से न्यायकारी, दुष्टों को दण्ड देकर रुलाने से रुद्र, सबको नियम में रखने से यम तथा पापियों पर क्रोध करने से मन्यु है। परमात्मा नामोच्चारणमात्र से न तो रक्षा करता है और न दण्ड देता है और न ही टोपी पर पीतल का ओम् लगाना रक्षा या मुक्ति का हेतु है। जो मनुष्य परमात्मा के गुण-कर्म-स्वभाव के अनुकूल धर्माचरण करते हैं, परमात्मा उनकी रक्षा करता है और जो मनुष्य परमात्मा के गुण-कर्म-स्वभाव के विरुद्ध

अधर्माचरण करते हैं, परमात्मा उनको दण्ड देते हैं। परमात्मा बिना आचरण के केवल नामस्मरणमात्र से न रक्षा करते हैं, न दण्ड देते हैं, अतः केवल नामस्मरणमात्र से रक्षा मानना ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के विरुद्ध होने से सर्वथा निर्मूल है।

(२७१) प्रश्न—'प्रणवो धनुः' इत्यादि [मुण्डक० २।४] यहाँ पर ओम् का धनुष और आत्मा का बाण छील-छालकर बढ़ई नहीं बनाता, किन्तु अन्तःकरण में यह घटना होती है। जब ओम् का धनुष बनाया जावेगा तब अन्तःकरण में ओम् का स्मरण होगा, बिना स्मरण किये ओम् का न धनुष बन सकता है और न जीव ब्रह्म बन सकता है। —पृ० २६९, पं० ११

उत्तर—यहाँ पर आत्मा के ब्रह्म बन जाने का वर्णन नहीं, अपितु ब्रह्म में मस्त=मग्न होने का वर्णन है। मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है—

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥ ४॥ —मुण्डक० २।२।४

भाषार्थ—ओंकार धनुष है। निश्चय करके जीवात्मा बाण है और उसका लक्ष्य परमात्मा कथन किया गया है। प्रमादरहित चित्त से उसका वेधन करे, बाण के सदृश तन्मय हो जाए॥ ४॥

इसमें जीव के ब्रह्म होने का वर्णन नहीं, अपितु ब्रह्म में मग्न होने का वर्णन है। इस मन्त्र में कहाँ वर्णन है कि नामस्मरणमात्र से ही मुक्ति हो जाती है? जबतक आत्मा को यम-नियम, विद्या, तप आदि कर्मों के द्वारा ओंकाररूप धनुष पर चढ़ने के योग्य न बना लिया जावे तबतक वह बाणरूप कैसे बन सकता है? जैसे बढ़ई काष्ठ के बाण को छीलकर बनाता है वैसे ही आत्मा को भी शुभ कर्मों द्वारा बाण बनने के योग्य बनाना पड़ता है। क्या बिना संस्कार किये प्रत्येक आत्मा बाण बनने के योग्य हो सकता है? अन्तःकरण में ओम् का स्मरण हो तो हमें क्या आपत्ति? हम ओम्-स्मरण के विरुद्ध थोड़ा ही हैं। हमारा तो यह पक्ष है कि केवल ओम्-स्मरण से कल्याण नहीं हो सकता जबतक कि तदनुकूल आचरण न किया जावे, अतः मुण्डक का उपर्युक्त प्रमाण हमारी पुष्टि करता है, क्योंकि प्रणवरूपी धनुष में तबतक आत्मा नहीं रखा जा सकता जबतक उसे विद्या, तप से शुद्ध करके शुभ कर्मों द्वारा बाण बनाने के योग्य न बना लिया जावे, अतः पुरुषार्थ और धर्माचरण के बिना केवल नामस्मरण व्यर्थ ही है।

(२७२) प्रश्न—'स पूर्वया निविदा' इत्यादि [ऋ० १।७।३।२] आर्याभिविनय मं० ४२। उसी विज्ञानादि धन देनेवाले को विद्वान् लोग अग्नि मानते हैं। हम लोग उसी को भजें।
—पृ० २६९, पं० २१

उत्तर—इस मन्त्र में यह कौन-से पदों से सिद्ध होता है कि नामस्मरणमात्र से मोक्ष हो जाता है? मन्त्र और उसका अर्थ इस प्रकार—

स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम्।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम्॥ —ऋ० १।९६।२

भाषार्थ—हे मनुष्यो! आदि सनातन, सत्यता आदि गुणयुक्त अग्नि ही परमात्मा था, अन्य कोई नहीं था। तब सृष्टि के आदि में स्वप्रकाशस्वरूप एक ईश्वर प्रजा की उत्पत्ति की ईक्षणता (विचार) करता भया, सर्वज्ञादि सामर्थ्य से ही सत्यविद्यायुक्त वेदों की तथा मननशील मनुष्यों की तथा अन्य पशुवृक्षादि की प्रजा को उत्पन्न किया। परस्पर मनुष्य और पशु आदि के व्यवहार चलने के लिए, परन्तु मननशीलवाले मनुष्यों को अवश्य स्तुति करने योग्य वही है। सूर्य आदि तेजस्वी सब पदार्थों का प्रकाशनेवाला, बल से स्वर्ग (सुखविशेष) सब लोक, अन्तरिक्ष में पृथिवी आदि मध्यम लोक और निकृष्ट दुःखविशेष नरक और सब दृश्यमान तारे आदि लोक उसी ने रचे हैं। जो ऐसा सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वरदेव है, उसी विज्ञान आदि धन देनेवाले को ही विद्वान् लोग

अग्नि जानते हैं। हम लोग उसी को ही भजें॥ २॥

यहाँ 'भजें' के अर्थ हैं कि 'हम लोग उसी की ही उपासना करें'। इस मन्त्र के अर्थ से यह सिद्ध नहीं होता कि केवल नामस्मरणमात्र से ही मोक्ष-प्राप्ति हो जाती है।

(२७३) प्रश्न—इन्द्रियों से अग्राह्य निराकार के नाम का स्मरण ही भजन है, तो भी आप नामस्मरण का खण्डन करते हैं। मिश्री कहने से मुँह मीठा नहीं होता, तो क्या नींबू कहने से भी मुँह में पानी नहीं आता? यदि ऐसा ही है तो आपने दयालु, न्यायकारी आदि ईश्वर के नाम लेने क्यों लिखे? —पृ० २७०, पं० ५

उत्तर—आप बड़ी ग़लतफ़हमी में हैं। हम परमात्मा की स्तुति-प्रार्थना-उपासना के विरुद्ध नहीं हैं। स्तुति और नामस्मरण एक ही वस्तु है, किन्तु हम मानते हैं कि केवल स्तुति से या नामस्मरण से कल्याण नहीं हो सकता, अपितु ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव से अपने गुण-कर्म-स्वभाव के सुधारने से कल्याण हो सकता है। इसी का नाम स्मरण या स्तुति हो सकता है। बेशक जैसे मिश्री-मिश्री कहने से मुँह मीठा नहीं होता, वैसे ही नींबू-नींबू कहने से भी मुँह खट्टा नहीं हो सकता। यदि ऐसा हो जाए तो अचार डालने की ज़रूरत ही न रहे। रोटी खाते समय नींबू-नींबू कह लिया करें। नींबू के स्मरण से उसी के मुँह में पानी आता है, जो यत्न करके एक बार नींबू प्राप्त करके उसका स्वाद ले चुका है। जिसने कभी नींबू न खाया हो उसको नींबू स्मरण करने से तो क्या, देखने से भी मुँह में पानी न आवेगा। ऐसे ही जबतक यम-नियमादि शुभकर्मों द्वारा योगाभ्यास करके परमात्मा का अनुभव न कर लें तबतक केवल नामस्मरणमात्र से कभी भी ब्रह्मानन्द या मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। स्वामीजी ने जो दयालु, न्यायकारी आदि नामों से ईश्वर की स्तुति करना लिखा है, उसका प्रयोजन यही है कि हम भी अपने जीवन में न्याय को धारण करके तथा निर्बलों, निरपराधों पर दया करके अपने जीवन में सुधार करें। बस, यह सिद्ध हो गया कि केवल नामस्मरणमात्र से मोक्ष नहीं होता, अपितु तदनुकूल आचरण करने से मोक्ष होता है, अत: केवल नामस्मरणमात्र से पापक्षय का सिद्धान्त वेदविरुद्ध, निर्मूल, पापजनक तथा सर्वथा असत्य है।

स्वर्ग

(२७४) प्रश्न—वेद ने स्वर्ग आदि लोकों को इस मृत्युलोक से भिन्न माना है।

—पृ० २८५, पं० १९

उत्तर—सबसे पहले हमें इस बात पर विचार करना है कि 'स्वर्गलोक' के अर्थ क्या हैं। यह शब्द तीन शब्दों से मिलकर बना हुआ है—'स्व:', 'ग' था 'लोक'। सबसे पहले देखें कि 'स्व:' के क्या अर्थ हैं—

स्व:—[स्व:, प्रश्नि:, द्यौ: नाक:, विष्टप्, नभ:], ये छह नाम द्यौ के हैं।

—(निरुक्त अ० २, खण्ड १३)

अब देखना है कि द्यौ: के क्या अर्थ हैं [अथ द्यौ: किमिति सुखनाम] द्यौ नाम सुख का है।

—(निरुक्त० अ० २ खं० १२)

इससे सिद्ध हुआ कि उपर्युक्त छह नाम सुख के हैं। इन छह में स्व: भी है, अत: स्व: के अर्थ सुख के हुए।

ग—'स्वर्ग' में जो 'ग' है वह (गम्लृ गतौ) गम अर्थात् गति अर्थवाली धातु का है। गति के (ज्ञान, गमन, प्राप्ति) तीन अर्थ हैं। अत: **(स्वर्गम्यते प्राप्यतेऽस्मिन्निति स्वर्ग:)** जिसमें सुख की प्राप्ति हो उसका नाम स्वर्ग है।

लोक—विवाह के समय कन्या कहती है कि—

ओं प्र मे पतियानः पन्थाः कल्पतꣳ शिवा अरिष्टा पतिलोकं गमेयम्।

—मं० ब्रा० १।१।८, गोभि० २।१।१९

भाषार्थ—मेरे जाने के रास्ते कल्याणकारी हों। मैं पतिलोक को प्राप्त होती हूँ।

यहाँ लोक के अर्थ पृथिवी से भिन्न लोक नहीं, अपितु गृहस्थी अवस्था ही पतिलोक है, अतः लोक के अर्थ अवस्था हुए। विवाह में वर कहता है कि—

कन्यला पितृभ्यः पतिलोकं यतीयम्। —मं० ब्रा० १।२।५, गोभि० २।२।८

भाषार्थ—कन्या पितृलोक से पति के लोक को प्राप्त होती है।

इससे स्पष्ट है कि लोक नाम अवस्था का है।

त्रयो लोका एत एव। वागेवायं लोको मनोऽन्तरिक्षलोकः प्राणोऽसौ लोकः।

—शत० १४।४।३।११

अथ त्रयो वाव लोकः। मनुष्यलोकः पितृलोको देवलोक इति, सोऽयं मनुष्यलोकः पुत्रेणैव जय्यो नान्येन कर्मणा, कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोकः। —शत० १४।४।३।२४

स्वरिति दिवम्॥ ११॥

स्वरिति विशम्॥ १२॥

स्वरिति पशून्॥ १३॥ —शत० २।१।४।११ से १३

उशतीः कन्यला इमाः पितृलोकात् पतिं यतीः। —अथर्व० १४।२।५२

भाषार्थ—तीन लोक यही हैं—वाणी ही यह लोक है, मन ही अन्तरिक्षलोक है, प्राण ही वह लोक है॥ ११॥ ये तीन लोक हैं। मनुष्यलोक, पितृलोक, देवलोक सो यह मनुष्यलोक पुत्र से ही जीता जाता है, अन्य कर्म से नहीं। कर्म से पितृलोक, विद्या से देवलोक जीता जाता है॥ २४॥ स्वः नाम द्यौ का है॥ १॥ स्वः नाम वैश्य का है॥ १२॥ स्वः नाम पशुओं का है॥ १३॥ ये पितृलोक से पतिलोक को प्राप्त होनेवाली कन्या प्राप्त है॥५२॥

स्वः—सुख, द्यौ, वैश्य, पशु

ग—जिसमें स्वः प्राप्त हो

लोक—अवस्था, मन, वाणी, प्राण, पिता का स्थान, पति का स्थान, मनुष्य-अवस्था, पितृ-अवस्था, देव-अवस्था इत्यादि जिस अवस्था तथा जिस स्थान में मनुष्य को सुख के विशेष सामान पशु, वैश्य सम्बन्धित-पदार्थ आदि मिलें उसका नाम स्वर्ग है। चाहे वे इसी पृथिवी पर मिलें चाहे अन्य सूर्य, चाँद, सितारों में मिलें। सारांश ह कि स्वर्ग नाम का कोई पृथक् स्थान नहीं है। जहाँ सुख और सुख की विशेष सामग्री मिले उसी का नाम स्वर्ग है। यही बात स्वामी दयानन्दजी कहते हैं कि—

स्वर्ग—नाम सुखविशेष-भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का है।

—सत्यार्थ० स्वमन्तव्य० ४२

वाक्शौचं कर्मशौचं च यच्च शौचं जलात्मकम्।
त्रिभिः शौचैरुपेतो यः स स्वर्गो नात्र संशयः॥ ८०॥

—[गीता प्रेस संस्करण में यह २००।८२ पर उपलब्ध है। —सं०] महा० वन० १९९।८०

भाषार्थ—वाणी की पवित्रता, कर्मों की पवित्रता, जलात्मक पवित्रता—इन तीन पवित्रताओं से युक्त जो स्थान वा अवस्था हो वही, स्वर्ग है, इसमें संशय नहीं है॥ ८०॥

संसार में ऐसी अवस्था वा ऐसा स्थान विशेषकर कौन-सा है—

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः। तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः॥ ७७॥
यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम्। गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही॥ ७८॥
स सन्धार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता। सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः॥ ७९॥

—मनु० ३।७७-७९

भाषार्थ—जैसे वायु का आश्रय लेकर सारे प्राणी वर्त्तमान होते हैं, वैसे ही सारे आश्रम गृहस्थ का आश्रय लेकर वर्त्तमान होते हैं॥ ७७॥ जिस कारण से तीनों ही आश्रम ज्ञान तथा अन्न से प्रतिदिन गृहस्थ से ही धारण किये जाते हैं, इसलिए बड़ा आश्रम गृहस्थ ही है॥ ७८॥ अतः अक्षय मोक्ष और इस संसार में स्वर्ग की इच्छा करनेवाले को वह गृहस्थ धारण करना चाहिए, परन्तु वह निर्बल-इन्द्रियवालों से धारण करन के योग्य नहीं है॥ ७९॥

इससे सिद्ध हुआ कि संसार में स्वर्ग-प्राप्ति चाहे और अवस्थाओं तथा स्थानों में भी हो, कन्तु संसार में गृहस्थ स्वर्ग=सुख का भण्डार है, अतः विशेषकर स्वर्ग गृहस्थ का नाम है। इसमें वेदप्रमाण—

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः।
अश्लोणा अंगैरह्रुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान्॥ —अथर्व० ६।१२०।३

भाषार्थ—जहाँ उत्तम ह्रदय तथा परस्पर मित्रता रखनेवाले, श्रेष्ठ कर्मोंवाले अपने शरीर के रोगों से आरोग्य लाभ करके आनन्द पाते हैं, उस स्वर्गलोक में हम माता-पिता दोनों का तथा पुत्रों का दर्शन करें॥ ३॥

इस मन्त्र में माता, पिता, पुत्रों, मित्रों के दर्शन से गृहस्थ को ही स्वर्ग कहा गया है।

अतः सिद्ध हुआ कि इस पृथिवी से भिन्न किसी विशेष स्थान का नाम स्वर्ग नहीं है, अपितु जिस अवस्था में और जिस स्थान में सुख और सुख की सामग्री का लाभ हो उसका नाम और विशेषकर गृहस्थ आश्रम का नाम स्वर्ग है।

(२७५) प्रश्न—'**अनस्थाः पूताः**' इत्यादि [अथर्व० ४।३४।२] तथा '**घृतह्रदा मधुकूलाः**' इत्यादि [अथर्व० ४।३४।६] इन दो मन्त्रों में बहुत स्त्रियाँ, घी के तालाब आदि तथा दही-दूध की नहरें मिलनी लिखी हैं, अतः पता लगा कि स्वर्ग पृथिवी से भिन्न लोक का नाम है॥

—पृ० २८५, पं० २१

उत्तर—श्रीमान्जी! स्वर्ग इस पृथिवी से भिन्न किसी स्थानविशेष का नाम नहीं है, अपितु गृहस्थाश्रम का नाम ही स्वर्ग है, क्योंकि पशुओं तथा व्यापार-सम्बन्धी तमाम वस्तुओं की मौजूदगी के कारण दूध, दही, शहद आदि की नहरें और तालाब गृहस्थ में ही मनुष्य को प्राप्त हो सकते हैं,अतः इन मन्त्रों में भी गृहथाश्रम का ही वर्णन है। जैसे—

अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः शुचयः शुचिमपि यन्ति लोकम्।
नैषां शिश्नं प्र दहति जातवेदाः स्वर्गे लोके बहु स्त्रैणमेषाम्॥ २॥
घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना।
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत्पिन्वमानाः॥ ६॥

—अथर्व० ४।३४।२,६

भाषार्थ—जिनकी हड्डियाँ नज़र नहीं आतीं अर्थात् मोटे-ताज़े हैं, बाहर से पवित्र तथा व्यायाम-प्राणायाम आदि द्वारा अन्दर से भी पवन द्वारा शुद्ध हुए-हुए उज्ज्वल ब्रह्मचारी लोग इस

पवित्र गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होते हैं, अर्थात् उक्त प्रकार के जितेन्द्रिय, पवित्र ब्रह्मचारी ही गृहस्थ में प्रवेश करने के योग्य होते हैं। यद्यपि इस स्वर्गलोक गृहस्थ में इनका बहुत-सी अपनी माता, बहिन, चाची, ताई मुहल्ले की, पड़ौसियों की पत्नियों, युवा लड़कियों आदि स्त्रियों के साथ रहने-सहने आदि का सम्बन्ध होता है तथापि इनके उपस्थेन्द्रिय को कामाग्नि प्रदीप्त नहीं कर सकती॥ २॥ इस गृहस्थाश्रम में गौ आदि पशु तथा वैश्य के व्यापार-सम्बन्धी सब वस्तुएँ होने के कारण घी के तालाब, शहद की नहरें, अर्क, दूध-दही और पानी की भारी धारें तुझे आनन्दपूर्वक प्राप्त हों। तेरे चारों तरफ़ मिठास बरसाती हों, कमलों से भरी झीलें हों॥ ६॥

गुरुकुल से गृहस्थ की विशेषता स्त्रियों की नज़दीकी ही तो है। ब्रह्मचारी पहले इस सम्पर्क से दूर था, अब वह पढ़कर, सीखकर और योग की क्रियाओं से पवित्र होकर गृहस्थों के संसार में आया है। यह दुनिया है स्वर्ग, किन्तु उसी सूरत में यदि मनुष्य काम-वासनाओं से ऊपर रहे, अपनी पत्नी के बिना सम्पूर्ण स्त्रियों को माता और बहिन की दृष्टि से देखे। फिर उसे खाने-पीने के लिए इतने दूध, घी, दही, मधु, मीठे जल मिलेंगे कि उनकी अधिकता को नहरों, तालाबों, झीलों से उपमा दी जा सकेगी और तुझे इस स्वर्गलोक गृहस्थ में अनन्त सुख मिलेगा, यह अभिप्राय है।

(२७६) प्रश्न—'स्वर्गे लोके न भयम्' इत्यादि [कठ० १। १२] यहाँ पर वर्णन है कि स्वर्ग में मनुष्य को भय, बुढ़ापा, भूख, प्यास नहीं सताती। —पृ० २८६, पं० ९

उत्तर—बिलकुल ठीक है, इसमें सन्देह ही क्या है? जो गृहस्थ धन, धान्य, गौ आदि पशु, ज्ञान, शस्त्रास्त्र आदि पदार्थों से परिपूर्ण और निश्चिन्त होगा उसमें भूख, प्यास, बुढ़ापा, भय के सताने का क्या काम? जैसेकि—

स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति।
उभे तीर्त्वाऽ शनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके॥ —कठ० १। १२

भाषार्थ—धन-धान्य, गौ आदि पशु तथा शस्त्रास्त्र की मौजूदगी के कारण स्वर्गलोक, अर्थात् गृहस्थाश्रम में कुछ भी भय नहीं है। न वहाँ पर मौत का डर है, क्योंकि ज्ञानी तथा शूरवीर लोग मौत से डरते ही नहीं और न वहाँ बुढ़ापे का भय है, क्योंकि चिन्ता से ही बुढ़ापा आता है। वहाँ पर भूख और प्यास दोनों पर विजय पाकर शोक से पार हुआ पुरुष स्वर्गलोक गृहस्थ में हर्ष-लाभ करता है॥ १२॥

(२७७) प्रश्न—'सहस्राश्वी' इत्यादि [ऐतरेयब्रा० २। १७] में लिखा है कि अति शक्तिशाली पवन के समान वेग रखनेवाले एक हज़ार घोड़े एक दिन में जितने मार्ग को चल सकते हैं उतनी दूर यहाँ से स्वर्ग है। —पृ० २८६, पं० १७

उत्तर—आपने इस पाठ के अर्थ ग़लत किये हैं तथा यहाँ चक्रवर्ती राज्य का प्रकरण है। ब्राह्मणग्रन्थों ने चक्रवर्ती राज्य को भी स्वर्ग माना है। यहाँ पर उसकी अवधि बतलाई गई है कि—

सहस्राश्वीने वा इतः स्वर्गो लोकः॥ —ऐतरेयब्रा० २। १७

भाषार्थ—एक हज़ार घोड़े एक दिन में यहाँ से जितना दौड़ सकते हैं उतने वर्गमील के साम्राज्य का नाम स्वर्गलोक है॥ १७॥ इसमें निम्न प्रमाण है—

साम्राज्यं वै स्वर्गो लोकः॥ —ताण्ड्यब्रा० ४। ६। २४

चक्रवर्ती साम्राज्य का नाम स्वर्गलोक है। इसलिए हमारा अर्थ प्रकरणानुसार ठीक है, क्योंकि आपके दिये हुए पाठ में ऐसा कोई शब्द नहीं है, जिससे यह अर्थ निकले कि यहाँ से ऊपर को इतनी दूर स्वर्गलोक है। जिस साम्राज्य में न्यायकारी राजा राज्य करता हो वह स्वर्गलोक है और वह तमाम संसार से ऊपर की भाँति है, अर्थात् श्रेष्ठ है और साधारण स्थिति से पृथक् की भाँति

है, अर्थात् विशेषता रखता है। इसीलिए ब्राह्मणग्रन्थों में आता है कि—

उपरीव स्वर्गो लोकः॥ —तैत्तिरीय० ३।२।१।५

स्वर्गलोक ऊपर की भाँति है, अर्थात् ऊपर को नहीं है, अपितु ऊपर की भाँति श्रेष्ठ है।

पराङ् वि वै स्वर्गो लोकः॥ —शत० १३।१।३।३।

स्वर्गलोक पृथक् की भाँति है, अर्थात् पृथक् नहीं है, किन्तु आम [साधारण] संसार से विशेष गुणवान् होने के कारण पृथक्-सा है, अतः सिद्ध हुआ कि स्वर्ग ऊपर को नहीं है, अपितु इसी पृथिवी पर साम्राज्य का नाम स्वर्ग है जिसका परिमाण इस उपर्युक्त पाठ में बताया है।

(२७८) प्रश्न—स्वामी दयानन्दजी सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं कि सुख का नाम स्वर्ग और दुःख का नाम नरक है। अब पाठक विचार लें कि आर्यसमाज मत वैदिक है या वेदविरुद्ध है। —पृ० २८६, पं० २१

उत्तर—हम पूर्णरूप से प्रमाणों के साथ यह सिद्ध कर चुके हैं कि सुख और सुख की विशेष सामग्री जहाँ हो उसका नाम स्वर्ग है और वह पृथिवी से भिन्न कोई विशेष स्थान नहीं है। अन्य प्रमाण देखिए—

स्वर्गो वै लोको नाकः॥ —शत० ६।३।३।१४

प्रति तिष्ठा शरीरैः स्वर्गं याहि पथिभिर्देवयानैः॥ —अथर्व० २।३४।५

अर्थ—स्वर्गलोक ही निश्चय से नाक=दुःखरहित लोक है।

हे मनुष्य! तू विद्वानों के मार्ग पर चलता हुआ सुख को प्राप्त हो और अपने शरीरों से प्रतिष्ठित हो।

इन दोनों प्रमाणों से सिद्ध है कि इसी पृथिवी पर ही सुखविशेष का नाम स्वर्ग है।

भला! आप किस मुँह से कहते हैं स्वर्ग ऊपर कोई विशेष स्थान है? जब आपके यहाँ ही पृथिवी पर स्वर्ग लिखा है, तभी तो अर्जुन ने पाँच वर्ष स्वर्ग में शस्त्रविद्या की शिक्षा पाई, जैसे—

गृहीतास्त्रस्तु कौन्तेयो भ्रातॄन् संस्मार पाण्डवः। पुरन्दरनियोगाच्च पञ्चाब्दानवसत् सुखी॥५॥

—महा० वन० अ० ४४

भाषार्थ—अर्जुन ने शस्त्रों को ग्रहण करके अपने भाइयों को याद किया। इन्द्र की आज्ञा से पाँच वर्ष सुखपूर्वक स्वर्ग में निवास किया॥५॥

तथा युधिष्ठिर इसी शरीर से स्वर्ग में गया। जैसे—

अनेन त्वं शरीरेण स्वर्गं गन्ता न संशयः। —महा० महाप्रस्थानिक० अ० श्लो० ६

अर्थ—तू इसी शरीर से स्वर्ग में चला जाएगा, इसमें संशय नहीं है॥६॥

फिर गङ्गा का स्वर्ग से शिव के सिर पर गिरना, जैसे—

पतमानां सरिच्छ्रेष्ठां धारयिष्ये त्रिविष्टपात्।

एतत् श्रुत्वा वचो राजा शर्वेण समुदाहृतम्॥५॥ —महा० वन० अ० १०९

भाषार्थ—स्वर्ग से गिरती हुई गङ्गा को मैं सिर पर धारण करूँगा, राजा ने शिव के मुख से यह बात सुनकर॥५॥ गङ्गा से कहा और वह शिव के सिर पर गिरी।

इसके अतिरिक्त अप्सराएँ भी ऋषियों से सन्तान पैदा करती रही हैं।

परिणाम—अर्जुन का स्वर्ग में शस्त्रविद्या सीखकर आना, युधिष्ठिरादि का स्वर्गार्थ पर्वत पर चढ़ना तथा सशरीर स्वर्ग में जाना, गङ्गा का स्वर्ग से शिव के सिर पर गिरना, स्वर्ग के निवासी स्त्री-पुरुषों का ऋषि तथा ऋषि-पत्नियों से समागम करके सन्तान पैदा करना इत्यादि घटनाओं

से सिद्ध है कि पौराणिक स्वर्ग भी पृथिवी पर ही है और उसका नाम त्रिविष्टप=तिब्बत है। जैसेकि तीर्थों का वर्णन करते हुए प्रत्येक मनुष्य के लिए त्रिविष्टप तीर्थ की भी यात्रा करना लिखा है। वह तीर्थ आस्मान पर नहीं हो सकता, अपितु पृथिवी पर ही हो सकता है। जैसे—

ततस्त्रिविष्टपं गच्छेत् त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्। तत्र वैतरणी पुण्या नदी पापप्रणाशिनी॥ ८३॥
तत्र स्नात्वार्चयित्वा च शूलपाणिं वृषध्वजम्। सर्वपापविशुद्धात्मा गच्छेत परमां गतिम्॥ ८४॥

—महा० वन० अ० ८३

भाषार्थ—इसके पीछे तीनों लोकों में प्रसिद्ध त्रिविष्टप (स्वर्ग) तीर्थ में जाए। वहाँ पर पापों के नाश करनेवाली वैतरणी नाम की नदी है॥ ८३॥ वहाँ पर स्नान करके और शिव की पूजा करके सब पापों से शुद्धात्मा होकर परमगति को प्राप्त करे॥ ८४॥

इससे सिद्ध हुआ कि पौराणिक स्वर्ग इसी पृथिवी पर है, जिसका नाम त्रिविष्टप=तिब्बत है। वहाँ के राजा का नाम इन्द्र, पुरुषों का नाम देवता और स्त्रियों का नाम अप्सरा है। उनका भारतवर्ष के ऋषियों के साथ आना-जाना, खाना-पीना, लड़ना, व्यभिचार करना-कराना, सन्ताप पैदा करना-कराना आदि प्रत्येक प्रकार का व्यवहार रहा है।

शूद्र को वेद का अधिकार

(२७९) प्रश्न—वेद ने जिन वर्णों को यज्ञ करने का अधिकार दिया है, उन्हीं को वेद पढ़ने का भी अधिकार दिया। —पृ० २९७, पं० २०

उत्तर—आपने कोई ऐसा वेदमन्त्र पेश नहीं किया जिससे यह सिद्ध हो कि वेद ने शूद्रों को यज्ञ का अधिकार नहीं दिया, अथवा सिद्ध हो सके कि शूद्रों को वेद का अधिकार भी नहीं है। लीजिए, हम आपको वेद से बतलाते हैं कि जैसे परमात्मा ने वेद का अधिकार मनुष्यमात्र को दिया है वैसे ही यज्ञ का अधिकार भी मनुष्यमात्र को दिया है। जैसे—

तदद्य वाचः प्रथमं मसीय येनासुराँ अभि देवा असाम।
ऊर्जाद उत यज्ञियासः पंच जना मम होत्रं जुषध्वम्॥ —ऋ० १०।५३।४

'पञ्चजना मम होत्रं जुषध्वं' गन्धर्वाः पितरो देवा असुरा रक्षांसीत्येके। चत्वारो वर्णा निषादः पञ्चम इत्यौपमन्यवः। निषादः कस्मान्निषदनो भवति निषण्णमस्मिन् पापकमिति नैरुक्ताः। 'यत् पाञ्चजन्यया विशा' पञ्चजनीनया विशा। पञ्च पृक्ता संख्या स्त्रीपुंनपुंसकेष्वविशिष्टा।

—निरु० अ० खं० ८।१

भाषार्थ—वह वाणी का अत्युत्तम बल है, जिससे हम असुरों का पराभव करें। हे देवो! आप अन्न-भक्षण करते हुए यज्ञ-सम्पादन करते हुए और हे मनुष्यो! निषाद को मिलाकर पाँचों वर्ण तुम मेरे अग्निहोत्र का सेवन करो॥ ४॥ 'पाँच जन मेरे अग्निहोत्र का सेवन करो' गन्धर्व, पितर, देव, असुर, राक्षस ये पाँच कई मानते हैं। चारों वर्णन पाँचवाँ निषाद—ऐसा उपमन्यु के मत वाले मानते हैं। जो प्राणियों का वध करे वह निषाद, अथवा जिसमें पाप स्थित हो वह निषाद है। पाँच जनसमुदाय ऋत्विजों के साथ हो। पाँच संख्या विशिष्ट अर्थात् पाँच स्त्रियाँ, पाँच पुरुष, पाँच नपुंसक—सारांश यह कि पाँच कोई हों, कोई विशेषता नहीं है (निरुक्त)।

कहिए श्रीमान्जी! अब तो आपको शूद्रादि को वेद पढ़ाने में शंका न होगी? जहाँ वेद मनुष्यमात्र को वेद तथा यज्ञ का अधिकारी मानते हैं वहाँ पुराण भी वेदों का अनुमोदन करते हैं। जैसे—

मिस्त्रदेशोद्भवा म्लेच्छाः काश्यपेनैव शासिताः। संस्कृताः शूद्रवर्णेन ब्रह्मवर्णमुपागताः॥ ७२॥

शिखासूत्रं समाधाय पठित्वा वेदमुत्तमम्। यज्ञैश्च पूजयामासुर्देवदेवं शचीपतिम्॥ ७३॥

—भविष्य० प्रतिसर्ग० खं० ४ अ० २०

भाषार्थ—मिस्र देश के पैदा हुए म्लेच्छों पर कण्व ने शासन किया, उनका शूद्रवर्ण से संस्कार आरम्भ किया, वे ब्राह्मणवर्ण तक को प्राप्त हो गये॥ ७२॥ सिर पर चोटी रक्खी, गले में जनेऊ पहना और उत्तम वेद को पढ़कर यज्ञों से इन्द्राणी के पति इन्द्र की उन्होंने पूजा की॥ ७३॥

अब तो आपके घर से ही म्लेच्छों तक का यज्ञाधिकार, वेद-पठन तथा यज्ञोपवीत सिद्ध हो गया। अब आपको वेद तथा ऋषि दयानन्दजी के लेख पर क्या शंका हो सकती है?

(२८०) प्रश्न—'स्तुता मया वरदा' इत्यादि [अथर्व० १९।७१।१] इस मन्त्र में गायत्री द्वारा द्विजों का ही पवित्र होना लिखा है। मन्त्र में यह स्पष्ट है कि गायत्री द्विजों को ही पवित्र करती है। द्विजेतर शूद्र यदि रात-दिन गायत्री जपें तब भी वह शूद्रों को पवित्र नहीं करती।

—पृ० २९७, पं० २२

उत्तर—द्विज उसको कहते हैं जो चार, तीन, दो या कम-से-कम एक वेद को अर्थसहित जानता हो और तदनुकूल आचरण भी करे। जो मनुष्य प्रयत्न करने पर एक वेद भी नहीं पढ़ सका या पाठमात्र ही पढ़ा हो, अर्थ न जानता हो, या अर्थ जानता हुआ भी तदनुकूल आचरण न करे, वह द्विज कहलाने का अधिकारी नहीं है अपितु वही शूद्र है, जैसाकि निरुक्त में लिखा है कि—

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा॥ —निरु० १।१८

भाषार्थ—जो वेद को स्वर और पाठमात्र पढ़के अर्थ नहीं जानता वह जैसा वृक्ष, डाली, पत्ते, फूल, फल और पशु, धान्य आदि का भार उठाता है वैसे भारवाह अर्थात् भार का उठानेवाला है और जो वेद को पढ़ता और उनका यथावत् अर्थ जानता है, वही सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होके देहान्त के पश्चात् ज्ञान से पापों को छोड़, पवित्र धर्माचरण के प्रताप से सर्वानन्द को प्राप्त होता है।

सारांश यह है कि न पढ़नेवाले तथा पढ़कर भी अर्थ न जाननेवाले तथा अर्थ जानकर भी तदनुकूल आचरण न करनेवाले को वेद या वेद का कोई मन्त्र कुछ भी लाभ नहीं पहुँचा सकता, अपितु ऐसा मनुष्य शूद्र ही रह जाता है। जो वेदार्थ को जानकर तदनुकूल आचरण करता है वही द्विज है और वही वेद या उसके मन्त्रों से लाभ उठा सकता है। इसी बात को उपर्युक्त मन्त्र कहाता है। जैसे—

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्।
मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥ —अथर्व० १९।७१।१

भाषार्थ—मन को उत्साह से प्रेरणा करनेवाली, द्विजों को पवित्र करनेवाली, श्रेष्ठ ज्ञान देनेवाली वेदमाता की मैंने स्तुति की है। मैंने अध्ययन-आचरण किया है। वह वेदमाता आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, ज्ञान, तेज मुझे देकर मुक्ति प्राप्त करावे॥ १॥

यदि इससे आपका यह अभिप्राय हो कि जो द्विजों के घर पैदा हुए हैं वही वेद पढ़ सकते हैं, अन्य नहीं, तो आपका यह सिद्धान्त स्वयं वेद के विरुद्ध है, क्योंकि ईश्वर कहता है कि—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्याᳫं शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च॥ —यजुः० २६।२

भाषार्थ—हे मनुष्यो! मैं ईश्वर जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अपने स्त्री, सेवकादि

और उत्तम लक्षणयुक्त प्राप्त हुए अन्त्यज के लिए भी—इन उक्त सब मनुष्यों के लिए इस संसार में इस प्रकट की हुई, सुख देनेवाली, चारों वेदरूप वाणी का उपदेश करता हूँ वैसे आप लोग भी अच्छे प्रकार उपदेश किया करें॥ २॥

इससे सिद्ध है कि वेद पढ़ने का मनुष्यमात्र को अधिकार है। कोई अपने अधिकार का इस्तेमाल करे या न करे इस बारे में प्रत्येक मनुष्य स्वतन्त्र है। जो वेद को अर्थसहित पढ़कर तदनुकूल आचरण करेगा वह द्विज बन जाएगा। जो नहीं करेगा वह शूद्र रह जावेगा। यही वेद का सिद्धान्त है। आपके पुराण भी यही कहते हैं कि—

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा ये शुचयोऽ मलाः।
तेषां मन्त्राः प्रदेया वै न तु संकीर्णधर्मिणाम्॥ ६२॥ —भविष्य० उत्तर अ० १३
शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्राताम्।
क्षत्रियो याति विप्रत्वं विद्याद्वैश्यं तथैव च॥ ४७॥ —भविष्य० ब्राह्म० अ० ४०

भाषार्थ—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा पवित्र शूद्र—इनको वेदमन्त्र पढ़ाने चाहिएँ, धर्म से भ्रष्ट लोगों को नहीं॥ ९२॥ वेद पढ़ने आदि से शूद्र ब्राह्मण बन जाता है और वेद आदि त्याग से ब्राह्मण शूद्र हो जाता है। ऐसे ही क्षत्रिय और वैश्य भी शूद्र और ब्राह्मणादि बन सकते हैं।

आपने जो वेदमाता का अर्थ गायत्री किया है यद्यपि वह ठीक नहीं है, क्योंकि वेदमाता का अर्थ है वेदरूप माता तथापि, आपका यह कहना कि गायत्री शूद्रों को पवित्र नहीं करती, यह बात आपके पुराणों के ही विरुद्ध है, यथा—

ते सर्वे तपसा देवीं तुष्टुवुश्च सरस्वतीम्। पञ्चवर्षान्तरे देवी प्रादुर्भूता सरस्वती।
सपत्नीकाँश्च तान् म्लेच्छाञ्छूद्रवर्णाय चाकरोत्॥ १६॥
द्विसहस्रास्तदा तेषां मध्ये वैश्या बभूविरे॥ १७॥
तेषां चकार राजानं राजपुत्रपुरं ददौ॥ १९॥ —भविष्य० प्रति सर्ग० खं० ४ अ० २१

भाषार्थ—उन सबने तप के द्वारा सरस्वती देवी को प्रसन्न किया। पाँच वर्ष के पीछे सरस्वती देवी प्रकट हुई। उनकी पत्नियोंसमेत म्लेच्छों को शूद्र बना दिया॥ १६॥ उनके अन्दर से दो हज़ार वैश्य बन गये॥ १७॥ बाकियों को राजा बना दिया और राजपुत्र नगर उनको दे दिया॥ १९॥

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि आपका लेख वेद तथा पुराणों के भी सर्वथा विरुद्ध होने से निर्मूल है।

(२८१) प्रश्न—'अधीयीरन्' इत्यादि [मनु० १०। १] इसमें आता है कि पढ़नेवाले तीन वर्ण हों? और पढ़ानेवाला ब्राह्मण ही हो। —पृ० २९८, पं० १०

उत्तर—हम पहले यह सिद्ध कर चुके हैं कि जो अर्थसहित वेद को पढ़=जानकर तदनुकूल कर्म करता है वह द्विज है, जो ऐसा नहीं करता वह शूद्र है। यहाँ पर प्रारम्भिक शिक्षा का वर्णन नहीं है, अपितु गृहस्थाश्रम में रहते हुए वर्णों की वृत्ति अर्थात् पेशे का वर्णन है। तभी तो 'स्वकर्मस्था' यह पद आया है तथा इससे अगला श्लोक मिलाकर यह साफ़ हो जाता है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य अपना स्वाध्याय तो जारी रक्खें, उसका कभी भी परित्याग न करें, किन्तु पढ़ाने का काम ब्राह्मण ही करे। वैश्य और क्षत्रिय अपने-अपने वर्णानुकूल काम में स्थिर रहते हुए स्वाध्याय अवश्य करते रहें—

अधीयीरंस्त्रयो वर्णाः स्वकर्मस्था द्विजातयः। प्रब्रूयाद् ब्राह्मणस्त्वेषां नेतराविति निश्चयः॥ १॥
सर्वेषां ब्राह्मणो विद्याद् वृत्त्युपायान्यथाविधि। प्रब्रूयादितरेभ्यश्च स्वयं चैव तथा भवेत्॥ २॥
—मनु० १०। १-२

भाषार्थ—तीनों वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने-अपने वर्णानुसार कर्मों में स्थिर रहते हुए स्वाध्याय तो करें किन्तु पढ़ाने का काम ब्राह्मण ही करे; वैश्य-क्षत्रिय पढ़ाने का काम न करें, यह निश्चित व्यवस्था है॥ १ ॥ सबकी वृत्ति के उपाय ब्राह्मण को विधिपूर्वक जानने चाहिएँ और दूसरों को बताते हुए स्वयं भी वैसा होना चाहिए॥ २ ॥

जो मनुष्य द्विज बनने के अयोग्य सिद्ध होकर शूद्र वर्ण में व्यवस्थित हो चुका है बेशक उसको पढ़ने और पढ़ाने का अधिकार नहीं है, क्योंकि वह पढ़ने-पढ़ाने की योग्यता ही नहीं रखता। यदि उसमें पढ़ने-पढ़ाने की योग्यता होती तो वह शूद्र ही क्यों बनाया जाता? यह इन श्लोकों का अभिप्राय है।

यदि इस श्लोक से आपका यह अभिप्राय हो कि जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के घर में पैदा हुए बालक हैं उनमें से शूद्र के बालकों को पढ़ने का अधिकार ही नहीं और वैश्य तथा क्षत्रिय के बालक भी पढ़ने का ही अधिकार रखते हैं पढ़ाने का नहीं, अर्थात् चारों वर्णों में जो बालक जिस वर्ण में पैदा हों वे उसी-उसी वर्ण में रहेंगे, उन्नत या अवनत नहीं हो सकते तो यह बात प्रथम तो वेद के ही विरुद्ध है, क्योंकि वेद मनुष्यमात्र को वेद पढ़ने तथा उन्नति करने का अधिकार देता है। दूसरे, आपका यह विचार स्वयं मनु के भी विरुद्ध है, क्योंकि मनुजी जन्म के पश्चात् उन्नति और अवनति के सिद्धान्त को स्वीकार करते है। जैसेकि—

तपोबीजप्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे। उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः॥ ४२ ॥

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः। वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च॥ ४३ ॥

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्। क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च॥ ६५ ॥

—मनु० अ० १०

भाषार्थ—कोई तप के प्रभाव से विश्वामित्र की भाँति, कोई बीज के प्रभाव से ऋष्यशृंग की भाँति सब मनुष्य प्रत्येक युग में इस संसार में जन्म की अपेक्षा उन्नति और अवनति को प्राप्त होते हैं॥ ४२ ॥ शनैः-शनैः कर्मों के भ्रष्ट हो जाने से और ब्राह्मण-उपदेशकों के दर्शन न होने से ये क्षत्रियों की जातियाँ शूद्रवर्ण को प्राप्त हो गईं॥ ४३ ॥ शूद्र वेद के पढ़ने तथा तदनुकूल कर्म करने से ब्राह्मण बन जाता है तथा ब्राह्मण वेद के विरुद्ध कर्म करने से शूद्र हो जाता है। इसी प्रकार क्षत्रिय तथा वैश्य भी ब्राह्मण और शूद्र बन जाते हैं॥ ६५ ॥

इससे सिद्ध है कि प्रत्येक मनुष्य को वेद पढ़ने का अधिकार है और तदनुकूल कर्म करने से प्रत्येक को उन्नति कने का अधिकार वेद तथा मनुस्मृति के अनुकूल है।

(२८२) प्रश्न—'न शूद्रे पातकम्' इत्यादि [मनु० १०।१२६] तथा **'धर्मेप्सवः'** इत्यादि [मनु० १०।१२७] मनु ने इस प्रकरण में स्पष्ट लिख दिया कि शूद्र वेदमन्त्र का उच्चारण न करे। केवल प्रणाम करता हुआ मन्त्रवर्जित पञ्चयज्ञों को पूर्ण करे। —पृ० २९८, पं० १६

उत्तर—हम बता चुके हैं कि जो अर्थसहित वेद पढ़कर तदनुकूल कर्म करता है, वह द्विज है और जो ऐसा नहीं करता वह शूद्र है। जब वेद के न जानने के कारण ही उसे शूद्र बनाया गया है तो फिर वह वेदमन्त्र उच्चारण करेगा ही कैसे? और यदि वह योग्यता न रखते हुए वेद का उच्चारण करेगा तो वह उच्चारण अशुद्ध व अर्थरहित होगा, जिससे कोई लाभ न होगा। हाँ, यदि वह शूद्र रहते हुए धर्म में श्रद्धा रखता है तो वह मन्त्रों का उच्चारण न करते हुए भी पाँचों महायज्ञ कर सकता है। उसके लिए धर्मानुष्ठान की मनाही नहीं है। इस बात का वर्णन मनुजी ने इस प्रकार किया है—

न शूद्रे पातकं किञ्चिन्न च संस्कारमर्हति। नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम्॥ १२६ ॥

धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तमनुष्ठिताः। मन्त्रवर्ज्यं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च॥ १२७॥

—मनु० अ० १०

भाषार्थ—शूद्र में कोई पापकर्म, मांसभक्षण, सुरापान, असत्य-भाषण, चोरी, व्यभिचारादि नहीं होना चाहिए। वेद के पढ़ने तथा तदनुकूल आचरण करने की योग्यता न रखने के कारण वह यज्ञोपवीत आदि वैदिक संस्कारों का अधिकारी नहीं है। इसका ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के धर्मों में प्रवृत्त होने का अधिकार नहीं तथा साधारण धर्म में प्रवृत्ति रखने का इसको निषेध भी नहीं है॥ १२६॥ धर्म की इच्छा रखनेवाले साधारण धर्म को जाननेवाले और सत्पुरुषों के आचरण का अनुकरण करनेवाले शूद्र यदि मन्त्रों का उच्चारण न करते हुए नित्य कर्मों को करें तो कोई दोष नहीं है, अपितु इससे वे प्रशंसा को प्राप्त होते हैं॥ १२७॥

इन श्लोकों से यह स्पष्ट है कि जो लोग वेद के पढ़ने तथा तदनुकूल आचरण करने की योग्यता न रखने के कारण शूद्र रह गये हैं वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के कर्मों में हस्तक्षेप न करें, क्योंकि वे इन कामों की योग्यता नहीं रखते। हाँ, उनको साधारण धर्म का पालन करते हुए कोई पापाचरण न करना चाहिए, क्योंकि पापाचरण करने से वे शूद्र भी न रह सकेंगे अपितु आचारहीनता के कारण उनकी गणना राक्षसों में हो जावेगी। इन श्लोकों का यही अभिप्राय है।

यदि आपके विचार में इन श्लोकों का यह अभिप्राय है कि जिनका शूद्र के घर जन्म हो गया वे वेदाध्ययन करके उन्नति कर ही नहीं सकते और जिनका जन्म ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के घर हो गया वे किसी अवस्था में भी शूद्र नहीं बन सकते, अर्थात् वेद का पढ़ना आदि जन्मानुसार वर्णव्यस्था पर ही है, कर्मानुसार वर्ण तब्दील नहीं हो सकता तो यह बात स्वयं वेद तथा मनुस्मृति के भी विरुद्ध है। देखिए मनुजी क्या कहते हैं—

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च। त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात्॥ ९२॥
इतरेषां तु पण्यानां विक्रयादिह कामतः। ब्राह्मणः सप्तरात्रेण वैश्यभावं नियच्छति॥ ९३॥

—मनु० १०

यद् दुस्तरं यद् दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुष्करण्। सर्वं तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्॥ २३८॥

—मनु० ११

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरते श्रमम्। स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥ १६८॥
आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद्वेदपारगः। उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साजरामरा॥ १४८॥

—मनु० २

भाषार्थ—मांस बेचने से ब्राह्मण तत्काल पतित हो जाता है। लाख और नमक के बेचने से भी तत्काल पतित हो जाता है। ब्राह्मण दूध बेचने से तीन दिन में शूद्र हो जाता है॥ ९२॥ अपनी इच्छा से दूसरी वस्तुओं का व्यापार करते हुए ब्राह्मण सात रात्रि में वैश्य वर्ण को प्राप्त हो जाता है॥ ९३। जो कठिनता से तरने के योग्य अर्थात् संसाररूप समुद्र, जो कठिनता से प्राप्त होने योग्य अर्थात् इसी शरीर से शूद्र का ब्राह्मणादि बनना, जो दुःख से जाने योग्य देश-देशान्तर तथा जो दुःख से करने योग्य योगाभ्यास आदि कर्म हैं, वे सब तप से सिद्ध हो जाते हैं। तप का अतिक्रमण कोई भी नहीं कर सकता॥ २६८॥ जो द्विज वेद न पढ़के अन्यत्र प्रयत्न करता है वह जीता हुआ इसी जन्म में शीघ्र ही परिवारसहित शूद्रवर्ण को प्राप्त हो जाता है॥ १६८॥ वेदों का पारंगत आचार्य वेद के अनुसार गायत्री से इस ब्रह्मचारी की जिस जाति को कर्मानुसार नियत कर देता है, वही सत्य है, वही अजर है, वही अमर है॥ १४८॥

इससे स्पष्ट हो गया कि मनुजी महाराज मनुष्यमात्र को वेद पढ़ने का अधिकार मानते हैं। जो वेद को अर्थसहित पढ़कर तदनुकूल कर्म करता है वह द्विज बन सकता है और जो ऐसा

नहीं करता वह शूद्र रह जाता है। उसका जन्म चाहे किसी के घर का भी क्यों न हो वेद पढ़ने तथा उन्नति करने का प्रत्येक को अधिकार है। कोई अपने अधिकार का प्रयोग करके उन्नति करे या न करे इसमें प्रत्येक मनुष्य स्वतन्त्र है। यही मनुजी का अभिप्राय है। आपकी यह प्रतिज्ञा कि जन्म के शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है, वेद तथा स्मृति के भी विरुद्ध होने से सर्वथा मिथ्या और निर्मूल है।

(२८३) प्रश्न—'संस्कारपरामर्शात्' इत्यादि [शारी० अ० १ पा० ३ सू० ३६] बताता है कि संस्कार का अभाव होने और अभिलाप से शूद्र वेदविद्या पढ़ने का अधिकारी नहीं है।

—पृ० २९९, पं० ७

उत्तर—श्रीमान्‌जी! वेदान्त का यह सूत्र तो हमारी ही पुष्टि करता है, आपकी नहीं। भला! बतलाइए तो सही, इस सूत्र में यह कहाँ लिखा है कि 'जिसका जन्म शूद्र के घर का हो उसको वेद पढ़ने का अधिकार नहीं'? और इस सूत्र में यह भी नहीं है कि 'शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है' अपितु सूत्र यह कहता है कि 'निकृष्ट संस्कारों के कारण जिसमें वेद पढ़ने की सामर्थ्य न हो उसको वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है चाहे उसका जन्म किसी के घर का भी क्यों न हो।' जिसमें वेद पढ़ने की योग्यता नहीं है वही शूद्र है और उसे ही वेद पढ़ने के अधिकार का निषेध किया गया है। जैसेकि—

संस्कारपरामर्शात्तदभावाभिलापाच्च॥ ३६॥

भाषार्थ—(च) और **(संस्कारपरामर्शात्)** संस्कारों के परिणाम के रूप से **(तदभावाभिलापात्)** सामर्थ्य का अभाव पाये जाने से, अधिकार का निषेध है॥ ३६॥

कहिएगा, इसमें शूद्र को वेद पढ़ने का कहाँ निषेध है और अभिलाप के अर्थों को क्यों हड़प कर गये, जिसका अर्थ सामर्थ्य है?

इससे सिद्ध हुआ कि निकृष्ट संस्कारों के कारण जिसमें वेद पढ़ने की सामर्थ्य नहीं है उसी का नाम शूद्र है और उसे ही अयोग्य होने के कारण वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है, चाहे उसका जन्म ब्राह्मणादि किसी के घर का हो, यही इस सूत्र का अभिप्राय है।

यदि आप इस सूत्र का यह अभिप्राय निकालते हैं कि जिसका जन्म शूद्र के घर का हो और जातकर्मादि संस्कार न होने के कारण उसे वेद वा यज्ञ का अधिकार नहीं तो—

रथं ये चक्रुः सुवृतं सुचेतसोऽविह्वरन्तं मनसस्परि ध्यया।
ताँ ऊ न्वस्य सवनस्य पीतय आ वो वाजा ऋभवो वेदयामसि॥ —ऋ० ४। ३६। २

भाषार्थ—हे निपुण कारीगरो! जो आप लोग शुद्धचित्त होकर, मन के पूर्ण ध्यान से सुन्दर, गोल, सीधा रथ बनाते हैं, उन आप लोगों को इस यज्ञ का भाग लेने के लिए हम आमन्त्रित करते हैं॥ २॥

निरुक्त-भाष्यकार दुर्गाचार्य रथकार को निषाद मानता है और उसे यज्ञाधिकार में यह प्रमाण देता है तथा पुराणों में कितने ही शूद्र और अन्त्यज बिना संस्कारों के ब्राह्मण बन गय। जैसेकि—

विद्वत्सदसि योऽप्याह संस्कारात् ब्राह्मणो भवेत्। न्यायज्ञैः स निराकार्यो वाक्यैर्न्यायानुसारिभिः॥ ७॥
संस्कृतोऽपि दुराचारो नरकं याति मानवः। निःसंस्कारः सदाचारो भवेद्विप्रोत्तमः सदा॥ १६॥
आचारमनुतिष्ठन्तो व्यासादिमुनिसत्तमाः। गर्भाधानादिसंस्कारकलापरहिताः स्फुटम्॥ २०॥
विप्रोत्तमाः श्रियं प्राप्ताः सर्वलोकनमस्कृताः। बहवः कथ्यमाना ये कतिचित्तन्निबोधत॥ २१॥
जातो व्यासस्तु कैवर्त्याः श्वपाक्याश्च पराशरः। शुक्याः शुकः कणादाख्यास्तथोलूक्याः सुतोऽभवत्॥ २२॥
मृगीजोऽथर्ष्यश्रृंगोऽपि वसिष्ठो गणिकात्मजः। मन्दपालो मुनिश्रेष्ठो नाविकापत्यमुच्यते॥ २३॥

माण्डव्यो मुनिराजस्तु मण्डूकीगर्भसम्भवः। बहवोऽन्येऽपि विप्रत्वं प्राप्ता ये पूर्ववद् द्विजाः ॥ २४॥
—भविष्य० ब्र० अ० ४२

भाषार्थ—विद्वानों की सभा में जो भी कहे कि संस्कार से ब्राह्मण होता है, न्याय के जाननेवालों को न्याय के वचनानुसार उनका खण्डन करना चाहिए॥७॥ संस्कार हुआ दुराचारी मनुष्य नरक में जाता है। बिना संस्कारों के भी सदाचारी सदा उत्तम ब्राह्मण होता है॥१६॥ व्यासादि श्रेष्ठ मुनि गर्भाधान आदि संस्कार-कलाप से रहित भी आचार का अनुष्ठान करते हुए स्पष्ट ब्राह्मण बने॥२०॥ और शोभा को प्राप्त हुए एवं सारे संसार में पूज्य बने। ऐसे बहुत-से नाम कहे जा सकते हैं, कुछ के नाम सुनो॥२१॥ व्यास मल्लाहनी=नौका चलानेवाली के पैदा हुए, पराशर चाण्डाली के पैदा हुए, शुकदेव शुकी के पैदा हुए, कणादमुनि उलूकी के पैदा हुए॥२३॥ मुनिराज माण्डव्य मेंढकी के पैदा हुए; और भी बहुत सारे हैं जो पहले की भाँति ब्राह्मण बन गये॥२४॥

कहिए महाराज! ये सारे शूद्र, चाण्डाल, अन्त्यज, कंजरादि के घर पैदा होकर क्या बिना वेद पढ़े ही ब्राह्मण बन गये? क्या इनको वेद का अधिकार न था? यदि था तो स्पष्ट स्वीकार करो कि मनुष्यमात्र को वेद पढ़ने तथा तदनुकूल आचरण करने से ब्राह्मण तक भी बनने का अधिकार है।

(२८४) प्रश्न—'श्रवणाध्ययनार्थ' इत्यादि [शा० अ० १ पा० ३ सू० ३८] स्मृति से शूद्र का वेदश्रवण और अध्ययन का निषेध है। —पृ० २९९, पं० १०

उत्तर—हम सिद्ध कर चुके हैं कि जो मनुष्य प्रयत्न करते हुए भी वेद नहीं पढ़ सकता उसी का नाम शूद्र है। उसी को वेद सुनाने तथा पढ़ाने का स्मृतियों ने निषेध किया है, क्योंकि उसे वेद सुनाना तथा पढ़ाना व्यर्थ है। इसी बात का उक्त सूत्र वर्णन कर रहा है—

श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात्स्मृतेश्च॥ ३८॥ —वे० १।३।३८

भाषार्थ—**(च)** और **(स्मृतेः)** स्मृति से भी **(श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात्)** श्रवण तथा अध्ययन का प्रतिषेध पाया जाता है॥३८॥

इस सूत्र का वही अभिप्राय है जो हमने ऊपर वर्णन किया है। कोई व्यक्ति किसी के घर भी पैदा हुआ हो, यदि वह अर्थसहित वेद को पढ़के तदनुकूल आचरण नहीं करता तो वह शूद्र है। उसी को योग्यता का अभाव होने से वेद का सुनाना और पढ़ाना मना है। इसके ये अर्थ नहीं हैं कि जो मनुष्य शूद्र के घर पैदा होकर भी पढ़ने की योग्यता रखता हो उसको भी पढ़ने का अधिकार नहीं है।

यदि आप ऐसा मानेंगे तो—

यत्पाञ्चजन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत।
अस्तृणाद् बर्हणा विपोर्यो मानस्य स क्षयः॥ —ऋ० ८।६३।७

भाषार्थ—जब पञ्चनद समुदाय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद के साथ ऋत्विक् लोग वर्षा न होने पर वर्षा के लिए इन्द्र की स्तुति करते हैं तब उन स्तुतियों को सुनकर प्रसन्नचित्त हुआ इन्द्र वर्षा के लिए मेघों को अपने बढ़े हुए वज्र से ताड़न करता हुआ सारे जगत् का ईश्वर, बल का निवास वर्षा का विस्तार करता है। इस मन्त्र का भाष्य करते हुए दुर्गाचार्य निषाद तथा शूद्रों को यज्ञ तथा वेद का अधिकार स्वीकार करते हैं।

इसके अतिरिक्त पुराण तो शूद्र को यज्ञोपवीत का अधिकार भी स्वीकार करते हैं, जैसे—

कुशसूत्रं द्विजानां स्याद्राज्ञां कौशेयपट्टकम्। वैश्यानां चीरणं क्षौमं शूद्राणां शणवल्कजम्॥ ९॥
कार्पासं पद्मजं चैव सर्वेषां शस्तमीश्वर। ब्राह्मण्या कर्तितं सूत्रं त्रिगुणं त्रिगुणीकृतम्॥ ११॥
—गरुड० आ० का० अ० ४३

भाषार्थ—कुश का यज्ञोपवीत ब्राह्मणों का, क्षत्रियों का रेशम का, वैश्यों का सूत का और शूद्रों का सन का होना चाहिए॥९॥ हे राजन्! अथवा सभी के लिए सूत का है, जो ब्राह्मणी के हाथ का कता हुआ तीन बार तिहरा किया हुआ हो॥११॥

इस प्रकार शूद्रों को यज्ञोपवीत का अधिकार देने से यज्ञ तथा वेद का अधिकार देना स्वयं स्पष्ट है।

महाभारत में तो 'एक ब्राह्मण ने व्याध से ब्रह्मविद्या का उपदेश लिया' ऐसा आता है। देखिए—

ब्राह्मण उवाच— **ब्रवीषि सुनृतं धर्म्यं यस्य वक्ता न विद्यते।**
दिव्यप्रभावः सुमहानृषिरेव मतोऽसि मे॥१३॥
व्याध उवाच— **यत्तेषां च प्रियं तत्ते वक्ष्यामि द्विजसत्तम।**
नमस्कृत्वा ब्राह्मणेभ्यो ब्राह्मीं विद्यां निबोध मे॥१५॥

—महा० वन० अ० २१०

भाषार्थ—ब्राह्मण बोला कि—तू अत्यन्त सत्य धर्मानुकूल बोलता है, जिसका बोलनेवाला कोई नहीं। तुम्हारा बड़ा दिव्य प्रभाव है। मैं तुमको ऋषि मानता हूँ॥१३॥

व्याध बोला—जो उन ब्राह्मणों को तथा तुमको प्रिय है वह मैं हे ब्राह्मण! कहता हूँ। ब्राह्मणों को नमस्कार करके मुझसे ब्रह्मविद्या का उपदेश सुनो॥१५॥

कहिए महाराज! यदि व्याध को वेद पढ़ने का अधिकार न था तो उसने ब्राह्मण को ब्रह्मविद्या का उपदेश कैसे किया? और फिर आपके पुराण भविष्यवाणी बोलते हैं कि—

शूद्रा धर्मं प्रवक्ष्यन्ति ब्राह्मणाः पर्य्युपासकाः॥६४॥ —महा० वन० अ० १९०

भाषार्थ—कलियुग में शूद्र धर्म का उपदेश करेंगे और ब्राह्मण उनके उपासक होंगे॥६४॥

कहिएगा, शूद्र वेद पढ़े बिना ब्राह्मणों को कैसे उपदेश करेंगे? और जब पुराण कहते हैं कि कलियुग में शूद्र धर्म का उपदेश करेंगे तथा ब्राह्मण उनके उपासक होंगे फिर अब आपका शूद्रों को वेद का अधिकार न देना पुराणों से बग़ावत नहीं है तो और क्या है?

(२८५) प्रश्न—कोई भी न्यायशील, धार्मिक, विवेकी यह नहीं कह सकता कि शूद्र को वेद पढ़ाना वेदाज्ञा है और इसे पढ़ने से शूद्र का कल्याण होगा। —पृ० २९९, पं० १४

उत्तर—प्रत्येक न्यायशील मनुष्य इस बात को स्वीकार करेगा कि परमात्मा के ज्ञान वेद का मनुष्यमात्र को अधिकार है। जो मनुष्य अपने अधिकार को काम में लाकर अर्थसहित वेद को पढ़कर तदनुकूल आचरण करता है वह द्विज बन जाता है। जो वेद के पढ़ने में यत्न नहीं करता या यत्न करने पर भी नहीं पढ़ सकता वह शूद्र रह जाता है; चाहे उसका जन्म किसी के घर का भी क्यों न हो। आपके अभिप्राय के अनुसार भी जिसका जन्म शूद्र के घर का हो उसको वेद पढ़ने का निश्चय ही अधिकार है। यदि उसे अधिकार न होता तो पूर्ववर्णित व्यास आदि शूद्र से ब्राह्मण कैसे बन जाते? यदि शूद्र उन्नति करके ब्राह्मण बन जाए तो क्या उसका कल्याण नहीं है? अवश्य है, अतः वेद पढ़ने का अधिकार मनुष्यमात्र को है, यही ईश्वर तथा वेद की आज्ञा है।

(२८६) प्रश्न—स्वामीजी शूद्रों को भी वेद पढ़ाना चाहते हैं। स्वामीजी इतने भोले हैं कि अपने लिखे को आप ही भूल जाते हैं। सत्यार्थप्रकाश पृ० ३८ में लिख आये हैं कि '**शूद्रमपि कुलगुणसम्पन्नं मन्त्रवर्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके**'— सुश्रुत। और जो कुलीन, शुभलक्षणयुक्त शूद्र हो तो उसको मन्त्र-संहिता छोड़के सब शास्त्र पढ़ावे यह मत किन्हीं आचार्यों का है। फिर अपने सत्यार्थप्रकाश के पृ० २८ में लिखा है कि 'शूद्रादि वर्ण को उपनयन किये बिना विद्याभ्यास

के लिए गुरुकुल में भेज दें।' स्वामीजी ने संस्कारविधि में केवल द्विजों का ही उपनयन किया है, शूद्रों का नहीं। बिना उपनयन के वेदारम्भ होता नहीं। इस कारण उपनयन-निषेध से शूद्रों के वेदाधिकार का भी निषेध कर दिया।

—पृ० ३००, पं० २२

उत्तर—स्वामीजी वेद के अनन्य भक्त थे, उन्होंने जो कुछ वेद की आज्ञा थी, उसे संसार के सामने रक्खा कि **'यथेमां वाचम्'**—इस मन्त्र में ईश्वर की आज्ञा है कि 'वेद के पढ़ने का मनुष्यमात्र को अधिकार है।' स्वामीजी भोले नहीं हैं, आप ही वाक्छल से काम ले-रहे हैं और वक्ता के अभिप्राय के विरुद्ध कल्पना कर रहे हैं। आप प्रकरण-विद्या से भी अनभिज्ञ हैं। स्वामीजी ने जो सुश्रुत का प्रमाण दिया है वह केवल इसलिए दिया है कि क्षत्रिय तथा वैश्य को भी यज्ञोपवीत देने का अधिकार है, ऐसा कई-एक आचार्यों का मत है। न ही यह अधिकार-अनाधिकार का प्रकरण है और न ही स्वामीजी ने अधिकार-अनधिकार-निर्णय के लिए यह प्रमाण दिया है। यज्ञोपवीत-प्रकरण में यह प्रमाण दिया है और यज्ञोपवीत के बारे में जो कुछ इस प्रमाण में है वह स्वामीजी मानते हैं। शेष वेद में अधिकार-अनधिकार का आगे प्रतिपादन करते हुए अपना सिद्धान्त **'यथेमाम्'** इस मन्त्र के द्वारा स्पष्ट कर दिया है कि वेद के पढ़ने का मनुष्यमात्र को अधिकार है।

रही बात सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि की, सो स्वामीजी वेदप्रतिपादित कर्मानुसार वर्णव्यवस्था मानते हैं। जबतक बालक स्वयं कर्म करने में समर्थ तथा स्वतन्त्र नहीं होते तबतक उनके संस्कार माता-पिता के वर्ण के अनुकूल ही होते हैं, अतः बालकों को उनके माता-पिता के वर्ण के अनुकूल ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के बालकों को यज्ञोपवीत देकर विद्या आरम्भ करा दी जावेगी। इसीलिए सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास पृ० ३९ पर लिखा है कि 'प्रथम लड़कों का यज्ञोपवीत घर में हो और दूसरा पाठशाला में आचार्यकुल में हो।' इससे स्पष्ट है कि जिनका यज्ञोपवीत घर में न हुआ हो उनका आचार्यकुल में योग्यता देखकर करवाया जाए। आपके मतानुसार भी यदि बिना यज्ञोपवीत के वेदारम्भ नहीं हो सकता तो विद्यारम्भ तो हो सकता है। विद्यारम्भ के पीछे योग्यता देखकर यज्ञोपवीत करके वेदारम्भ हो सकता है, अतः स्वामीजी के लेख में परस्पर-विरोध नहीं है। आपकी ही बुद्धि में विकार है, इसे ठीक कीजिए।

(२८७) प्रश्न—स्वामीजी लिखते हैं कि 'तुम कुवाँ में पड़ो और यह श्रुति तुम्हारी कपोलकल्पित है।' स्वामीजी ने केवल शतपथब्राह्मण को देखा। उसमें यह श्रुति नहीं है, इस कारण कपोलकल्पित लिख दिया, किन्तु केवल शतपथ ही ब्राह्मण नहीं है, शतपथ से भिन्न भी वेदों के अनेक ब्राह्मण हैं जो इस समय मिलते नहीं। जो यह श्रुति उन ब्राह्मणों में निकल आये तब तो कपोलकल्पित नहीं है?

—पृ० ३०१, पं० १०

उत्तर—श्रीमान्‌जी! श्रुति तो नाम ही वेद का है। ब्राह्मणग्रन्थों का नाम श्रुति नहीं है, और चारों वेदों में यह पाठ है नहीं, अतः यह पाठ **'स्त्रीशूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतिः'** कपोलकल्पित ही है। यह पाठ यदि किसी आपके कपोलकल्पित ब्राह्मणग्रन्थों में निकल भी आवे, तब भी न इसका नाम श्रुति हो सकता है और न ही वेदविरुद्ध होने से यह प्रमाण हो सकता है।

(२८८) प्रश्न—**'स्तुता मया वरदा वेदमाता'** यह मन्त्र तो कपोलकल्पित नहीं है। यह तो तीन ही वर्णों को गायत्री और वेद का अधिकार देता है। फिर तुम वेदाज्ञा के विरुद्ध शूद्रों को वेद पढ़ाओगे कैसे?

—पृ० ३०१, पं० १६

उत्तर—हम पूर्व सिद्ध कर चुके हैं कि जो मनुष्य अर्थसहित वेद पढ़कर तदनुकूल आचरण करते हैं वे द्विज कहाते हैं और जो ऐसा नहीं करते वे ही शूद्र हैं, चाहे उनका जन्म किसी के घर का भी क्यों न हो। बस, यह वेदमन्त्र भी यही कहता है कि जो लोग अर्थसहित वेद पढ़कर

तदनुकूल आचरण करने से द्विज बन गये हैं वेदमाता उन्हीं को पवित्र करती है और जो लोग ऐसा न करके शूद्र रह जाते हैं उनको वेदमाता पवित्र नहीं करती। इस मन्त्र में शूद्र के घर जन्म लेनेवालों को वेद पढ़ने का निषेध नहीं है, अपितु प्रयत्न करने पर भी जो वेद न पढ़ सकें, उन शूद्रों को वेदमाता पवित्र नहीं करती, यह वर्णन है। इससे यह मन्त्र मनुष्यमात्र को वेद-अधिकार का निषेध नहीं करता, अपितु शूद्र रह जानेवालों की निन्दा करता है ताकि प्रत्येक मनुष्य द्विज बनने का यत्न करे। इसका विशेष व्याख्यान देखो (नं० २८०)।

(२८९) प्रश्न—रही बात **'यथेमां वाचं कल्याणी'** की। आज तक जितने भी वेदज्ञाता हुए उन सबने इस मन्त्र का अर्थ माना कि पूर्वमन्त्र में भूतसाधनी वाणी का वर्णन है। उस भूतसाधनी वाणी का इस मन्त्र में भी अध्याहार होता है। —पृ० २०१, पं० २३

उत्तर—आपके भाष्यों के अनुसार भी पिछले मन्त्र में जिस भूतसाधनी वाणी का वर्णन है; वह सब भूतों को सिद्ध करनेवाली वेदवाणी का ही वर्णन है, क्योंकि सब भूतों—अग्नि आदि पाँच तत्त्वों तथा सब प्राणियों के यथायोग्य स्वरूप को वेदवाणी ही सिद्ध अर्थात् वर्णन करती है। हम पिछले मन्त्र के उतने भाग तथा उसपर भाष्य को भी उद्धृत करते हैं—

मन्त्र—**सप्त सꣳसदो अष्टमी भूतसाधनी सकामाँ २ऽ॥ अध्वनस्कुरु संज्ञानमस्तु मेऽमुना॥**
—२६।१

उव्वट—**विज्ञानात्मा वोच्यते। यस्य तव सप्तसंसदः। मनश्च बुद्धिश्च पञ्च बुद्धीन्द्रियानि च। अष्टमी च वाक् भूतसाधनी भूतप्रज्ञप्तिकरी। तं त्वां ब्रवीमि। सकामान् अध्वनः कुरु अस्माकम्। संज्ञानं च अस्तु मे मम अमुना॥ १॥**

महीधर—**विज्ञानात्मा वोच्यते। यस्य तव सप्तसंसदः पञ्च बुद्धीन्द्रियाणी मनो बुद्धिश्चेति सप्तायतनानि अष्टमी भूतसाधनी भूतानि साधयति वशीकरोतीति भूतसाधनी वाक् स त्वं नोऽस्माकमध्वनः सकामान् कुरु। अमुना सह मे संज्ञानं सङ्गतमस्तु॥ १॥**

भावार्थ—अब विज्ञानस्वरूप परमात्मा का वर्णन किया जाता है। जिस आपके सात—पाँच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि ज्ञानस्थान हैं, आठवीं भूतसाधनी अर्थात् भूतों का ज्ञान करानेवाली वाणी है वे आप हमारे रास्तों को—कामनाओं से पूर्ण करें। इसके साथ मेरा ज्ञान संगत हो या इस प्रकार से मुझे सम्यक् ज्ञान हो। यह मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ॥ १॥

अब आपके भाष्यों के अनुसार भी विज्ञानस्वरूप परमात्मा की वह वाणी जिससे मनुष्य को सम्यक् ज्ञान हो सके, वेद के बिना और कौन-सी हो सकती है? अतः निश्चय रूप से पिछले मन्त्र में समस्त भूतों का ज्ञान करानेवाली वेदवाणी का ही वर्णन है और आपके मतानुसार उसी वेदवाणी का ही इस **'यथेमाम्'** मन्त्र में अध्याहार है।

(२९०) प्रश्न—मनुष्य को दान देने के लिए जैसे भूतसाधनी 'भोजन दो' इस वाणी को सब मनुष्यों के लिए मैं नम्रता से कहता हूँ, ऐसे ही तुम भी कहो। यह बात यज्ञकर्ता अपने भृत्यों से कहता है। यह कल्याणकारिणी वाणी ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र तथा वैश्य स्वीयभृत्य, अतिशूद्र, से बोलो। इन सबको मधुर वचनों के साथ सुन्दर भोजन खाने को दो। मनुष्यमात्र को भोजनादि देने से मैं देवता तथा परमेश्वर का प्रिय बनूँगा। धन, पुत्रलाभ जो मेरा कार्य है यह समृद्धि को प्राप्त हो और मुझे परलोक-सुख मिले। —पृ० ३०१, पं० २६

उत्तर—यहाँ पर आकर आपके भाष्यकार और आप बौखला गये। ऊपर के मन्त्र में जो विज्ञानरूप परमात्मा का तथा सर्वभूतों का ज्ञान करानेवाली और सम्यक् ज्ञान देनेवाली वेदवाणी का वर्णन चला आता था उसे बदलकर यज्ञकर्ता की वाणी **'भोजन दो'** बना डाला। क्यों न हो, यदि ऊपरवाला ही अर्थ यहाँ कर देते तो सनातनधर्म्म की लुटिया डूब जाती और परमात्मा की

वह सम्पत्ति जोकि सबके लिए सबका कल्याण करनेवाली है और जिसपर कि सनातनधर्म के ठेकेदारों ने अकेले ही क़ब्ज़ा करके अपनी ही जायदाद समझकर सबको वञ्चित कर रक्खा था वह लुट जाती और ये ठेकेदार दूसरों के बराबर ही माने जाते तथा यह मुफ़्त की नम्बरदारी ज़ब्त हो जाती। इस नम्बरदारी की रक्षा के लिए प्रकरण को ही बदल डाला! भला हो स्वामी दयानन्दजी का कि जिन्होंने इस कल्याणी वाणी—वेदामृत को इन नाजाइज़ क़ब्ज़ा करनेवाले ठेकेदारों के क़ब्ज़े से निकालकर मनुष्यमात्र को इस कल्याणी वाणी से लाभान्वित कर दिया।

(१) कहिए महाराज! ऊपर के मन्त्र में भूतसाधनी वाणी तो ज्ञानस्वरूप परमात्मा की वर्णन की गई है, यह यज्ञकर्ता की कैसे बन गई?

(२) 'भोजन दो'—यह वाणी सर्वभूतों का ज्ञान करवाकर हमें सम्यक् ज्ञान करानेवाली कैसे होगी?

(३) दोनों मन्त्रों में वे कौन-से पद हैं जिनका अर्थ 'भोजन दो' ऐसा बनता है या घर से ही कल्पना कर ली?

(४) वास्तविक कल्याण तो मोक्ष है, 'भोजन दो' यह वाणी मोक्ष कैसे दिलाएगी जबकि ज्ञान बिना मोक्ष हो ही नहीं सकता?

इन हेतुओं से स्वामीजी का अर्थ वेदवाणी ठीक है और आपकी तथा आपके भाष्यकारों की कल्पना 'भोजन दो' आपके ही लेखानुसार, प्रकरणविरुद्ध होने से सर्वथा निर्मूल तथा मिथ्या है।

(२९१) प्रश्न—मन्त्र में **'दक्षिणायै'** इससे दक्षिणा और **'दातुः'** इससे दान स्पष्ट है, अर्थात् सबको भोजन-दक्षिणा दो। —पृ० ३०२, पं० २

उत्तर—धन्य हो महाराज! **'दक्षिणायै'** का अर्थ 'भोजन' तथा **'दातुः'** का अर्थ 'दो' कोई आप-जैसा ही विद्वान् कर सकता है। तो क्या हम यह मान लें कि आपको विभक्ति का भी ज्ञान नहीं है और सुबन्त, तिङन्त का भी ज्ञान नहीं है? क्या **'दक्षिणायै'** कर्म में द्वितीय है या चतुर्थी और **'दातुः'** क्रिया है या षष्ठी का एकवचन? और 'भोजन की दक्षिणा' यह भी एक ही कही! क्या श्राद्ध का निमन्त्रण तो याद नहीं आ गया? वरना आपके यहाँ ही स्मृतियों में भोजन की दक्षिणा को पैशाची दक्षिणा लिखा है। वैदिक ग्रन्थों में संस्कारों तथा यज्ञों में तो दक्षिणा का विधान है, किन्तु भोजन पर दक्षिण का विधान नहीं है। जैसे—

सम्भोजनी साभिहिता पैशाची दक्षिणा द्विजैः।
इहैवास्ते तु सा लोके गौरन्धेवैकवेश्मनि॥ १४१॥ —मनु० अ० ३

भाषार्थ—भोजन के साथ दक्षिणा को द्विजों ने पैशाची दक्षिणा कहा है। वह परलोक-फल नहीं देती, अपितु जैसे अन्धी गौ एक ही मकान में बन्द रहती है, वैसे ही यह दक्षिण भी इसी लोक में रहती है॥ १४१॥

और फिर क्या क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अतिशूद्र को भी आप भोजन के साथ दक्षिणा मानते हैं? अतः इन पदों से 'भोजन-दक्षिणा दो' अर्थ की कल्पना करना अतिनिर्मूल तथा मिथ्या है।

इस मन्त्र का वास्तविक अर्थ इस प्रकार है—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्याꣳशूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च। प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुपमादो नमतु॥
—यजुः० २६।२

भाषार्थ—हे मनुष्यो! मैं ईश्वर जैसे **(ब्रह्मराजन्याभ्याम्)** ब्राह्मण, क्षत्रिय **(अर्याय)** वैश्य **(शूद्राय)** शूद्र **(च)** और **(स्वाय)** अपने स्त्री-सेवक आदि **(च)** और **(अरणाय)** उत्तम

लक्षण प्राप्त हुए अन्त्यज के लिए **(च)** भी **(जनेभ्यः)** इन उक्त सब मनुष्यों के लिए **(इह)** इस संसार में **(इमाम्)** इस प्रकट की हुई **(कल्याणीम्)** सुख देनेवाली **(वाचम्)** चारों वेदरूप वाणी का **(आवदानि)** उपदेश करता हूँ, वैसे आप लोग भी अच्छे प्रकार उपदेश करें। जैसे मैं **(दातुः)** दानवाले के संसर्गी **(देवानाम्)** विद्वानों की **(दक्षिणायै)** दक्षिणा अर्थात् दान आदि के लिए **(प्रियः)** मनोहर, प्यारा **(भूयासन्)** होऊँ और **(मे)** मेरी **(अयं)** यह **(कामः)** कामना **(समृध्यताम्)** उत्तमता से बढ़े तथा **(मा)** मुझे **(अदः)** वह परोक्षसुख **(उपनमतु)** प्राप्त हो वैसे आप लोग भी होवें और वह कामना तथा सुख आपको भी प्राप्त होवे॥ २॥

भावार्थ—परमात्मा सब मनुष्यों के प्रति यह उपदेश करता है कि यह चारों वेदरूपी कल्याणकारिणी वाणी सब मनुष्यों के हित के लिए मैंने उपदेश की है। इसमें किसी को अनधिकार नहीं है। जैसे मैं पक्षपात को छोड़के सब मनुष्यों में वर्त्तमान हुआ प्यारा हूँ, वैसे आप भी होओ। ऐसा करने से तुम्हारे सब काम सिद्ध होंगे॥ २॥

इसको कहते हैं अर्थ करना। कैसा साफ़ और सीधा अर्थ है! इस मन्त्र का देवता ईश्वर है। और '**वाचम्**' शब्द मन्त्र के अन्दर ही पड़ा हुआ है। इस मन्त्र के अर्थ में न तो अध्याहार की आवश्यकता है, न ही पदों को तोड़-मरोड़ करने की। स्पष्ट होने पर भी यदि किसी को शूद्रों के लिए वेद-अधिकार वेदों में नज़र न आवे तो हम भर्तृहरि के इस श्लोक के पाठ के बिना और क्या कह सकते हैं कि—

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य किम्? इत्यादि।

(२९२) प्रश्न—जब ईश्वर निराकार है, तब वह ब्राह्मणादि मनुष्यों को वेद कैसे पढ़ा देगा?

उत्तर—परमात्मा सर्वत्र व्यापक है। मनुष्यों के हृदयों में भी व्यापक है। परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों—अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा के हृदय में चारों वेदों का प्रकाश कर दिया। उन्होंने ब्रह्मा आदि सब मनुष्यों को वेद पढ़ाये (देखो वेदोत्पत्ति-प्रकरण)।

(२९३) प्रश्न—'**स्वाय**' पद का अर्थ इस मन्त्र के वेदभाष्य में स्वामी दयानन्दजी ने लिखा है कि 'अपनी स्त्री और सेवक को भी वेद पढ़ाता हूँ'। जब आर्यसमाज के मत में ईश्वर सर्वथा निराकार है तो फिर निराकार ईश्वर के स्त्री और नौकर कैसा? —पृ० ३०२, पं० १

उत्तर—आपने 'पढ़ाता हूँ' अपनी तरफ से घड़ लिया। स्वामीजी ने 'उपदेश करता हूँ' अर्थ किया है। क्या झूठ बोलने का आपने ही ठेका ले-रक्खा है? यहाँ पर स्त्री के अर्थ बीवी और सेवक के अर्थ नौकर नहीं है, अपितु स्त्री के अर्थ स्त्रीजाति तथा सेवक के अर्थ भक्तलोग हैं। यदि कोई आपसे पूछे कि आपके घर में कितनी स्त्री और कितने पुरुष हैं और आप उसका उत्तर दें कि मेरे घर में आठ स्त्री और आठ पुरुष हैं तो क्या इसके यह अर्थ होंगे कि आपके घर में आठ बीवी और आठ खाविन्द=पति हैं? क्या उन औरतों में आपकी, माँ, बहिन, बेटियाँ तथा पुरुषों में भाई, पुत्र, पिता आदि शामिल न होंगे? अतः सिद्ध हुआ कि यहाँ पर स्त्री के अर्थ स्त्रीजाति तथा सेवक के अर्थ पुरुषजाति है और परमेश्वर के निराकार होते हुए मनुष्यमात्र को (चारों ऋषियों के हृदय में व्यापक होते हुए चारों वेदों का प्रकाश करके उनके द्वारा) उपदेश किया। इसकी विशेष व्याख्या देखो (अवतारवाद तथा स्वामी दयानन्द)।

(२९४) प्रश्न—इस मन्त्र का देवता वाणी है। किन्तु आर्यसमाजियों ने ईश्वर बना दिया।
—पृ० ३०३, पं० १

उत्तर—आपके उव्वट और महीधर ने इस मन्त्र का कोई देवता नहीं लिखा, अपितु उव्वट तथा महीधर ने यूँ तो लिखा है—

येऽत्र सम्बद्धा मन्त्रास्तेषां तदेवार्षम्। असम्बद्धानां तु आदित्य एव। अविनियुक्तानां

मन्त्राणां लैङ्गिको विनियोगः। यो हि यमर्थं वदितुं समर्थः स तत्र श्रुत्या विनियुज्यते। अग्नि-वायुश्चान्तरिक्षं च आदित्यश्च द्यौश्च आपश्च वरुणश्च सप्तसंसदः परमात्मोच्यते। एवमुत्तरेष्वपि योज्यम्।

—यजुः० २६। १ पर उव्वट-भाष्य

भाषार्थ—जो मन्त्र लगाये=जोड़े हुए हैं उनका वही देवता है, जो नहीं लगाये हुए उनका आदित्य ही देवता है। जो मन्त्र नहीं लगाये हुए उनका लैङ्गिक विनियोग है। जो जिस अर्थ को कहने में समर्थ है वह वहाँ श्रुति से लगाया जावे। अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, आप, वरुण ये सात परमात्मा के नाम हैं। इसी प्रकार से अगले मन्त्रों में भी देवता जोड़ लेने चाहिएँ॥ २६। १॥

अब इन नियमों के अनुसार '**यथेमाम्**' का कोई देवता न होने से आदित्य ही देवता माना जाएगा और आदित्य नाम है ईश्वर का। इसलिए इस मन्त्र का देवता ईश्वर हुआ।

दूसरे, यदि लैङ्गिक देवता देवता है तो इस मन्त्र में '**वाचं**' कर्म है और '**आवदानि**' क्रिया है, ईश्वर कर्त्ता है। इसलिए कर्त्ता की प्रधानता से ईश्वर को ही देवता माना जाएगा, वाणी को नहीं। अतएव प्रत्येक अवस्था में इस मन्त्र का देवता ईश्वर ही हो सकता है, वाणी नहीं।

(२९५) प्रश्न—स्वामीजी लिखते हैं कि 'यदि ईश्वर को शूद्रों को वेद पढ़ाना न होता तो वह उनके शरीर में वाक् और श्रोत्र-इन्द्रियाँ क्यों रचता'? श्रोत्र-इन्द्रियों तो पशु-पक्षियों के भी हैं, फिर आप उनको वेद क्यों नहीं पढ़ाते? वाक् इन्द्रिय से स्पष्ट वर्णात्मक शब्द निकालनेवाले तोता-मैना को भी वेद पढ़ने का अधिकार ईश्वर ने '**यथेमां**' मन्त्र में क्यों नहीं दिया? पूर्वकर्मानुसार वेद पढ़ने का अधिकार जिन आर्यसमाजियों को ईश्वर ने नहीं दिया, जो आज भी निरक्षर हों, उनको श्रोत्र, वाक् इन्द्रियाँ क्यों दीं?

—पृ० ३०३, पं० ३

उत्तर—क़ुर्बान जाएँ आपकी मन्तक़दानी (तर्कशीलता) के! आपने तो लालबुझक्कड़ को भी मात कर दिया! क्या आपको इतना भी ज्ञान नहीं है कि मनुष्य से भिन्न सब पशु-पक्षी आदि भोग-योनियाँ हैं? वे सब पिछले कर्मों का फल भोगते हैं; आगे के लिए कोई पुण्य-पाप का कर्म नहीं करते। इसलिए उनके लिए कोई वेद-शास्त्र नहीं हैं। वेद-शास्त्र केवल मनुष्यों के लिए हैं जो कर्म करने में स्वतन्त्र हैं और अपनी इच्छा से पाप-पुण्यकर्म कर सकते हैं। इसीलिए मन्त्र में '**जनेभ्यः**' अर्थात् मनुष्यों के लिए स्पष्ट लिखा हुआ है। यदि परमात्मा ने शूद्रों के लिए वेद न बनाये होते तो वे गाय-भैंस आदि की भाँति यत्न करने पर भी वेद न पढ़ सकते और वे उनको कानों से सुन तथा मुख से उच्चारण न कर सकते, किन्तु ऐसा देखने में नहीं आता, अपितु शूद्र भी ब्राह्मण आदि की भाँति वेदों को पढ़ तथा सुन सकते हैं, अतः शूद्रों को वेद का अधिकार स्वभाव से सिद्ध है। तोता-मैना भी भोगयोनि हैं तथा वे सिवाय आवाज़ की नक़ल करने के किसी पदार्थज्ञान को नहीं जान सकते, अतः उनके लिए वेदज्ञान नहीं है। रहा मूर्ख आर्यसमाजियों का सवाल, सो उनका मनुष्योनि में जन्म लेना ही इस बात की दलील है कि उनको वेद पढ़ने का अधिकार है और उनके श्रोत्र तथा वाक् इन्द्रिय का होना ही सिद्ध करता है कि परमात्मा की ओर से इनको वेद पढ़ने का अधिकार है। यह उनका अपना क़ुसूर है कि उन्होंने अपने अधिकार का प्रयोग करके वेद नहीं पढ़े। स्वामीजी की यह दलील सर्वथा सत्य है कि मनुष्यों में से यदि किसी को परमेश्वर की तरफ़ से वेद पढ़ने का अधिकार न होता तो परमात्मा उसके वाक् तथा श्रोत्र-इन्द्रिय ही न बनाता। इससे सिद्ध है कि परमात्मा की ओर से वेद पढ़ने का मनुष्यमात्र को अधिकार है।

(२९६) प्रश्न—फिर आप लिखते हैं कि 'जैसे परमात्मा ने पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य, अन्नादि पदार्थ सबके लिए बनाये हैं, वैसे ही वेद भी सबके लिए प्रकाशित किये हैं'।

आपकी यह बात भी ग़लत है। गौ आदि कई-एक पशुओं के लिए सूर्य हितकारी है, किन्तु भैंसों के लिए घाम में चलना आफ़त हो जाती है। पक्षियों में चिड़या आदि अनेक पक्षियों को सूर्य ज्योतिवाला कर देता है, किन्तु बाज़ और उल्लू के दोनों फाटक बन्द हो जाते हैं। अग्नि में समस्त पक्षी भस्म हो जाते हैं, किन्तु एक पक्षीविशेष का अग्नि भक्ष्यपदार्थ है। इसी प्रकार भैंस आदि को जल हितकारी और बकरी-प्रभृति कई-एक पशुओं को हानिकारक है, फिर एक-सा कहाँ हुआ? —पृ० ३०३, पं० १०

उत्तर—आपने यहाँ भी वाक्छल से ही काम लिया है। यहाँ पर वेदों का प्रकरण होने से मनुष्यों का ही वर्णन है, पशु-पक्षियों का नहीं है, क्योंकि पशु भोगयोनि है और उनके लिए वेद का ज्ञान नहीं है, अतः ऋषि ने बतलाया कि जैसे परमात्मा ने पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्नादि पदार्थ सब मनुष्यों के लिए समान लाभदायक बनाये हैं वैसे ही वेद भी मनुष्यमात्र के लिए प्रकाशित किये हैं। यद्यपि यहाँ मनुष्यों का प्रकरण होने से पशु-पक्षियों का दृष्टान्त युक्त ही नहीं है, तथापि आपने समान जातियों में सूर्य, जल, अग्नि आदि का भिन्न प्रभाव नहीं दिखाया, अपितु असमान जातियों में दिखलाया है। आपके विचार में आकृति भिन्न होने के कारण जैसे गौ और भैंस में, चिड़ी और उल्लू में तथा भैंस और बकरी में सूरत-शक़्ल आदि का प्राकृतिक अन्तर है, वैसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज आदि में भी परस्पर सूरत-शक़्ल बनावट आदि में कोई अन्तर है? यदि नहीं तो मनुष्यों के प्रकरण में पशुओं की परस्पर भिन्न जातियों का दृष्टान्त कैसे संगत हो सकता है? क्योंकि मनुष्यमात्र की बनावट में कोई अन्तर न होने से सबकी एक ही जाति है। ब्राह्मण, शूद्रादि भेद कर्मों के कारण नैमित्तिक हैं जोकि परवर्तित होकर ब्राह्मण से शूद्र और शूद्र से ब्राह्मण इसी जन्म में बन सकता है, किन्तु गाय की भैंस और भैंस की गाय तथा चिड़ी का उल्लू और उल्लू की चिड़ी इत्यादि इस जन्म में नहीं बन सकते, अतः स्वामीजी का लेख युक्तियुक्त होने से सत्य तथा आपका लेख युक्तिविरुद्ध होने से सर्वथा मिथ्या है।

(२९७) प्रश्न—आप लिखते हैं कि 'जहाँ कहीं निषेध किया है, उसका यह अभिप्राय है कि जिसको पढ़ने-पढ़ाने से कुछ भी न आवे वह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है।' इस लेख से आपने यह तो मान लिया कि शूद्र को वेद पढ़ाने का निषेध वेदादि सच्छास्त्रों में आता है। —पृ० ३०३, पं० १८

उत्तर—आपने न वैदिक सिद्धान्तों को पढ़ा है और न ही मनन किया है, अतएव आपकी अक़्ल सिद्धान्तों के बारे में चक्कर खा जाती है। लीजिए, हम आपको यह भी समझा देते हैं।

वास्तव में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र दो प्रकार के होते हैं—एक, सम्भावित ब्राह्मणादि; दूसरे, व्यवस्थित ब्राह्मणादि। सम्भावित ब्राह्मणादि वे बालक हैं जो ब्राह्मणादि के घरों में पैदा हुए हैं। वे स्वयं कर्म करने में असमर्थ हैं। ब्राह्मणादि माता-पिता उनकी अपनी-अपनी योग्यता तथा अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार खान-पान, पोषण-संस्कार, शिक्षा आदि का प्रबन्ध करते हैं और जब वे गुरुकुल में जाने के योग्य हो जाते हैं तब उनको अपने-अपने वर्ण की मर्यादा के अनुसार ही गुरुकुल में प्रविष्ट कर देते हैं। वे बालक वयस्क न होने के कारण स्वयं स्वतन्त्रता से कोई काम नहीं करते, सब-कुछ उनके माता-पिता ही करते हैं, और बालक भी यदि कुछ करते हैं तो अपने माता-पिता की आज्ञा से उनकी आज्ञानुसार ही करते हैं, अतः ऐसी अवस्था में वे अपने माता-पिता के अनुसार ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नामों से प्रसिद्ध रहते हैं। जिसका वास्तविक अभिप्राय यह होता है कि ये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के बालक हैं। वे वास्तव में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नहीं होते, अपने माता-पिता के कारण उनको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कहा जाता है। इसलिए उनका नाम सम्भावित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और

शूद्र है।

दूसरे, व्यवस्थित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वे लोग होते हैं जो गुरुकुल में शिक्षा पाने के पश्चात् विद्यासभा तथा राजसभा की ओर से गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार परीक्षापूर्वक व्यवस्था करके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र निश्चितरूप से बना दिये जाते हैं।

सारांश यह है कि जो शूद्रों के बालक हैं उनका नाम सम्भावित शूद्र तथा जिनको पढ़ने-पढ़ाने से कुछ भी न आवे वे निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाते हैं। वे व्यवस्थित शूद्र हैं। जहाँ वेदों में '**यथेमाम्**' इस मन्त्र में शूद्रों को वेद का अधिकार दिया गया है वहाँ पर सम्भावित शूद्र अर्थात् शूद्रों के बालकों से अभिप्राय है और जहाँ '**स्तुता मया वरदा वेदमाता**' इस मन्त्र में आता है कि वेदमाता द्विजों को पवित्र करती है, शूद्रों को नहीं, वहाँ शूद्र से अभिप्राय व्यवस्थित शूद्र अर्थात् प्रयत्न करने पर भी जो वेद न पढ़ सकें उनसे हैं। स्मृतियों में जहाँ '**शूद्रो ब्राह्मणतामेति**, शूद्र ब्राह्मण बन जाता है' यह आता है, वहाँ शूद्र से अभिप्राय सम्भावित शूद्र अर्थात् शूद्र के बालक से है और जहाँ पर यह आता है कि '**न चास्याधिकारोऽस्ति धर्मे**' शूद्र का धर्म में अधिकार नहीं है, वहाँ शूद्र से अभिप्राय व्यवस्थित शूद्र है। इसी प्रकार से सर्वत्र समझ लेना चाहिए। यदि आप इस व्यवस्था को नहीं मानते तो बतलाइए कि '**यथेमाम्**' इत्यादि वेदों में तथा '**शूद्रो ब्राह्मणतामेति**' इत्यादि स्मृतियों में तथा व्यास, पराशर, वसिष्ठ आदि शूद्र अन्त्यजों को पुराणों में जो वेद का अधिकार देकर ब्राह्मण तक बनने का अधिकार प्रतिपादन किया गया है, उसका क्या मतलब है? अत: स्वामीजी का यह सिद्धान्त कि मनुष्यमात्र को वेद पढ़ने का अधिकार है, वेदानुकूल होने से सर्वथा सत्य और स्मृति, पुराण, इतिहास, दर्शन भी उसकी पुष्टि करते हैं।

वेदों में स्त्रियों का अधिकार

(२९८) प्रश्न—वेद प्रथम उपनयन बतलाता है और उपनयन के पश्चात् वेदाध्ययन।

—पृ० ३०४, पं० ४

उत्तर—आप ठीक कहते हैं कि प्रथम यज्ञोपवीत और फिर वेद का अध्ययन होना चाहिए। चूँकि स्त्री को वेद-अध्ययन का अधिकार है, अत: वेद ने स्त्री के लिए यज्ञोपवीत की भी आज्ञा दी है, जैसे—

देव एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसे ये निषेदुः।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन्॥ —ऋ० १०।१०९।४

भाषार्थ—दिव्य शक्तिसम्पन्न, पूर्वनियमानुसार रचित सप्त ऋषि अर्थात् नाक, कान आदि इन्द्रियाँ जो ज्ञान के लिए निरन्तर गति करते रहते हैं, वे इस उपनीत ब्राह्मणी के विषय में मानो कह रही हैं कि वेदाध्येता की जाया अर्थात् पत्नी यज्ञोपवीत धारण करके भयंकर=सबला बन जाती है। अन्य दुष्टप्रकृतिवाले को भी उत्कृष्ट सुखमय अवस्था में धारण कर देती है॥४॥

इस मन्त्र से स्त्री का यज्ञोपवीत स्पष्ट होने से वेदाधिकार भी स्पष्ट है।

(२९९) प्रश्न—'उपनीय तु यः' इत्यादि [मनु० २।१४०] से सिद्ध हो गया कि उपनयन होने के अनन्तर ही वेदाध्ययन होता है और स्त्री के लिए उपनयन की विधि नहीं है, अत: स्त्री को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं। —पृ० ३०४, पं० ६

उत्तर—आपने वेद का नाम ऊपर लिखकर नीचे मनुस्मृति का श्लोक दे दिया। क्या मनुस्मृति वेद है? कुछ शर्म तो नहीं आती? और फिर आपने कोई ऐसा प्रमाण नहीं दिया जिससे यह सिद्ध हो सके कि स्त्री को यज्ञोपवीत तथा वेद का अधिकार नहीं है। रहा आपका '**उपनीय तु**' यह

श्लोक, सो यह भी सामान्य है। जैसे पुरुषों के लिए है वैसे ही स्त्रियों के लिए भी है, अर्थात्—

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः। सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते॥

—मनु० २।१४०

भाषार्थ—जो ब्राह्मण शिष्य का उपनयन करके कल्प और रहस्य के साथ वेद पढ़ावे उसे आचार्य कहते हैं॥ १४०॥

यह श्लोक जैसे पुरुष को यह आज्ञा देता है कि वह बालकों को यज्ञोपवीत देकर चारों वेद पढ़ाकर आचार्य बने, वैसे ही स्त्री को भी आज्ञा देता है कि वह कन्याओं को यज्ञोपवीत देकर चारों वेद पढ़ाकर आचार्या बने।

यदि आप यह शंका करें कि 'इस श्लोक में **(यः, द्विजः, तम्, आचार्यं)** पुरुषवाची शब्द हैं, स्त्रीवाची शब्द नहीं हैं, अतः पुरुष को ही आचार्य बनने का अधिकार है, स्त्री को नहीं', तो यह शंका निर्मूल है, क्योंकि कानून स्त्री-पुरुष के लिए समान होता है चाहे वह पुरुषवाची शब्दों से ही वर्णन किया गया हो, जैसे मनु में आता है कि—

पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत् सावित्रीमार्कदर्शनात्। पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात्॥

—मनु० २।११०

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।
तस्मादस्मिन् सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः॥ —मनु० १।१०८

भाषार्थ—प्रातः सन्ध्या में गायत्री का जप करता हुआ सूर्य के दर्शन तक बैठे तथा सायं की सन्ध्या में बैठा हुआ तारों के नज़र आने तक गायत्री का जप करता रहे॥ १०१॥ श्रुति तथा स्मृति में कहा हुआ आचार परम धर्म है। इसलिए ब्राह्मणादि द्विज को चाहिए कि वह इसमें सदा संयुक्त, अर्थात् नित्य लगा हुआ, आत्मवान् बने॥ १०८॥

ये दोनों श्लोक भी **(जपन्, समासीनः, युक्तः आत्मवान्, द्विजः)** पूर्वश्लोक की भाँति ही पुरुषवाची शब्दों से कहे गये हैं। तो क्या इसका यह अभिप्राय है कि ये दोनों श्लोक भी पुरुष के लिए ही सन्ध्या करने तथा सदाचारी बनने की आज्ञा देते हैं, स्त्री के लिए नहीं? और क्या पुरुष को ही सन्ध्या करने तथा सदाचारी बनने का अधिकार है, स्त्री को नहीं? यह कदापि मानने योग्य बात नहीं है। ये तीनों श्लोक स्त्री तथा पुरुष के लिए सामान्य होने से समानाधिकार का प्रतिपादन करते हैं, अर्थात् जैसे पुरुष को सन्ध्या करने, सदाचारी बनने तथा आचार्य बनने का अधिकार है, वैसे ही स्त्री को भी सन्ध्या करने, सदाचारिणी बनने तथा आचार्या बनने का अधिकार है। हम इसमें आपके ही घर का एक अन्त्यन्त पुष्ट प्रमाण देते हैं। देखिए—

इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक्। —अष्टा० ४।१।४९

'मातुलोपाध्याययोरानुग्वा' मातुलानी, मातुली, उपाध्यायानी, उपाध्यायी, 'या तु स्वयमेवध्यापिका तत्र वा ङीष् वाच्यः' उपाध्यायी, 'आचार्याद् णत्वं च' आर्चायस्य स्त्री आचार्याणी, पुंयोग इत्येव। आचार्या स्वयं व्याख्यात्री। —सिद्धान्तकौमुदी स्त्रीप्रत्ययप्रकरण

इसमें यह स्पष्ट है कि जो उपाध्याय की स्त्री है उसका नाम उपाध्यायानी है और जो स्वयं अध्यापिका है उसका नाम उपाध्याया है। जो आचार्य की स्त्री है उसका नाम आचार्याणी है, किन्तु जो स्वयं वेदों का व्याख्यान करनेवाली है, अर्थात् स्वयं वेद पढ़ाती है, उसका नाम आचार्या है। फिर उपाध्याय किसको कहते हैं—

एकदेशं तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः।
योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते॥ —मनु० २।१४१

भाषार्थ—जो वेद के एक हिस्से को या वेद के अङ्गों को अपनी वृत्ति के लिए पढ़ाता है उसे उपाध्याय कहते हैं॥ १४१॥

इससे सिद्ध है कि वेद के एक भाग या वेद के अङ्गों के पढ़ानेवाली स्त्री का नाम उपाध्याया तथा चारों वेदों को पढ़ानेवाली स्त्री का नाम आचार्या है—

शिवपुराण भी इसकी पुष्टि करता है—

घृतस्नानं ततः कृत्वा पुत्रस्य गिरिजा स्वयम्। त्रिरावृत्तोपवीतं च ग्रन्थिनैकेन संयुतम्॥ ४२॥
सुदर्शनाय पुत्राय ददौ प्रीत्या तदाम्बिका। उद्दिश्य शिवगयत्रीं षोडशाक्षरसंयुताम्॥ ४३॥

—शिव० कोटि० रुद्र० अ० १३

भाषार्थ—स्वयं पार्वती ने गणेश को घृतस्नान करवाकर तीन लड़ी से युक्त एक ग्रन्थीवाला यज्ञोपवीत॥ ४२॥ अपने सुन्दर पुत्र को पहना दिया और सोलह अक्षरवाली शिवगायत्री का उपदेश कर दिया॥ ४३॥

अतः सिद्ध हुआ कि स्त्री को यज्ञोपवीत देने, आचार्या, उपाध्याया बनकर वेद के पढ़ाने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है।

(३००) प्रश्न—'वैवाहिको विधिः' इत्यादि [मनु० २।६७], इसमें स्त्रियों के लिए केवल वैवाहिक विधि ही वैदिक संस्कार कहा है। जब उपनयन आदि संस्कारों में से केवल विवाह-संस्कार ही स्त्री को कहा गया है, शेष संस्कारों का मनु निषेध करते हैं तो मनु के विरुद्ध स्त्री का उपनयन-संस्कार कैसे होगा और बिना उपनयन हुए स्त्री वेद कैसे पढ़ेगी?

—पृ० ३०४, पं० १२

उत्तर—आपने स्त्री को यज्ञोपवीत तथा वेदाध्ययन निषेध में कोई वेदमन्त्र पेश नहीं किया और मनु के इस श्लोक के आशय को भी आप नहीं समझे। देखिए—

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया॥ —मनु० २।६७

भाषार्थ—विवाह की विधि ही स्त्रियों के लिए उपनयन-संस्कार है। पति की सेवा ही गुरुकुल-निवास है। घर का काम ही प्रातः-सायं का अग्निहोत्र है॥ ६७॥

इस श्लोक में विवाहविधि, पतिसेवा और गृहकृत्य की उत्कृष्टता दिखाई गई है। इससे उपनयन, गुरुकुल-निवास, प्रातः-सायं अग्निहोत्र करने का निषेध नहीं है।

यदि आप इस प्रकार से निषेध मानेंगे तो मनु ने माता-पिता तथा आचार्य की स्तुति करते हुए लिखा है कि—

त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः।
त एव हि त्रयो वेदास्त एवोक्तास्त्रयोऽग्नयः॥ —मनु० २।२३०

भावार्थ—माता, पिता, तथा आचार्य—ये तीनों लोक हैं, वे ही तीनों आश्रम हैं, वे ही तीनों वेद हैं तथा वे ही तीनों अग्नियाँ हैं॥ २३०॥

तो क्या आप यहाँ पर यह मानने को तैयार हैं कि मनु ने तीनों लोकों, तीनों आश्रमों, तीनों वेदों तथा तीनों अग्नियों के सेवन का निषेध कर दिया है? कदापि नहीं, अपितु यहाँ पर माता, पिता, गुरु की उत्कृष्टता दिखाई है, तीनों लोक आदि का निषेध नहीं है। बस, इसी प्रकार उपर्युक्त श्लोक में भी विवाह आदि की उत्कृष्टता दिखाई है। उपनयनादि का निषेध नहीं है। जैसेकि—

अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः।
संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम्॥ —मनु० २।६६

भाषार्थ—स्त्रियों के ये सम्पूर्ण संस्कार जो ऊपर पुरुषों के वर्णन किये हैं बिना विचारे ही कर देने चाहिएँ, अर्थात् अवश्य ही कर देने चाहिएँ। यथाकाल, यथाक्रम शरीर के संस्कार के लिए अवश्य कर देने चाहिएँ॥ ६६ ॥

यहाँ 'अमन्त्रिका' का अर्थ 'बिना वेदमन्त्रों के' ऐसा नहीं है, अपितु 'अमन्त्रिका' का अर्थ 'बिना विचार' अर्थात् 'अवश्य है,' जैसे कि—

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्। आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्॥
—मनु० ८। ३५०

भाषार्थ—चाहे गुरु हो, बालक हो, बूढ़ा हो, ब्राह्मण वा ज्ञानी हो, जो आततायी हो उसे बिना विचारे ही मार देना चाहिए॥ ३५० ॥

यहाँ बिना विचारे का यह मतलब नहीं कि विचार करे ही नहीं, अपितु यह तात्पर्य है कि अवश्य ही मार दे। यही तात्पर्य उपर्युक्त श्लोक में 'अमन्त्रिका' का है।

यदि आप 'अमन्त्रिका' का अर्थ 'वेदमन्त्र-वर्जित' करके स्त्रियों के संस्कारों में वेदमन्त्रों का निषेध मानेंगे तो ऐसी अवस्था में गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोनयन, इन तीन संस्कारों का क्या करेंगे, क्योंकि इनमें बालक या बालिका का निश्चय नहीं किया जा सकता। और द्विजों के गर्भाधान से लेकर सारे ही संस्कार समन्त्रक करने का विधान है, जैसे—

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः।
तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिञ्ज्ञेयो नान्यस्य कस्यचित्॥ —मनु० २। २६

भाषार्थ—गर्भाधान से लेकर श्मशान तक जिसकी विधि मन्त्रों से हो, उसको इस शास्त्र के पढ़ने का अधिकार है, दूसरे किसी को नहीं॥ १६ ॥

दूसरे, ये अर्थ मनु के सिद्धान्त के भी विरुद्ध होंगे, क्योंकि मनुजी स्त्री को यज्ञोपवीत तथा वेद पढ़ना ही नहीं मानते, अपितु यज्ञ का होता होना भी मानते हैं, जैसे—

न वै कन्या न युवतिर्नाल्पविद्यो न बालिशः।
होता स्यादग्निहोत्रस्य नार्तो नासंस्कृतस्तथा॥ —मनु० ११। ३६

भाषार्थ—अग्निहोत्र का होता कन्या, युवती, अल्पविद्या, मूर्ख तथा संस्कारशून्य को नहीं होना चाहिए॥ ३६ ॥

यहाँ पर कन्या तथा युवती के निषेध से सिद्ध है कि वृद्ध स्त्री अग्निहोत्र की होता बन सकती है अन्यथा कन्या और युवती के निषेध की क्या आवश्यकता थी? स्त्रीमात्र का ही निषेध कर देते। और यदि स्त्रियों के संस्कारों का निषेध होता तो फिर '**असंस्कृतः**' शब्द से स्वयं ही स्त्रियों का भी निषेध हो जाता। किन्तु '**असंस्कृतः**' पद के होते हुए भी कन्या तथा युवती का निषेध सिद्ध करता है कि स्त्रियों को सम्पूर्ण संस्कारों का समन्त्रक अधिकार है और यज्ञ में भी होता बनने का अधिकार है, अतः सिद्ध हुआ कि अमन्त्रिका का अर्थ मन्त्रवर्जित नहीं, अपितु बिना विचारे अर्थात् अवश्य अर्थ है, और स्त्रियों के उपनयनादि संस्कारों तथा वेदों के पढ़ने का निषेध नहीं है। जैसे कि—

(क) अतएव हारीतेनोक्तम्—द्विविधाः स्त्रियो ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च। तत्र ब्रह्मावादिनीनामुपनयनमग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे भिक्षाचर्येति। सद्योवधूनां तूपस्थिते विवाहे कथंचिदुपनयनमात्रं कृत्वा विवाहः कार्य इति॥

(ख) तथा च यमः—पुराकल्पे तु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवाचनं तथा॥